

चौबीस तीर्थंकर पुराण

आशीर्वाद

प्रज्ञाश्रमण आचार्य देवनन्दि

प्रेरक

श्री १०८ उपाध्याय जयभद्र महाराज

सम्पादिका

श्री १०५ आर्यिका सुमंगलाश्री माताजी

भाषानुवाद

पन्नालालजी साहित्याचार्य

प्रकाशक

श्री प्रज्ञाश्रमण दिगम्बर जैन संस्कृति न्यास

नागपुर (महा.)

श्री वीतरागाय नमः  
चौबीस तीर्थकर पुराण  
भगवान श्री आदिनाथ

स विश्वचक्षु वृषभोऽर्चितःसतां समग्र विद्यात्मवपु निरंजनः ।

पुनातू चेतो मम नाभिनन्दनो जिने जित क्षुल्लक वादिशासनः ।

स्वस्वको देखने वाले, सज्जानों से पूजित, समस्त विद्यामय, पाप रहित तथा क्षुद्र वादियों के शासनों  
को जीतने वाले नाभिनन्दन भगवान श्री ऋषभनाथ हमारे हृदयको पवित्र करें ।

इस मध्यालोक में असंख्यात द्वीप समुद्रों से घिरा हुआ , एक लाख योजन विस्तार वाला जम्बूद्वीप है । यह जम्बूद्वीप सब द्वीपों में पहला द्वीप है और अपनी शोभा से सब में शिरमौर है । इसी चारों ओर से लवण समुद्र घेरे हुए है । लवण समुद्र के बीच समुद्र में यह जम्बूद्वीप ठीक कमल के समान मालूम होता है , क्योंकि कमल के नीचे जैसे पीली कर्णिका होती है वैसे ही इसपर सुवर्णमय पीला मेरु पर्वत है और कलम की कर्णिका पर जिस प्रकार काले भौरे मंडराते रहते - है उसी प्रकार मेरु पर्वत की कर्णिका पर भी काले काले मेघ मंडराते रहते हैं । हिमवान महाहिमवान, निषध नील, रुक्मी और शिखरी ये छः कुलाचल जम्बूद्वीप की शोभा बढ़ा रहे हैं । ये छहों कुलाचल पूर्व से पश्चिम तक लम्बे हैं । अनेक तरह के रत्नों से जड़े हुए हैं और अपने उत्तुंग शिखरों से गगन को चूमते हैं । इन छह अंचलों के कारण जम्बूद्वीप के सात विभाग अर्थात् क्षेत्र हो गये हैं । उनके नाम ये हैं भरत, हैमवत, हरि, विदेह, रम्यक, हैरण्यवत और ऐरावत । इन्हीं क्षेत्रों में हमेशा लहराती हुई गंगा, सिन्धु आदि चौदह महा नदियां बहा करती हैं । विदेह क्षेत्र ठीक बीच में एक लाख योजन ऊंचा सुवर्णमय मेरु पर्वत है । वह पर्वत अपनी उन्नत चूलिका से स्वर्ग के विमानों को छूना चाहता है । नन्दन, सौमनस, भद्रशाल और पाण्डुक बन से उसकी अपूर्व शोभा बढ़ रही है । जिनेन्द्र भगवान के, जन्माभिषेक के सुरभित सलिल से उस पर्वत का प्रत्येक रजकण पवित्र है । सूर्य, चन्द्रमा आदि समस्त ज्योतिषी देव उसकी प्रदक्षिण देते रहते हैं ।

उसी विदेह क्षेत्र में मेरु पर्वत से पश्चिम की ओर एक बांधिल देश है । वह देश खूब हरा-भरा है । जहां पर रहने वाले लोग किसी भी बात से दुखी नहीं हैं । जहां पर धान्य के खेतों रक्षा करने वाली बालिकाओं के सुन्दर संगीत सुनकर हरणि चित्रलिखित से निश्चल हो जाते हैं । जहां के मनोहर बगीचे में रसाल आदि वृक्षों की डालियों पर बैठे हुए कोयल, कीर, क्रौंच आदि पक्षी तरह-तरह के शब्द करते हैं । उस बांधिल देश में एक विजयार्ध पर्वत है । जो अपनी धवल कान्ति से ऐसा मालूम होता है , मानो चांदी से बना हुआ हो । उस पर्वत पर अनेक सुन्दर उद्यान शोभायमान हैं । उद्यानों के लता गृहों में देव देवांगनायें विद्याधर और विद्याधरियां अनेक तरहकी क्रीडा किया करती हैं । उसकी शिखरें चन्द्रकान्त मणियों से खचित हैं इसलिये रातके समय चन्द्रमाकि किरणों का सम्पर्क होने पर उनसे सुन्दर निर्झर इ

रने- लगते हैं । उस पर्वत की तराई मे आमके ऊंचे-ऊंचे पेड़ लगे है । हवा के हलके झोंके लगने- से उनसे पके हुए फल टूट-टूट कर नीचे गिरे जाते है और उनका मधुर रस सब ओर फैल जाता है । उस पर्वत उत्तर की श्रेणी में अलका नामकी सुन्दर नगरी हैं । वहा अलका नगरी अगाध जल से भरी हुई परिखा से शोभायमान हैं । अनेक तरह के रत्नों से जडी हुई है । वहांका प्राकारकोट इतना ऊंची है कि रात के समय उसकी उन्नत शिखरों पर लगे हुए तारागण मणिमय दीपकों की तरह मालूम होते हैं । वहांके ऊंचे ऊंचे मकान चूने से पुते हुए है इसलिये वे शरद ऋतु के बादल के समान मालूम होता है । उन मकानों की शिखरों में अनेक तरह के रत्न लगे हुए है जो बरसात के बिना ही मेघ रहित आकाश में इन्द्र धनुषकी छटा छिटकाते रहते है । वहां गगनचुम्बी जिन मन्दिरों में नाना प्रकार के उत्सव होते रहते है । कहीं तालाबों में फुले हुए कमलों पर भ्रमर गुज्जार करते है । कहीं बगीचों में बेला, गुलाब चम्पा जूही आदिकी अनुपम सुगन्धि फैल रही है । कहीं शरद के मेघ के समान सफेद महलों की छतों पर विद्याधरांगनाये बिजली जैसी मालूम होती है । कहीं पाठशालाओं में विद्यार्थियों की अध्ययन ध्वनि गूंज रही है और कहीं विद्वानों में सुन्दर तत्व चर्चाएं होती है । कहीं भी कोई खाने पीने केलिये दुखी नहीं है सभी मनुष्य सम्पत्ति से युक्त है और बाल बच्चों से विभूषित है अलका, अलका ही है - उसका समस्त वर्णन करना लेखनीसे बाहर है ।

जिस समयकी कथा लिखि जाती है उस समय अलका का शासनसूत्र महाराज अतिबल के हाथ में था । उस वक्त की अतिबल जैसे वीर, पराक्रमी, यशस्वी, दयालु ओर नीतिनिपुण राजा पृथ्वीतल पर अधिक नहीं थे । उन की नीती निपुणता और प्रजावत्सलता सब और प्रसिद्ध थी । वे कभी सूर्य के समान अत्यन्त तेजस्वी होकर शुत्राओं को संताप पहुंचाते थे और कभी चन्द्रमा की भांति शान्त वृत्ति से प्रजा का पालन करते थे । उनकी निर्मल कीर्ती चारों ओर फैल रही थी । अतिबल के व्यक्तित्व के सामने सभी विद्यार नरेश अपना माथा झुका देते थे । वे समुद्र से गम्भीर थे , मेरु से स्थिर, बृहस्पति से विद्वान थे , और थे, सूर्यसे भी अधिक तेजस्वी । महाराज अतिबल की स्त्रीका नाम मनोहरा था । मनोहरा का जैसा नाम था वैसा ही उसका रूप भी । उसके पावें कमल के समान सुन्दर थे और नाखून मोतियो से चमकते थे । जंघायें कामदेव की तरकस के सदृश मालूम होती थी और स्थूल ऊरु के स्तम्भ से भी भली थी । उसका विस्तृत नितम्बरथल बहुत ही मनोहर था । मनोहरा की गम्भीर नाभि श्यामला रोम राजि और कृश कमर अपनी शानी नहीं रखती थी । उसके दोनों स्तन शृङ्गार सुधासे भरे हुये सुवर्ण कलशकी नाई मालूम होते थे । भुजायें कमलिनी के समान मनोहर थी और हाथ कमलों की शोभा को जीतते थे । उसका कंठ शंख सा सुन्दर था । ओष्ठ प्रवाल से और दांत मोती से लगते थे । उसकी बोली सामने कोयल भी लजा जाती थी । तिलक पुष्प उसकी नाक की बराबरी नहीं कर सकता था । वह अपनी चंचल और बडी आंखों से हरिणियों को जीतती थी । उसकी भौंहें काम के धनुषके समान थी । कुम्कुम के तिलक से उसके ललाट की अनूठी ही शोभा बडी ही विचित्र थी । मनोहार के मुंह के समान पूर्णिमा के

चन्द्रमा को भी मुंहकी खानी पडी थी । उसका सारा शरीर ताये हुये सुवर्ण की तरह चमकता था । कोई उसे एकाएक देखकर विद्याधरी कहने का साहस नहीं कर पाता था । सचमुच वह मनोहरा अद्वितीय सुन्दरी थी । राजा अतिबल रानी मनोहरा केसाथ तरह केसुख भोगते हुये सुख से समय बिताते थे ।

कुछ समय बाद मनोहरा की कुक्षि से एक बालक उत्पन्न हुआ । बालक केजन्मकाल में अनेक शुभ शकुन हुये । राजाने दीन दरिद्रों केलिये किमिच्छक दान दिया और प्रजा ने अनेक उत्सव मनाये । बालक की वीर चेष्टायें देखकर राजा ने उसका नाम महाबल रख दिया । बालक महाबल द्वितिय के चन्द्रमा की तरह प्रतिदिन बढ़ने लगा । उसकी अद्भुत लीलायें और मीठी बोली सुनकर मां का हृदय फूला न समाता था । उसकी बुद्धी बड़ी तीक्ष्ण थी । इसलिये उसने अल्प वयमें ही समस्त विद्यायें सीख ली । पुत्र की चतुराई और नीति निपुणता देखकर राजा अतिबल ने उसे युवराज बना दिया और आप बहुती कुछ निश्चिन्त होकर धर्म ध्यान करने लगे ।

एक दिन कारण पाकर अतिबल महाराज का हृदय संसार से विरक्त हो गया । उन्हें पंच इन्द्रियों के विषय क्षणभंगुर और दुःखदाई मालूम होने लगे । बारह भावनाओं का विचार कर उन्होंने जिनदीक्षा धारण करन का दृढ़ निश्चय कर लिया । फिर मंत्री सामन्त आदिके सामने अपने विचार प्रगट करके युवराज महाबल को राज्य तथा अनेक तरह के धार्मिक और नैतिक उपदेश देकर किसी निर्जन बन में जिनदीक्षा धारण कर ली थी । इनके साथ में अनेक विद्याधर राजाओं ने भी जिनदीक्षा ली थी । उधर आत्मशुद्धी के लिये अतिबल महाराज कठिन से कठिन तप करने लगे और इधर महाबल भी नीति पूर्वक प्रजा का पालन करने लगा । महाबल की शासन प्रणाली पर समस्त प्रजा मुग्धचित्त थी । धीरे धीरे महाबल का यौवन उसका सुन्दर रूप देखकर स्त्रियों का मन काम से आकुल हो उठता था । निदान, मन्त्री आदि की सलाहसे योग्य कुलीन विद्याधर कन्याओं के साथ उसका विवाह हो गया अब राजा महाबल धर्म, अर्थ और काम का समान रूप से सेवन करने लगा । इसके महामति, संभिन्नमति, शतमति और स्वयंबुद्ध नामके चार मन्त्री थे । ये चारों मन्त्री राज्य कार्यमें बहुत ही चतुर थे राजा जो भी कार्य करता था वह मन्त्रियोंकी सलाह सेही करता था । इसलिए उसके राज्यमें किसी प्रकारकी बाधायें नहीं आने पाती थी । ऊपर जिन चार मन्त्रियों का कथन किया है उसमें -स्वयंबुद्ध को छोड कर बाकी तीन मन्त्री महा मिथ्यादृष्टि थे इसलिए वे महाबल तथा स्वयंबुद्ध आदिके साथ धार्मिक विषयोंमें विद्वेष रखा करते थे । पर महाबल को राजनीति में उनसे कोई बाधा नहीं आती थी । स्वयंबुद्ध मन्त्री सच्चा जिनभक्त था वह हमेशा महाबल के हित चिंतन में लगा रहता था ।

किसी समय अलकापुरी में राजा महाबल की वर्ष गांठका उत्सव मनाया जा रहा था । बाजों के शब्दों से आकाश गूंज रहा था और चारों ओर स्त्रियों के सुन्दर संगीत सुनाई पड़ रहे- थे । एक विशाल सभामण्डप बनवाया गया था जिसकी सजावट के सामने इन्द्रभवन की भी सजावट फीकी लगती थी । उस मण्डप में सोने के एक ऊंचे सिंहासन पर महाराज महाबल बैठे हुए थे । उन्हीं के आस पास मन्त्री लोग भी

बैठे थे । और मण्डप की शेष जगह दर्शकों से खचाखच भरी हुई थी । लोंगो के हृदय आनन्द से उमड़ रहे थे । विद्वानों के व्याख्यान और तत्व चर्चाओं से वह सभा बहुत ही भली मालूम होती है । समय पाकर महामति, संभिन्नमति और शतमति मन्त्रियों ने अनेक कल्पित युक्तियों से जीव, अजीवक खण्डन कर दिया , स्वर्गमोक्ष का अभाव बतलाया तथा मिथ्यात्व को बढानेवाली अनेक विपरीत क्रियाओं का उपदेश दिया जिससे समस्त सभा में क्षोभ मच गया और लोग आपस में काना फुंसी करने लगे । यह देख राजा से आज्ञा लेकर स्वयंबुध्द मन्त्री खड़े हुए । स्वयंबुध्द ने अनेक युक्तियों से सब लोक मोहित हो गए और धन्य धन्य करने लगे । इसी समय स्वयंबुध्दी पाप और धर्मका फल बताते हुए राजा महाबल को लक्ष्य कर चार कथायें कही थी जो संक्षेप में नीचे लिखी जाती हैं ।

राजन् ! कुछ समय पहले आप के निर्मल वंश में एक अरविन्द नाम के राजा हो गये हैं । उनकी स्त्री का नाम विजया देवी था । विजया के दो पुत्र थे पहला हरिश्चन्द्र औ दूसरा कुरुविन्द ये दोनों पुत्र बहुत ही विद्वान थे । राजा अरविन्द दीर्घसंसारी जीव थे । इसलिये उनका चित्त हमेशा पाप कर्मों में ही लगा रहता था औ इसीकेफलस्वरूप वे नरक आयु का बंध कर चुके थे । आयु के अन्त समय अरविन्द को दाहज्वर हो गया जिसकी दाह से वे बहुत व्याकुल होने लगे । रोग की बहुत कुछ चिकित्सायें की गई पर उन्हें आराम नहीं हुआ । पाप के उदय से उनकी समस्त विद्यायें भी नष्ट हो गयी थी । उन्होंने उत्तर कुरुक्षेत्र के सुहावने बगीचेमें घूमना चाहा परन्तु आकाशगामिनी विद्या के नष्ट हो जाने से उन्हें लाचार हो रुक जाना पडा । बड़े पुत्र हरिश्चन्द्र ने अपनी विद्या से उन्हें उत्तर कुरु भेजना चाहा पर जब उसकी भी विद्या सफल नहीं हुई तब राजा हताश हो शय्यापर पड़ा रहा ।

एक दिन दीवाल पर दो छिपकुली लड़ रही थी । लड़ते लड़ते उनमें से एककी पूँछ टूट गई जिस से खूनकी दो चार बूदें राजा के शरीर पर पड़ी । खूनी की बूंदों के पडते ही राजा को कुछ शान्ति मालूम हुई । इसलिये उसने समझा कि यदि हम खून की बावड़ी में नहावें तो हमारा रोग दूर हो सकता है । यह विचार कर लघु पुत्र कुरुविन्द से खूनकी बावडी बनवाने के लिये- कहा । कुरुविन्द, पिताका जितना आड़ ाकारी था उससे कहीं अधिक धर्मात्मा था । इसलिए उसने पिताकी आज्ञानुसार एक बावड़ी बनवाई उससे कहीं अधि धर्मात्मा था । इसलिए उसने पिताकी आज्ञानुसार एक बावड़ी बनवाई पर उसे खून से न भर कर लाखके लाल रंग से भरवा दिया , और पिता से, जाकर कह दिया कि आप के कहे अनुसार बावड़ी तैयार है । खून की बावड़ी देखकर राजा अरविन्द बहुत ही हर्षित हुए और नहाने के लिए उसमें कूद पड़े । पर ज्योंही उन्होंने कुल्ला किया त्योही उन्हें मालूम हो गया कि वह खून नहीं किन्तु लाखका रंग है । कुरु विन्द के इस कार्य पर उन्हें इतना क्रोध आया कि वे तलवार लेकर उसे मारने के लिए दौड़े पर बीमारी के कारण अधिक नहीं दौड़ सके इसलिए बीच में ही अपनी तलवारपर गिरे पड़े । तलवार की धार से राजा का उदर विर्दिण हो गया जिससे वे मरकर नरकगति में जा पहुंचे । सच है, मरते समय प्राणियों के जैसे अच्छे बुरे भाव होते हैं वे वैसी ही गति को प्राप्त होते हैं ।

( २ )

नरेन्द्र ! कुछ समय पहले आप के इसी वंश मे एक दण्ड नाम के राजा हो गये है जिन्होंने अपने प्रचण्ड पराक्रम से समस्त विद्याधरों को वशमें कर लिया था । यद्यपि राजा दण्ड शरीर से बूढे हो गये थे । तथापि उनका मन बूढा नहीं था । वे रात दिन विषयों की चाह में- लगे रहते थे । उनके एक मणिमाली नामका आज्ञाकारी पुत्र था । जीवन के शेष समय में राज्यका भार मणिमाली को सौंप कर आप अंतःपुर में रहने लगे और अनेक तरह के भोग भोगने लगे । किसी समय तीव्र संक्लेश भावसे राजा दण्ड का मरण हो गया । मरकर वे अपने भण्डार में विशालकाय अजगर हुए । वहा अजगर मणिमाली ने इस अजगर का हाल किसी मुनिराज से कहा । मुनिराज ने अवधिज्ञान से जानकर कहा कि यह अजगर आप के पिता दण्ड विद्याधर का जीव है । आर्तध्यान के कारण उन्हें कुयोनि प्राप्त हुई है । यह सुनकर मणिमाली झट से भण्डार में गया और वहां अजगर के सामने बैठकर उसे ऐसे ढंग से समझाने लगा कि उसे अपने पूर्व भवका स्मरण हो गया और विषयों की लालसा छूट गई । पुत्र के उपदेश से उसने सब बैरभाव छोड दिया तथा आयु के अन्त में सन्यास पूर्वक मरण कर देव पर्याय पाई । स्वर्ग से आकर देव ने मणिमाली के गले में मणियोंका एक सुन्दर हार पहिनाया था जो कि आज भी आपके गले मे शोभायमान है । सच है- विषयों की अभिलाषी से मनुष्य अनेक तहर के कष्ट उठाते - है और विषयों के त्याग से स्वर्ग आदि का सुख पाते है ।

( ३ )

राजन् ! आप के बाबा शतबल भी चिरकाल तक राज्य -सुख भोगने के बाद आपके पिता अतिबल के लिये राज्य देकर धर्मध्यान करने लगे थे और आयु के अन्त में समाधि पूर्वक शरीर छोड कर महेन्द्र स्वर्ग में देव हुए थे । आपको भी ख्याल होगा जब हम दोनों मेरु पर्वत पर नन्दन बन में खेल रहे थे , तब देव शरीरधारी आपके बाबा ने कहा था कि च जैन धर्मको कभी नहीं भूलना यही सब सुखों का कारण है । छ

( ४ )

इसी तरह आप के पिता अतिबल के बाबा सहस्रबल भी शतबल के लिये राज्य नग्न दिगम्बर हो गये और कठिन तपस्याओं से आत्म -शुद्धी कर शुक्ल ध्यान के प्रताप से परमधाम मोक्षस्थान को प्राप्त हुए थे । ये कथाएं प्रायः सभी लोगों के परिचित और अनुभूत थीं इसलिये स्वयंबुद्धी मन्त्री की ओर किसी को अविश्वास नहीं हुआ । राजा और प्रजा ने स्वयंबुद्धी का खूब सत्कार किया । महामति आदि तीन मन्त्री के उपदेश से जो कुछ विभ्रम फैल गया था वह स्वयंबुद्ध के उपदेश से दूर हो गया था । इस तरह राजा महालब की वर्षगांठ का उत्सव हर्षवध्वनी के साथ समाप्त हुआ ।

एक दिन स्वयंबुद्ध मन्त्री अकृत्रिम चैत्यालयों की बन्दना करने के लिये मेरु पर्वत पर गये और वहां पर समस्त चैत्यालयों के दर्शनपर अपने आपको सफल भाग्य मानते हुए सौमनस बन में बैठ ही थे कि इतने में उन्हें पूर्व विदेह क्षेत्र के अन्तर्गत कच्छ देश के अनिष्ट नामक नगर से आये हुए दो मुनिराज

दिखाई पड़े । उन मुनियों में एक का नाम आदित्यमति और दूसरेका अरिजय था । स्वयंबुद्धी ने खड़े होकर दोनों मुनिराज तत्वों का स्वरूप कह चुकेतब मन्त्रीने उनसे पूछा-

व्हे नाथ ! हमारी अलका नगरी में सब विद्याधरों का अधिपति जो महाबल नामका राजा राज्य करता है वह भव्य है या अभव्य ? छ मन्त्री का प्रश्न सुनकर अदित्यमति मुनिराज ने कहा कि हे सचिव ! राजा महाबल भव्य है क्योंकि भव्य ही तुम्हारे वचनों में विश्वास कर सकता है । तुम्हे महाबल बहुत ही श्रद्धा की दृष्टी से देखता है । वह दशवें भव में जम्बूद्वीप केभरत क्षेत्र में युगका प्रारम्भ होने पर ऋषभनाथ नाम का पहला तीर्थकर होगा । सकल सुरेन्द्र उसकी सेवा करेंगे और वह अपने दिव्य उपदेश संसार के समस्त प्राणियों का कल्याण करेगा । वही उसकेमुक्त होनेका समय है । अब मैं महाबल के पूर्वभव का वर्णन करता हूँ जिसमें कि इसन सुख भोगने की इच्छा से धर्मका बीज बोया था । सुनिये पश्चिम विदेह में श्री गन्धिल नामका देश है और उसमें सिंहपूर नाम का एक सुन्दर नगर है । वहां किसी समय श्रीषेण राजा नामका राज्य करते थे उनकी स्त्री का नाम सुन्दरी थी । श्रीषेण के जयवर्मा ओर श्रीवर्मा नाम के दो पुत्र थे ।

उनमें श्रीवर्मा नाम का छोटा पुत्र सभी को प्यारा था । राजा ने प्रजा के आग्रह से लघु पुत्र श्रीवर्माकेलिये राज्य दे दिया और आप धर्मध्यान में लीन हो गये । ज्येष्ठ पुत्र जयवर्मा से अपना यह भारी अपमान नहीं सहा गया इसलिए वहा संसार से उदास होकर किसी बन में दिगम्बर मुनि हो गया और विषय भोगों से विरक्त होकर उग्र तप तपने लगा । एक दिन जहां पर जयवर्मा मुनिराज ध्यान लगाये हुए बैठे थे, वही सै आकाश में विहार करता हुआ कोई विद्याधरों का राजा आ निकला । ज्योंही जयवर्मा की दृष्टी उसपर पड़ी त्योंही उसे राजा बनने की अभिलाषाने फिर धर दबाया । उधर जयवर्मा विद्याधर राजा के भोगों की प्राप्ति में मन लगा रहे थे इधर वामी से निकले हुए एक सांपने उन्हें डस लिया । जिसमें वे मरकर महाबल हुए है । पूर्वभव की वासना से महाबल अब भी रात दिन भोगों में लीन रहा करता है ।

( ४ )

इस प्रकार पूर्वभव सुनाने केबाद मुनिराज आदित्यमति ने स्वयंबुद्ध मन्त्री से कहा कि आज राजा महाबल ने स्वप्न देखे है कि मुझे सभिन्न मति आदि मन्त्रियों ने जबरदस्ती कीचड़मे गिरा दिया है फिर स्वयंबुद्ध मन्त्री ने उन दृष्टों की धमकाकर मुझे कीचड़ से निकाला और सोनेके सिंहासन पर बैठाकर निर्मला जल से नहलाया है, तथा एक दीपक की ज्वाला प्रतिक्षण क्षीण होती जा रही है । महाबल इन स्वप्नों का फल तुम से अवश्य पूछेगा सो तुम जाकर पूछने- के पहले ही तो कह दो कि पहले स्वप्नसे आपका सौभाग्य प्रकट होता है और दूसरे स्वप्नसे आपकी आयु ऐक माहकी रह गई मालूम होती है । ऐसा करनेसे तुम्हारे ऊपरउसका दृढ़ विश्वास हो जावेगा तब तुम उसे जो भी हितका मार्ग बतलाओगे उसे वह शीघ्र ही स्वीकर कर लेवेगा । इतना कह कर दोंनो मुनिराज आकाश मार्ग से विहार कर गये और स्वयंबुद्ध मन्त्री भी हर्षित होते हुए अकालपुरी को लौट आये । वहां राजा महाबल स्वयंबुद्ध की

प्रतीक्षा कर रहे थे - तो स्वयंबुध ने शीघ्र ही जाकर उनकेदोनों का फल जैसा कि मुनिराज वे बतलाया था , कह सुनाया तथा समयोपयोगी और भी धार्मिक उपदेश दिया । मन्त्रीके कहने से महाबल को दृढ़ निश्चय हो गया कि अब मेरी आयु सिर्फ एक माह बाकी रग गई है । वह समय अष्टान्हिक व्रतका था इसलिए उसने जिन मन्दिर मे आठ दिन तक खूब उत्सव किया और शेष बाईस दिन का सन्यास धारण किया । उसे सन्यासी विधि स्वयंबुध मन्त्री बतलाते थे । अन्तमें पंच नमस्कार मंत्र का जाप करते हुए महाबल ने नश्वर मनुष्य शरीर का परित्याग कर ऐशान स्वर्ग के श्रीप्रभ विमान में देव पर्याय का लाभ किया । वहां उसका नाम ललितांग था । जब ललितांग देवने -

अवधिज्ञान से अपने पूर्वभव का विचार किया तब उसने स्वयंबुध का अत्यन्त उपकार माना और अपने हृदय मे उसके प्रति कृतज्ञता प्रकट की । पूर्वभव के संस्कार उसने वहां पर भी जिनपूजा आदि धार्मिक कार्यों मे प्रमाद नहीं किया था । इस प्रकार ऐशान स्वर्ग में स्वयंप्रभा, कनकलता, विद्युल्लता आदि चार हजार देवियों के साथ अनेक प्रकार के सुख भोगते हुए ललितांग देव का समय बीतने लगा । ललितांग की आयु अधिक थी इसलिये उसके जीवन में अल्प आयु वाली कितनी ही देवियां नष्ट हो जाती थी और उनके स्थानमे दूसरी देवियां उत्पन्न हो जाती थीं । इस तरह सुख भोगते हुए ललितांग की आयु जब कुछ पल्योंकी शेष रह गई तब उसे एक स्वयंप्रभा नामकी देवी प्राप्त हुई थी । ललितांग को स्वयंप्रभा सी सुन्दरी देवी जीवन भर न मिली थी इसलिये वह उसे बहुत चाहता था और वह भी ललितांग को बहुत अधिक चाहता थी । दोनों एक दूसरे पर अत्यन्त मोहित थे । परन्तु किसीके सब दिन एकसे नहीं होते । धीरे धीरे ललितांग देव की दो सागर की आयु समाप्त होने को आई । जब उसकी आयु सिर्फ छह माह की ही बाकी रह गई तब उसके कंठ में पडी हुई माला मुरझा गई, कल्प वृक्ष कान्ति रहित हो गये- और मणि मुक्ता आदि सभी वस्तुएं प्रायः निष्प्रभ सी हो गई हो यह सब देखकर उसने समझ लिया कि मेरी आयु अब छह माह की ही बाकी रह गई है । इसके बाद मुझे अवश्य ही नरलोक में पैदा होना पडेगा । प्राणी जैसे काम करते हैं वैसा ही फल पाते है । मैंने अपना समस्त परम आवश्यक है । यह विचार कर पहले ललितांग देवने समस्त अकृत्रिम चैत्यालयों की वन्दना की फिर अच्युत स्वर्ग में स्थित जिन प्रतिमाओं की पूजा करता हुआ समात सन्तोष से समय बिताने-लगा । अन्तमें सनाधि पूर्वक पंच नमस्कार मन्त्रका जाप करते हुए उसने देव शरीर को छोड़ दिया । जम्बूद्वीपके सुमेरु पर्वत से पूर्व की ओर विदेह क्षेत्र में एक पुष्कलावती देश है उसकी राजधानी उत्पलेखट नामकी नगरी है । उस समय वहां वज्रबाहु राजा राज्य करते थे । उसकी स्त्री का नाम वसुन्धरा था । राजा बज्रबाहु वसुन्धरा रानी के साथ भोग भोगते हुए इन्द्र-इन्द्राणी की तरह आन्दन से रहते थे । जिसका कथन ऊपर कर आये हैं वह ललितांग देव स्वर्ग से चयकर इन्हीं वज्रबाहु और वसुन्दरा राजा दम्पती के वज्रजंघ नामका पूत्र हुआ । वज्रजंघ अपनी मनोरम चेष्टाओं से सभी को हर्षित करता था । वह चन्द्रमाकी नाई मालूम होता था क्योंकि चन्द्रमा जिस तरह कुमुदों को विकसित करता है उसी तरह वज्रजंघ भी अपने कुटुम्बी कुमुदों को



विकसित हर्षित करता थां चन्द्रमा जिस तरह कलाओं से शोभित होता है उसी तरह बज्रजंघ भी अनेक कलाओं चतुराइयों से भूषित था । चन्द्रमा जिस प्रकार कमलों को संकुचित करता है उसी प्रकार वह भी शत्रुरूपी कमलों को संकुचि शोभाहीन करता था और चन्द्रमा जिस तरह चांदनीसे सुहावना जान पड़ता है उसी तरह बज्रजंघ भी मुसकान रूपी चांदनीसे सुहावना जाना पड़ता था । ललितांगका मन स्वयंप्रभा देवी में आसक्त था , इसलिए वह किसी दूसरी स्त्रियोंसे प्रेम नहीं करता था । बस उसी संस्कार से वज्रजंघ का चित्त किसी दूसरी स्त्रियों की ओर नहीं झुकता था । उसने-जवान होकर भी अपना विवाह नहीं करवाया था । वह हमेशा शास्त्रोंकेउध्ययन तथा किसी नई चीज की खोज में लगा रहता था ।

अब स्वयंप्रभा, जिसे कि ललितांग देव छोड़कर चला आया था, का उपाख्यान सुनिये । प्राणनाथ ललितांग देवके मरने पर स्वयंप्रभा को बहुत खेद हुआ, जिससे वह तरह तरह के विलाप करने लगी । यह देखकर एक दृढ़वर्मा जो कि ललितांग का घनिष्ठ मित्र था, नाम के देवने उसे खूब समझाया और अच्छे अच्छे कार्यों का उपदेश दिया । उसके उपदेश से स्वयंप्रभा ने पति विरह से उत्पन्न हुए दुःख को कुछ शान्त किया और अपने शेष जीवन के छह माह जिन पूजन,नित्य वन्दन आदि शुभ कर्मों में व्यतीत किये । मृत्यु के समय सौमनस वन मे शोभित किसी चैत्य वृक्षके नीचे पंच परमेष्ठी का ध्यान करती हुई स्वयंप्रभाने देवी पर्याय से छुट्टी पाई । जम्बूद्वीप के पूर्व विदेह क्षेत्र में कोई पुण्डरीकिणी नामकी नगरी है । वज्रदन्त राजा उसका पालन करते थे । उसकी स्त्रीका नाम लक्ष्मीमती था । स्वयंप्रभा देवी स्वर्ग से चयकर इन्हीं राज दम्पती के श्रीमती नामकी पुत्री हुई । श्रीमती कि सुन्दरता देखकर लोग कहा करते थे कि इसे ब्रम्हाने चन्द्रमा की कलाओं से बनाया है । किसी समय श्रीमती छत के ऊपर रत्नों के पलंग पर पडी सो रही थी । उसी समय वहांके आकाश में जय जय शब्द करते हुए बहुत से दव निकले । वे देव पुंडरिकिणी पुरी के किसी उद्यान में विराजमान यशोधर गुरु के केवलज्ञान महोत्सव में शामिल होने के लियं जा रहे थे । उन देवों के आगे हजारो बाजे बजते जाते थे जिन का गम्भीर शब्द सब ओर फैल रहा था । देवों की जयजयकार और बाजों की उच्च ध्वनिसे श्रीमती की नींद खुल गई । नींद खुलते ही उसकी दृष्टी देवों पर पड़ी जिस से उसे उसी समय अपने पूर्व भवों का स्मरण हो आया । अब ललितांग देव उसकी आंखों के सामने झुकने लगा और स्वर्ग लोककी सब अनुभूत क्रियायें उसकी नजरमें आने लगीं । वह बार बार ललितांग देव का स्मरण कर विलाप करने लगी और विलाप करती करती मूर्च्छित भी होगयी सखियों ने अनेक शीतल उपचारों से सचेत कर उस से मूर्च्छित होने का कारण पुछा पर वह कुछ नहीं बोली केवल ग्रहग्रस्त की तरह चारों ओर निहारती रही, पुत्रीकी वैसी अवस्था देखकर राजा रानीको बहुत ही दुःख हुआ । कुछ देर बाद उसकी चेष्टाओं से राजा वज्रदन्त समझ गये कि इसके दुःख का कारण इसके पूर्वभव का स्मरण है और कुछ नहीं । उन्होंने यह विचार लक्ष्मीमती को भी सुनाया । इसके बाद श्रीमती को समझाने के लिये एक पण्डिता नामकी धाय को नियुक्त कर राजा और रानी अपने स्थान पर चले गये ।

श्रीमती के पाससे वापिस आते ही राजा को पता चला कि आयुघशाला में चक्रवर्त्न प्रकट हुआ है । और पुरु केबाह्य उद्यान में यशोधर महाराज केलिये केवलज्ञान प्राप्त हुआ है । दिग्विजय केलिये जाऊ या यशोधर महाराज केज्ञान कल्याण केमहोत्सव में शामिल होऊं इन दो विचारोंने राजाकी चित्तवृत्ति को क्षण एक केलिये दो भागों मे विभाजित कर दिया पर पहले धर्म कार्यो में कि शामिल होना चाहिए ऐसा विचार कर राजा वज्रदंत यशोधर महाराज केज्ञानोत्सव में शामिल होने केलिए गये । बन में पहुंच कर राजा वज्रदन्त यशोधर महाराज चरणों मे प्रणाम किया और अपना जन्म सफल माना । वहां विचित्र बात यह हुई थी की राजा ने ज्योंही पूज्य मुनिराज केचरणों में प्रणाम किया था त्योंही उसे अवधिज्ञान प्राप्त हो गया था । अवधिज्ञान केप्रताप से राजा बज्रदन्त अपने तथा श्रीमती आदि के समस्त पूर्वभव स्पष्ट रूपसे जान गये थे । जिस से वे श्रीमती के विषय में प्रायःनिश्चिन्त हो गये थे । मुनिराज के पास से वापिस आकर वज्रदन्त चक्रवर्ती दिग्विजय केलिये गये ।

इधर पण्डिता धाय श्रीमती को घर केबगीचे मे ले जाकर अनेक तरह से उसका मन बहलाने लगी मौका देखकर पण्डिता ने उससे मूर्छित होने का कारण पूछा । अब की बार श्रीमती पण्डिताका आग्रह न टाल सकी, वह बोली च्खी ! जब मैं छतपर सो रही थी तब वहांसे जयजय शब्द करते हुए कुछ देव निकले , उनके दिग्विजय केकोलाहल से मेरी आंख खुल गई । जब मेरी निगाह उन देवों पर पड़ी तब मुझे अपने पूर्व भव का स्मरण हो आया । बस, यही मेरे दुःख का कारण है । मैं देखती हूं कि लज्जा से काम नहीं चलेगा इसलिए शमा करना मैं आज लज्जा का परदा फाड़कर अपनी मनोवृत्ती प्रकट करती हूं । सुनती हो न ?

धातकीखण्ड द्वीपकी पूर्व दिशा में जी मेरुपर्वत है उससे पश्चिम की ओर विदेह क्षेत्रमें एक गान्धिल नामका देश है उसके पाटलिंगाव में एक नागदत्त नामका वणिका रहता था । उसकी स्त्री का नाम सुदति था । इस वणिक दम्पति के नन्द,नन्दिमित्र,नन्दिषेण ,वरसेम और जयसेन नामके पांच पुत्र तथा मदन कान्ता और श्रीकान्ता नामकी दो पुत्रियां थी । उन दो पुत्रियों में से मैं छोटी पुत्री थी । लोग मुझको निर्नामिका भी कहा करते थे । किसी समय वहांके अम्बर तिलक पर्वत पर पिहितास्त्रव नाम के एक मुनिराज आये । मैं न जाकर उनसे विनयपूर्वक पूछा कि भगवान् ! मैं इस दरिद्र कुल मे पैदा क्यों हुई हूं । तब मुनिराज बोले इसी गान्धिल देशके पलाल पर्वत गांव मे एक देवल नामक मनुष्य रहता था उसकी स्त्री का नाम सुमति था । तुम पहले इसी के घर धनश्री नामसे प्रसिध्द लड़की हुई थी । एक दिन तुम्हारे बगीचे में कोई समाधिगुप्त नाम के मुनीश्वर आये थे सो तुमने उनके सामने मरे हुए कुत्तेका कलेवर डाल दिया जिससे वे कुछ कृध्द हो गये । तब डरकर तुमने उनसे क्षमा मांगी । उस क्षमासे तुम्हारे उस पापमें कुछ न्यूनता हो गयी थी जिससे तुम इस दरिद्र कुलमें उत्पन्न हो सकी हो नहीं तो मुनियोंके तिरस्कार से नरग गति में जाना पड़ता । यह कह चुकने के बाद मुनिराज पिहितास्त्रव ने मुझे जिनेन्द्र गुण सम्पत्ति और श्रुतज्ञान नाम केब्रत दिये जिन का मैंने यथाशक्ति पालन किया । उन ब्रतों का

प्रभाव से मैं मरकर ऐशान स्वर्ग में ललितांग देवकी अंगना हुई थी । वहां मेरा नाम स्वयंप्रभा था । हम दोनों एक दूसरे का बहुत अधिक चाहते थे । पर मेरे दुर्भाग्य से ललितांग देवकी मृत्यु हो - गयी । उनकी मृत्युसे मुझे बहुत ही दुःख हुआ पर करती ही क्या ? जिनेन्द्र प्रतिमाओं की पूजा करते मैंने अपनी अवशेष आयु पूर्ण की और वहां से चयकर यह श्रीमती हुई हूं । देवों का आगमन देखकर आज मुझे ललितांग देव का स्मरण हो आया है बस , यही मेरे दुःख का कारन है अब ललितांग के बिना मुझे एक क्षण भी वर्ष के समान मालूम होता है और यह दुष्ट काम अपने पैने वाणों से मुझको घायल कर रहा है । यह कहकर श्रीमती ने पण्डिता से कहा कि प्यारी सखि ! तुम्हारे होते हुए भी क्या मुझे दुख होगा ? चांदनी के छिटकने पर भी क्या कुमुदिनी दुखी होती है ? मेरा विश्वास है कि आप हमारे ललितांग की खोजकर उनके साथ मुझे-अवश्य ही मिला देवेगी । देखो, मैंने इस पट्टियों पर अपने पूर्व भव के चित्र अंकित किए हैं । इन्हें दिखला कर आप सरलता से ललितांग की खोज कर सकती है । यह सुनकर पण्डिता धायने - श्रीमती को खूब आश्वासन दिया और इसके पास से चित्रपट लेकर ललितांग की खोज करने के- लिये चल दिया । वह सबसे पहले महापूत चैत्यालय को गई और वहां जिनेन्द्र देव को प्रणाम कर चित्रशाला में चित्रपट फैलाकर बैठ गई । प्रायःचैत्यालय में सभी लोग आते थे इसलिये - पण्डिता के अनोखे चित्रपट पर सभी की नजर पड़ती थी पर कोई उसका रहस्य नहीं समझ पाते थे । इसके बाद जो कुछ हुआ वह आगे लिखा जावेगा ।

श्रीमती के पिता वज्रदन्त चक्रवर्ती जो कि श्रीमती का उक्त हाल होने के बाद दिग्विजय के लिए चले गए थे अब लौटकर वापिस आ गये । यद्यपि वे अपने समस्त शत्रुओं को जीत कर आये थे इसलिये प्रसन्न चित्त थे तथापि श्रीमती की चिन्ता उन्हें रहकर म्लान मुख बना देती थी । मौका पाकर वज्रदन्त ने श्रीमती को अपने पास बुलाकर कुशल प्रश्न पूछा और फिर कहने लगे की प्यारी बेटा ! मुझे यशोधर महाराज के प्रसाद से अवधिज्ञान प्राप्त हुआ है इसलिये-मैं अपने, तुम्हारे और तुम्हारे प्रियभर्तार ललितांग देवके ही पूर्वभव जानने लगा हूं । मैं यह भई जान गया हूं कि तुम्हें देवों के देखने से अपने पूर्वभव का स्मरण हो आया है । जिससे- तुम अपने हृदबल्लभ ललितांग दे का बारबार स्मरण कर दुःखी हो रही हो । पर अब निश्चिंत होओ और पहले की तरह आनन्द से रहो । तुम्हारा ललितांग पुष्कलावती दश के उत्पलखेट नगर में रहनेवाले वज्रबाहु और रानी वसुन्धरा के वज्रजंघ नामका पुत्र हुआ है । जो कि हमारा भानेज है । उसके साथ तुम्हारा शीघ्र ही विवाह सम्बन्ध होने वाला है । इसी सिलसिले में राजा वज्रदन्त ने अपने, श्रीमती के और ललितांग देवके कितने ही पूर्वभवों का वृत्तान्त सुनाया था । जिन्हें सुनकर श्रीमती को अपार हर्ष हुआ । मैं आब बहनाई बज्रबाहु बहिन वसुन्धरा और भानेज वज्रजंघ को लेने के लिये जा रहा हूं । वे मुझ कुछ दूरी पर रास्तोंमें ही मिल जावेंगे यह कहकर चक्रवर्ती श्रीमती के पाससे गये ही थे कि इतने में पण्डिता धाय , जो कि श्रीमती के चित्रपट लेकर ललितांग देवको खोजने के लिये गई हुई थी, हंसती हुई वापिस आ गई और श्रीमती के सामने एक चित्रपट रखकर बैठ गई । यद्यपि

पिता के कहनेसे उसे ललितांग देवका पूरा पता लग गया था तथापि उसने कौतुक पूर्वक पण्डिता से उसका सब हाल पूछा । उत्तरमें पण्डिता बोली-सखि ! मैं यगां से तुम्हारा चित्रपट लेकर महापूत जिनालय को गई थी वहां जिनेन्द्र देवको प्रणाम कर वहाँकी चित्रशाला में बैठ गई । मैंने वहां पर ज्योंही तुम्हारा चित्रपट फैलाया त्योंही अनेक युवक क्या है ? क्या है ? कहकर उसे देखने लगे । पर उसका रहस्य किसीको समझमें नहीं आया । कुछ मनचले लोग उन्हें पान की इच्छासे झुठ मूठ ही उसका हाल बतलाते थें । पर मे उन्हें सहज ही में चुप कर देती थी । कुछ समय बाद वहां एक युवा आया जो देखने में साक्षात कामेश्वर सा लगाता था । उसने एक-एक कर के श्रामती के चित्रपट की समस्त हाल बतला दियां । देव समूह के देखने से यहां पर जैसी तुम्हारी अवस्था हो गई थी वहां चित्रपट देखने से ठीक वैसी ही अवस्था उसकी हो गई । वह देखते देखते मूर्च्छित हो कर जमिन पर गिर पड़ा । जब बन्धवर्ग ने उसे सचेत किया तब वह मुझे से पूछने लगा-भद्रे ! कहो, यह चित्रपट किसका है ? किस देव के मनोहर हाथों से इसका निर्माण हुआ है ? यह मुझे बहुत ही प्यारा लगता है । तब मैंने उस से कहा कि यह तुम्हारी मामी लक्ष्मीमती की पुत्री श्रीमती के कोमल हाथों से रजा गया है । मैंने उसकी चेष्टाओ से निश्चय कर लिया था कि यही ललितांग का जीव है । उसके बन्धुवर्ग से मुझे मालूम हुआ है कि वह पुष्कलावती देशके राजा वज्रबाहु का पुत्र है । लोग उसे वज्रजंघ नाम से पुकारते हैं । वज्रजंघ ने तुम्हारा चित्रपट अपने पास रख लिया है और यह दूसरा चित्रपट मेरे द्वारा तुम्हारे पास भेजा है । कैसा चित्रपट है सखि ? इतना कहकर पण्डिता चुप हो रही । श्रीमती ने कृतज्ञता भरी नजर से उसकी ओर देखा और फिर उस नूतन चित्रपट को हृदय से लगा लिया ।

इधर बज्रदन्त चक्रवर्ती की राजा बज्रबाहु बगैरह से रास्ते में ही भेंट हो गई । चक्रवर्ती, बहनोई बज्रबाहु, बहिन बसुन्धरा और भानजे बज्रजंघ को बड़े आदर सत्कार से लाअपने घर लिवा लाये । जब उन्हें घरपर रहते कुछ दिन हो गये तब चक्रवर्ती ने वज्रबाहु से कहा कि महाशय ! आप लोगों के आने से मुझे जो हर्ष हुआ है उसका वर्णन करना कठिन है । यदि आप लोग मुझपर प्यार करते है तो मेरे घर में आप के योग्य जो भी उत्तम वस्तु हो उसे स्वीकर कीजियेगा । तब वज्रबाहु ने कहा यद्यपि आप के प्रसाद से मेरे पास सब कुछ है-किसी वस्तुकी आकांक्षा नहीं है तथापि आपकी इच्छा है तो चिरंजीव बज्रजंघ के लिये आप अपनी पुत्री श्रीमती दे दीजियेगा । चक्रवर्ती तो यह चाहते ही थे उन्होंने ने झटसे बहनोई की प्रार्थना स्वीकार कर ली और विवाहकी तैयारी करनेके लिये सेवकोंको आज्ञा दे दी । सेवकों ने सुन्दर विवाह मण्डप बनाया तथा पुण्डरीकिणी पुरी को ऐसा सजाया कि उसके सामने इन्द्र की अमरावती भी लजाती थी । निदान शुभ मुहूर्त में वज्रजंघ और श्रीमती का विधिपूर्वक पाणिग्रहण हो गया । पाणिग्रहण के बाद वर-मधू अनेक जन-समूह के साथ महापूत चैत्यालय को गये और वहां जिनेन्द्र देव की अर्चा एवं स्तवन कर राज - मन्दिर को लौट आये । वहां चक्रवर्ती के बत्तीस हजार मुकुटबद्ध राजाओं ने वज्रजंघ और श्रीमती का स्वागत किया । विवाह के बाद वज्रजंघ ने कुछ समय तक अपनी ससुराल में ही रहकर

आमोद-प्रमोद से समय व्यतीत किया था। इस बीच में राजा वज्रबाहु ने अपनी अनुन्दरी नामकी पुत्री का चक्रवर्ती के ज्येष्ठ पुत्र अमिततेज के साथ विवाह कर दिया था। जब वज्रजंघ अपने घर वापिस जाने लगे तब चक्रवर्ती ने हाथी, घोडा, सोना, चांदी मणि मुक्ता आदि का बहुमूल्य दहेज देकर उन के साथ श्रीमती को बिदा कर दी। यद्यपि श्रीमती और वज्रजंघ के विरह से चक्रवर्ती की अन्तपुर में तथा सकल पुरवासी जम शोक से विव्हल हो उठे थे तथापि जिनका संयोग होता है उनका वियोग भी अवश्य होता है ऐसा सोचकर कुछ समय बाद शान्त हो गये थे। अनेक बन-उपवनोंकी शोभा निहारते हुए वज्रजंघ कुछ दिनों में अपनी राजधानी उत्पलखेट नगरीके प्राप्त हुए। उस समय राजकुमार बज्रजंघ और उनकी नवविवाहिता पत्नी के शुभागमन के उपलक्ष्य में उत्पलखेट नगरी खूब सजाई गई थी। महलों की शिखरों पर कई रंगों की ध्वजाएं फहरा रही थीं और राजमार्ग मणियों की बन्दनमालाओ से- विभूषित किये गये थे। सडकों पर सुगन्धित जल सींचकर बेला, जुही चमेली आदी बिखेरे- गये थे। नववधू श्रीमती को देखने केलिये महलोंकी छतों पर स्त्रियां एकत्रित हो रही थीं और जगह जगह पर नृत्य, गीत वादित्र आदि के सुन्दर शब्द सुनाई पड़ते थे। वज्रजंघ ने श्रीमती के साथ राजभवन में प्रवेश किया। माता पिता के वियोग से जब कभी श्रीमती दुखी होता थी तब वज्रजंघ अपनी लीलाओ ओर रस भरे शब्दों से उसके दुःखको क्षण एकमें दूर कर देते थे। श्रीमती के साथ उसकी प्यारी सखी पण्डिता भी आई थी उसलिये वह श्रीमती को कभी दुखी नहीं होने देती थी। धीरे धीरे बहुत समय बीत गया उसी बीचमें क्रम क्रमसे श्रीमती के पचास युगल अर्थात् सौ पुत्र हुए जो अपनी स्वाभाविक शोभा से इन्द्रपुत्र जयन्त को भी शर्मिन्दा करते थे। उन सबसे वज्रबाहु और वज्रजंघ आदि ने अपने गृहस्थ जीवनको सफल माना था।

किसी समय राजा वज्रबाहु मकान की छतपर बैठे हुए आकाश की सुषमा देख रहे थे। ज्योंही वहां उन्होंने क्षण एक में विलीन होते हुयें मेघ खंड को देखा त्योंही उनके अन्तरंग नत्र खुल गये। वे सोचने लगे कि - संसार के सभी पदार्थ इसी मेघ खण्ड की तरह क्षणभंगुर हैं। मैं इस राज्य विभूत को स्थिर समझकर व्यर्थ ही इसमें विमोहित हो रहा हूं। नवभव पाकर भी जिसने मोक्ष प्राप्ती केलिये प्रयत्न नहीं किया वह फिर हमेशा के लिए पछताता रहता है इत्यादी बिचार कर वज्रबाहु महाराज संसार से एक दम उदास हो गये और बहुत जल्दी वज्रजंघ केलिये राज्य दे, बनमें जाकर किन्ही आचार्य के पास दीक्षा लेकर तप करने लगे। उनके साथमें श्रीमती के सौ पुत्र, पण्डिता सखी, अनेक राजाओं ने भी जिनदीक्षा ग्रहण की थी। उधर मुनिराज वज्रबाहु कुछ समय बाद केवलज्ञान प्राप्त कर सदाकेलिये संसार के बन्धनों से छूट गये। और इधर पिता तथा पुत्रों के विरह से शोकातुर वज्रजंघ नीति पूर्वक प्रजा का पालन करने लगे। अब श्रीमती के पिता बज्रदन्त का भी कुछ हाल सुनिये।

एक दिन चक्रवर्ती राजसभा में बैठे हुये थे कि मालीने उन्हें एक कमल का फूल अर्पित किया। उस कमल की सुगन्धिसे चारों ओर भौरें मंडारा रहे थे। ज्योंही उन्होंने निमीलित कमल को विकसाने का प्रयत्न किया त्योंही उस कमल में रुके हुए एक मृत भौरेंपर उनकी दृष्टी पड़ी। वह भौरा सुगन्धि के

लोभ से सायंकाल के समय कमल के भीतर बैठा हुआ था कि अचानक सूर्य अस्त हो गया जिस से वह उसी में बन्द होकर मर गया था । उसे देखते ही चक्रवर्ती सोचने लगे कि जब यह भौरा एक नासिका इन्द्रियों के विषय में आसक्ती होकर मर गया है तब जो रात दिन पांचों इन्द्रियों के विषयों में आसक्त हो रहे हैं वे क्या भौरेही तरह मृत्युको-प्राप्त न होवेंगे ? सच है - संसार में इन्द्रियों के विषय ही प्राणियों की दुःखी किया करते हैं । मैंने जीवन भर विषय भोगे पर कभी सन्तुष्ट नहीं हुआ । इत्यादी विचारकर उन्होंने जिनदीक्षा धारण करनेका दृढ़ संकल्प कर लिया । चक्रवर्ती ने अपने बड़े पुत्र अमिततेज के लिये-राज्य देना चाहा पर जब उसने और उसके छोटे भाईने राज्य लेना स्वीकार नहीं किया तब उन्होंने-अमिततेज के पुण्डरीक नामक पुत्र के लिये जिसकी आयु उस समय सिर्फ छह महा की थी राज्य दे दिया और आप अनेक राजाओं पुत्रों तथा पुरवासियों के साथ दीक्षित हो गये चक्रवर्ती और अमिततेज के विरह से सम्राज्ञी लक्ष्मीमती तथा अनुन्दरी आदिको बहुत दुःख हुआ । कहां चक्रवर्ती का विशाल राज्य और कहां छह माहका अबोध बालक पुण्डरीक अब इस राज्य की रक्षा किस तरह होगी ? इत्यादी विचार कर लक्ष्मीमती ने दामाद वज्रजंघ के लिये एक पत्र लिखा और उसे एक पिटारे में बन्दकर चिन्तागति तथा मनोगति नाम के विद्याधर दूतों के द्वारा उनके पास भेज दिया । जब वज्रजंघ ने पिटारा खोलकर उसमें का पत्र पढ़ा तब उन्हें बहुत दुःख हुआ । श्रीमती के दुःख का तो पार ही नहीं रहा । वह पिता और भाइयों का स्मरण कर विलाप करने लगी । पर राजा वज्रजंघ संसार की परिस्थिति से भली भांति परिचित थे इसलिये उन्होंने किसी तरह अपना शोक दूर कर श्रीमती को धीरज बंधाया, और मैं आता हूं कह कर उन विद्याधर दूतों- को वापिस भेज दिया । कुछ समय बाद राजा वज्रजंघ और श्रीमती ने पुण्डरीक पुरी की ओर प्रस्थान किया । उनके साथ महामन्त्री मतिवर, पुरोहित आनन्द, सेठ धनमित्र, और सेनापति अकम्पन भी थे । इन सबके साथ हाथी, घोडा, रथ, प्यादे आदि से भरी हुई विशाल सेना थी । चलते चलते वज्रजंघ किसी सुन्दर सरोवर के पास पहुंचे । वहां चारों ओर सेना को - ठहराकर स्वयं श्रीमती के साथ अपने तम्बू में चले गये । इतने में यदि बन में आहार मिलेगा तो लेवेंगे , गांव नगर आदि में नहीं ऐसी प्रतिज्ञा कर दो मुनिराज आकाश में बिहार करते हुए वहां से निकले । जब उन मुनियों पर राजा की दृष्टी पड़ी तब उसने उन्हें भक्ति सहित पड़गाहा और श्रीमती के साथ शुद्ध सरस आहार दिया वहां से निकले । और श्रीमती के साथ शुद्ध सरस आहार दिया । जब आहार लेकर मुनिराज बन की ओर विहार कर गये तब राजा वज्रजंघ से उनके पहरेदार ने कहा कि महाराज ! ये युगल मुनि आपके - सबसे लघु पुत्र हैं । आत्मशुद्धि के लिये हमेशा बन में रहते हैं । यहां तक कि आहारके लिये भी नगर में नहीं जाते । यह सुनकर वज्रजंघ और श्रीमती के शरीर में हर्षके रोमांच निकल आये । वे दोनों लपक कर उसी ओर गये जिस ओर कि मुनिराज गये थे ।

निर्जन बन में एक शिलापर बैठे हुए मुनि युगल को देखकर राजदम्पती के हर्ष का पार नहीं रहा । राजा रानीने भक्ति से मुनिराज के चरणों अपना माथा झुका दिया तथा विनय पूर्वक बैठकर उनसे गृहस्थ

धर्म का व्याख्यान सुना । इसके बाद अपने और श्रीमतीके पूर्वभव सुनकर राजाने पूछा- डहे मुनिराज ! ये मतिवर, आनन्द, धनमित्र, और अकम्पन मुझसे बहुत प्यार करते - है । मेरा भी इन मे अधिक स्नेह है, इसका क्या कारण है ? उत्तरमें मुनिराज बाले ड राजन ! अधिकतर पूर्वभवका संस्कारों से ही प्राणियों में परस्पर स्नेह या द्वेष रहा करता है । आपका भी इनके साथ पूर्वभवका सम्बन्ध है । सुनिये, मैं इनके पूर्वभव सुनाता हूँ ।

जम्बूद्वीप के पूर्व विदेह क्षेत्र मे एक वत्सकावती देश है उस में प्रभाकारी नामकी एक सुन्दर नगरी है । वहां के राजाका नाम नरपाल था । नरपाल हमेशा आरम्भ परिग्रह में लीन रहता था इसलिये वह मरकर पंकप्रबा नामके नरकमें नारकी हुआ । वहां दश सागर पर्यन्त अनेक दुःख भोगता रहा । फिर वहां से निकलकर उसी नगरीके पास मे विद्यमान एक सागर पर्वतपर शार्दूल हुआ । किसी समय उस पर्वतपर वहां के तात्कालिक राजा प्रीतिवर्धन अपने छोटे भाईके साथ ठहरे हुए थे । राजा पुरोहितने उनसे कहा - यदि आप इस पर्वतपर मुनिराजके लिये आहार देवें- तो विशेष लाभ होगा । जब राजाने पुरोहित से कहा कि इस निर्जन पहाडपर कोई मुनि आहार के लिये क्यों आवेगा ? तब कहा कि तुम नगरी के समस्त रास्ते सुगन्धित जलसे- सिंचवाकर उन पर ताजे फूल बिछवा दो अर्थात् नगरी को इस तरह सजवा दो कि जिससे कोई निर्ग्रन्थ मुनि उसमें प्रवेश न कर सकें । क्योंकि वे अप्रासुक भूमिपर एक कदम भी नहीं रखते । तब कोई मुनि आहार के लिये नगर में न जाकर इसी ओर आवेंगे सो आप पड़गाहकर उन्हें- विधि पूर्वक आहार दे सकते है । राजा प्रीतिवर्धन ने पुरोहित के कहे अनुसार ऐसा ही किया जिस से एक पिहितास्त्रव नामके मुनि नगरी को बिहार के अयोग्य समझकर बन में आहार मिलेगा तो लेवेंगे अन्यथा नहीं ऐसा संकल्प कर उसी पर्वत की ओर गये जहांपर राजा प्रीतिवर्धन मुनिराज की प्रतीक्षा कर रहे थे । मुनिराज को आते हुए देखकर राजा ने उन्हें भक्ति पूर्वक पड़गाहा और उत्तम आहार दिया । पात्रदानसे प्रभावित होकर देवोंने वहांपर रत्नों की वर्षा की रत्नों को बरसते देखकर मुनिराज पिहितास्त्रव ने राजा से कहा है धरारमण ! दान के वैभव से बरसती रत्नधारा को देखकर जिसे जाति स्मरण हो गया है ऐसा एक शार्दूल इसी पर्वतपर सन्यासवृत्ति धारण किये हुए है सो तुम उसकी योग्य रीति से परिचर्या करो । वह आगे चलकर भरत क्षेत्र मे प्रथम तीर्थकर वृषभनाथ का प्रथम पुत्र सम्राट भरत होकर मोक्ष प्राप्त करेगा ।

मुनिराज के कहे अनुसार राजाने जाकर उस शार्दूल की खूब परिचर्या की और मुनिराज ने स्वयं पंच नमस्कार मन्त्र सुनाया । जिससे वह अठारह दिन बाद समता परिणामों से मरकर ऐशान स्वर्ग के दिवाकरप्रभ विमान में दिवाकर देव हुआ । पात्रदान के तात्कालिक अभ्युदय से चकित होकर प्रीतिवर्धन राजा के सेनापति, मन्त्रि और पुरोहितने भी अत्यन्त शान्त परिणामों से राजाके द्वारा दिये गये मुनिदान की अनुमोदना की जिस के प्रभाव से तीनों मरकर कुरुक्षेत्र उत्तम भोगभूमि में आर्य हुए । और वहां की आयु पूर्णकर ऐशान स्वर्ग के प्रभा , कांचन और रुषित नाम के विमानों में क्रम से प्रभाकर , कनकाभ और

प्रभञ्ज नाम के देव हुए । जब आप ऐशान स्वर्ग में ललितांग देव थे तब ये सब तुम्हारे परिवार के देव थे । वहां से चय कर वह शार्दूल का जीव दिवाकर देव श्रीमती और सागर का लड़का होकर मतिवर नामका आपका मन्त्री हुआ है । कनकप्रभ का जीव अनन्तमति और श्रुतकीर्तिका सुपुत्र होकर आप का आनन्द नामधारी पुरोहित हुआ है । प्रभाकर का जीव, अजीव और अपराजित सेनानी का पुत्र होकर अकंमन नाम से प्रसिद्ध आपका सेनापति हुआ है और प्रभंजन का जीव धनदत्त एवं धनदत्ता का पुत्र होकर धनमित्र नामसे प्रसिद्ध आपका सेठ हुआ है । बस, इस पूर्वभव के बन्धन से ही आपका इनमें और इनका आप में अधिक स्नेह है । इस तरह मुनिराज के मुखसे मतिवर आदिका परिचय पाकर श्रीमती और वज्रजंघ बहुत ही प्रसन्न हुए । उस निर्जन बन में राजा और मुनिराज के बीच जब यह सम्वाद चल रहा था तब वहां नेवला, शार्दूल, बन्दर और सुअर ये चार जीव मुनिराज के चरणों में अनिमेष दृष्टी लगाये हुए थे । वज्रजंघने कौतुकवश मुनिराज से पूछा - हे तपोनिधी ! ये नकुल आदि चार जीव आपकी और टकटकी लगाये क्यों बैठे हैं ? तब उन्होंने कहा - सुनिये, यह व्याघ्र पहले इसी देश में शोभायमान हस्तिनापुरमें धनवती सागरदत्त नामक वैश्य दम्पति के उग्रसेन नामक पुत्र था । यह क्रोधी बहुत था इसलिए इसने अपने जीवन में तिर्यच आयुका बन्ध कर लिया था । उग्रसेन वहां के राजभण्डार का प्रधान कार्यकर्ता था इसलिए वह दूसरे छोटे नौकरों को दबाकर भण्डार से घी चावल आदि वस्तुएं वेश्याओं के लिये दिया करता था । जब राजा को इस बात का पता चला तब उसने- उसे पकड़वा कर खूब मार लगावाई जिससे वह मर कर यह व्याघ्र हुआ है ।

यह सुअर पूर्वभव में विजय नगर के वसन्तसेना और महानन्द नामक राजा-दम्पतिका हरिवाहन नाम से प्रसिद्ध पुत्र था । हरिवान अधिक अभिमानी था , वह अपने सामने किसी को- कुछ भी नहीं समझता था । यहां तक कि पिता वगैरह गुरुजनोंकी भी आज्ञा नहीं मानता था । एक दिन इसके पिताने इसे कुछ आज्ञा दी जिसे न मानकर इसने पत्थर के खम्भेसे अपना सिर फोड़ लिया और उसकी व्यथा से मरकर यह सुअर हुआ है ।

यह बन्दर अपने पहले भव में धान्य नगर के सुदत्ता और कुबेर नामक वैश्य- दम्पति का नागदत्त नाम से प्रसिद्ध पुत्र था । यह बड़ा मायावी था , इसका चित्त हमेशा छल-कपट करने में लगा रहता था । किसी समय इसकी माँ ने अपनी छोटी लड़की की शादीके लिये दूकाम में से कुछ धन ले लिया जिसे यह नहीं देना चाहता था । इसने माँ से धन लेने के लिये अनेक उपाय किये पर वे सब निष्फल हुए । अन्त में इसी दुःखी से मरकर यह बन्दर हुआ है ।

और यह नेवला भी पहले भव में सुप्रतिष्ठित नगर में कादम्बिक नामका पुरुष था । कादम्बिक बहुत लोभी था । किसी समय वहां के राजाने जिन मन्दिर बनवाने के कामपर इसे नियुक्त किया । सो यह ईंट लानेवाले पुरुषों को कुछ धन देकर बहुत कुछ ईंटें अपने घर डलवाता जाता था । भाग्यवश इसी कुछ ईंटों में इसे सोने की शलाकायें मिल गयीं जिससे- इसका लोभ और भी अधिक बढ़ गया । कादम्बिक



को एक दिन अपनी लड़की की ससुराल जाना पड़ा सो वह बतदले मे मन्दिरके कामपर अपने पुत्र को नियुक्त कर गया था और उससे- कह भी गया था कि मोका पाकर कुछ ईंटें अपने घरपर भिजवाते जाना । परन्तु पुत्रने यह पापका काम नहीं किया । जब कादम्बिक लौटकर वापिस आया और मालूम हुआ कि लड़केने हमारे- कहे अनुसार घरपर ईंटें नहीं डलवाई है तब उसने उसे खूब पीटा और साथ में यदि ये पावं न होते तो मैं लड़की की ससुराल भी न जाता ऐसा सोचकर अपने पांव भी काट लिये । जब राजा को इस बातका पता चला तब उसने इसे खूब पिटवाया जिससे मर कर वह नेवला हुआ है ।

आज आपने जो मुझ आहार दिया है उसका वैभव देखने से इन सबको अपने पूर्व भवों का स्मरण हो गया है जिससे ये सब अपने कुकर्मोंपर पश्चाताप कर रहे हैं । इन सबने- आज पात्रदान की अनुमोदना से विशेष पुण्यका संचय किया है इसलिये ये मरकर उत्तर भोग-भूमि कुरक्षेत्र में पैदा होवेंगे । ये सब आठ भवों तक आपके साथ स्वर्ग एवं मनुष्योंके सुख भोगकर संसार बन्धन से मुक्त हो जावेंगे । हां, और इस श्रीमतीका जीव आपके तीर्थ में दान तीर्थकार चलाने वाला क्षयांसकुमार होग तथा उसी पर्याय से मोक्ष श्रेयांस प्राप्त करेगा 5

इस तरह मुनिराज के सुभाषित से राजा बज्रजंघ और रानी श्रीमती को जो आनन्द हुआ था उसका वर्णन करना कठिन है । दोनों राज दम्पति मुनिराजको नमस्कार कर अपने तम्बूकी ओर चले आये और मुनि युगल भी अनन्त आकाश मे बिहार कर गये । बज्रजंघ ने वह दिन उसी सरोवर केकिनारे पर बिताया । फिर कुछ दिनोंतक चलने के बाद समस्त सेना और परिवार के साथ पुण्डरीकिणी पुरु में प्रवेश किया । वहां उन्होंने शोकसे आम्रन्त लक्ष्मीपती और बहिन अनुन्दरी को समझाकर बालक पुण्डरीक का राज्य -तिलक किया तथा जबतक पुण्डरीक, राज्यकार्य संभालनेके लिये योग्य न हो जावे तबतक के लिये विश्वस्त वृध्द मन्त्रियों के जिम्मे राज्य का भार सौंप दिया । इस तरह कुछ दिन पुण्डरीकिणी पुरी में रहकर परिवार और सेनाके साथ अपने- उत्पलखेट नगर को लौट आये । प्रजाने राजा बज्रजंघ के शुभागमनके उपलक्ष मे राजधानी की खूब सजावट की थी ।

एक दिन रात के समय वज्रजंघ और श्रीमती जिस शयनागार में सो रहे थे उस में सब ओर चन्दन आदिकी सुगन्धित धूपका धुंवा फैल रहा थां । दुर्भाग्य से उस दिन नौकर वहां कि खिड़कियां खोलना भूल गया जिससे वह धुवां वही संचित होता रहा । उसी धुंए मे अचानक राज-दम्पतिका श्वास रुक गया और वे दोनों सदा केलिये सोते रह गये । जब सबेरे राज और रानीकी आकस्मिक मृत्यु का समाचार नगर मे फैला तब समस्त नगरवासी हा हा कार करने लगे । सभी और शोक के चिन्ह दिखाई देने लगे । अन्तःपुरकी स्त्रियों के करुणा किलाप से -सार आकाश गुंज उठा । पर किया क्या जाता ? होनहार अमित थी । अब पाठकों को अधिक न रुलाकर आगे एक सुन्दर क्षेत्रमें लिये चलता हूं ।

जम्बूद्वीप के मेरु पर्वत से उत्तर की ओर एक उत्तर कुरु नाम का सुहावना क्षेत्र है । वह क्षेत्र खूब हरा भार रहता है । वहां दस तरह के कल्पवृक्ष है जो कि वहां के मनुष्यों को हरएक प्रकास की खाने ,

पीने ,पहनने, रहने आदि को सुन्दर सामग्री दिया करते है । वहां स्वच्छ जल से भरे हुए सुन्दर सरोवर है । जिनमें बड़े बड़े कमल फूल रहे है । बनकी भूमि हरी - हरी घाससे शोभायमान है । वहां के नर नारियों तथा पशु- पक्षियोंकी तीन पत्य प्रमाण आयु होती है और जीवन भर कभी किसी को कोई बीमारी नहीं होती । यदि संक्षेप से वहां के मनुष्यों के- सुखोंका वर्णन पूछा जावे तो यही उत्तर पर्याप्त होगा कि वहां के मनुष्यों को जो सुख है वह कहींपर नहीं है और जो सब जगह हे उससे बढ़कर वहां है । जो सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्रसे विभूषित उत्तम-पात्र मुनियोंके लिये भक्तिसे आहार देते है वे ही मरकर वहां जन्म लेते है । वज्रजंघ और श्रीमता ने भी पुण्डरीकिणी पुरी को जाते समय सरोवर के तटपर मुनि युगल के लिये आहार दान दिया था इसलिये वे दोनों मरकर ऊपर कहे हुए उत्तर कुरु क्षेत्र में उत्तम आर्य हुए । जिनका कथन पहले कर आये हैं वे नेवला, व्याघ्र, सुअर और बन्दर भी उसी कुरुक्षेत्र में आर्य हुए । कारण कि उन सबने मुनिदान की अनुमोदना की थी । वहांपर वे सब मनवांछित भोग भोगते हुए सुखसे रहने लगे ।

इधर उत्पलेखट नगरमें वज्रजंघके विरहसे मतिवर, आनन्द., धनिमत्र और अकम्पन पहले तो बहुत दुःखी हुए, फिर बाद मे दृढधर्म नामक मुनिराज के पासमें जिनदीक्षा धारण कर उग्र तपश्चर्या के प्रभावसे अधोग्रैवेयक में अहमिन्द्र हुए ।

एक दिन उत्तर कुरु क्षेत्र मे आर्य और आर्या जो कि वज्रजंघ और श्रीमती के जीव थे , कल्पवृक्षके नीचे बैठे हुए क्रीड़ा कर रहे थे कि इतने मे वहांपर आकाश मार्ग से विहार करते हुए दो मुनिराज पधारे । आर्य दम्पतिने खडे होकर उनका स्वागत किया और चरणों में नमस्कार कर पूछा- ऐ मुनीन्द्र ! आप लोगोंका क्या नाम है ? कहांसे आ रहे है ? और इस भोग भूमिमें किस लिये घूम रहे हैं । आप की शान्तमुद्र देखकर हमारा हृदय भक्तिसे- उमड़ रहा है । कृपा कर कहिये , आप कौन है ? यह सुनकर उन मुनियों में जो बड़े मुनि थे बोले- आर्य ! पूर्वकाल मे जब तुम महाबल थे तब मैं आपका स्वयंबुध्द नामका मन्त्री था । मैंने ही आपको जैन धर्मका उपदेश दिया था । जब आप बाईस दिनका सन्यास समाप्त कर स्वर्ग चले गये थे तब आपके विरहसे दुःखी होकर मैंने जिनदीक्षा धारण कर ली थी जिसके प्रभावसे मैं आयुके अन्तमें मर कर सौधर्म स्वर्गके स्वयंप्रभ विमानमें मणिचूल नामका देव हुआ था । वहांसे चयकर जम्बूद्वीप के पूर्व विदेह सम्बन्धी पुष्कलावती देशमें स्थित पुण्डरीकिणी नगरी में सुन्दरी और प्रियसेन नामके राज-दाम्पतिके प्रीतिकार नामसे प्रसिध्द ज्येष्ठ हुत्र हुआ हूं । मैं प्रीतिदेव नामक अपने छोटे भाईके साथ अल्प वय में ही स्वयंप्रभ जिनेन्द्र के समीप दीक्षित हो गया था । तीव्र तपके प्रभाव से हम लोगों को आकाश में चलने की शक्ति और अवधिज्ञान प्राप्त हो गया है ।

जब मुझे अवधिज्ञानसे मालूम हुआ कि आप यहांपर उत्पन्न हुए हैं तब मैं आपको धर्मका स्वरूप समझाने के लिये यहां आया हूं । यह दूसरा मेरा छोटा भाई प्रीतिदेव है । ऐ भव्य ! विषयाभिलाषा की प्रवलतासे महाबल पर्याय में तुम्हें निर्मल सम्यग्दर्शन प्राप्त नहीं हुआ था इसलिये आज निर्मल दर्शन को

धारण करो । यह दर्शन ही संसारके समस्त दुःखों को दूर करता है जीव, अजीव, आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा और मोक्ष इन सात तत्त्वों तथा दयामय धर्मका सच्चे दिलसे विश्वास करना सो सम्यग्दर्शन है । हमेशा निःशंक रहना भोगों से उदास रहना, ग्लानिका जीतना, विचार कर कार्य करना, दूसरों के दोष छिपाना, गिरते हुएको सहारा देना, धर्मात्माओं से प्रेम रखना और सम्यग्ज्ञान का प्रचार करना ये उसके आठ अंग हैं । प्रशम. संवेग, अनुकम्पा और आस्तिक्य भाव उसके गुण हैं । इस तरह आर्यको उपदेश देकर प्रीतिकर महाराजने आर्यासे भी कहा-अम्बे ! मैं स्त्री हूं इसलिये यह कुछ नहीं कर सकती यह सोचकर दुखी मत होओ । सम्यग्दर्शन तो प्राणी मात्रका धर्म है उसे हर कोई धारण कर सकता है ।

मुनिराज के उपदेश से आर्य और आर्याने अत्यन्त प्रसन्न होकर अपनी आत्माओंको निर्मल सम्यग्दर्शन से विभूषित किया काम हो चुकने के बाद मुनिराज आकाश मार्गसे विहार कर गये । कुछ समय बाद आयु पूर्ण होनेपर वज्रजंघका जीव आर्य ऐशान स्वर्गके श्रीप्रभ विमान में- श्रीधर नामका देव हुआ और श्रीमती आर्याका जीव उसी स्वर्ग के स्वयंप्रभ विमान में स्वयंप्रभ नामका देव हुआ । शार्दूल व्याघ्रका जीव उसी स्वर्ग के चित्रागंद नाम का सुअरका जीव नन्द विमान में मणिकुण्डली नामका, वानरका जीव नंदावर्त विमान में मनोहर नामका और नेवले- का जीव प्रभाकर विमान में मनोरथ नामका देव हुआ । वहां ये सब पुण्यके प्रताप से अनेक तरहकेभोग भोगते हुए सुखसे रहने लगे । किसी समय स्वयंबुध्द मन्त्री के जीव प्रीतिकर मुनिराज को-जिनने अभी उत्तर कुरुक्षेत्र में आर्य आर्याको सम्यग्दर्शन प्राप्त कराया था श्रीप्रभ पर्वतपर केवलज्ञान उत्पन्न हुआ । सभी देव उनकी वंदना के लिये गये । श्रीधर देवने भी जाकर अपने- गुरु केवली भगवान प्रीतिकर को भक्ति सहित नमस्कार किया और फिर धर्मका स्वरूप सुननेकेबाद पूछा भगवन् !

महाबल भव मे जो मेरे संभिन्नमति, शतमति और महामति नामके तीन मिथ्यादृष्टी मन्त्री थे वे अब कहां पर हैं ? उन्होंने कहा कि संभिन्न मति और महामति निगोद राशि में उत्पन्न होकर अचिन्त्य दुख भोग रहे हैं । और शतमति मिथ्याज्ञान के प्रभाव से दूसरे नरक में कष्ट पा रहा है । जो जैसा कार्य करता है वैसा फल पाता है ।

यह सुनकर श्रीधर देवको बहुत ही दुख हुआ । वह संभिन्नमति और महामति के विषय में तो कर ही क्या सकता था ? हां , पुरुषार्थ से शतमति को सुधार सकता था इसलिये झटसे दुसरे नरक में गया । वहां अवधिज्ञानसे शतमति मन्त्री के जीव नारकीको पहिचान कर उससे- कहने लगा- क्यों महाशय ! आप मुझे पहिचानते है ? मैं विद्याधरोंका राज महाबलका जीव हूं । मिथ्याज्ञानके कारण आपको ये नरकके तीव्र दुःख प्राप्त हुए है । अब यदि इनसे छुटकारा चाहते - हो तो सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञानसे अपने आपको अलंकृत करो । श्रीधर के उपदेश से नारकी शतमतिने शीघ्र ही सम्यग्दर्शन धारण कर लिया सम्यग्दर्शन के प्रभावसे उसका समस्त ज्ञान सम्यग्ज्ञान हो गया । श्रीधर देव कार्यकी सफलतासे प्रसन्न चित्त होता हुआ अपने स्थानपर वापिस लौट आया । वह शतमतिका जीव नारकी भी नरककी आयु

पूर्णकर पुष्करार्ध द्वीपके पूर्वार्ध भाग में विशोभित पूर्व विदेह सम्बन्धी मंगलावती देश में स्थित रत्नसंचय नगर में रहने वाले सुन्दरी और मनोहर नामक राज - दम्पति के जयसेन नामका पुत्र हुआ । जिस समय जयसेन का विवाह होने- वाला था उसी समय श्रीधर देवने जाकर समझाया और नरक के समस्त दुःखों की याद दिलाई । जिससे उसने विरक्त होकर कमधर मुनिराज के पास दीक्षा ले ली । और कठिन तपश्चर्या के प्रभावसे मरकर पांचवें स्वर्ग में ब्रह्मेन्द्र हुआ । ब्रह्मेन्द्रने जब अवधिज्ञान से अपने उपकारी श्रीधर देवका परिचय प्राप्त किया तब उसने पास जाकर विनम्र और मीठे शब्दोंमें कृतज्ञता प्रकट की ।

कुछ समय बाद श्रीधर देव स्वर्गसे चयकर जम्बूद्वीपके विदेह सम्बन्धी महावत्सकावती देश मे स्थित सुसीमा नगरीके सुदृष्टि और सुनन्दा नामक राजदम्पतिके सुविधा नामका पुत्र हुआ । वहा सुविधि बहुत ही भाग्यशाली ओर बुद्धीमान लड़का था । अभयघोष चक्रवर्ती उसके मामा थे । चक्रवर्तीके मनोहरा नामकी एक सुन्दरी कन्या थी जो सचमुच में मनोहरा ही थी । राजा सुदृष्टि योग्य अवस्था देखकर सुविधि का मनोहरा के साथ विवाह करवा दिया जिससे वे दोनों विविध भोगों को भोगते हुए सुख से समय बिताने लगे । कुछ समय बाद राजा सुदृष्टि राज्यका भार सुविधि के लिये सौंपकर मुनि हो गये । सुविधि राज्य कार्य में बहुत ही कुशल पुरुष था जिससे उसकी धवलकीर्ती चारों ओर फैल गई थी ओर समस्त शत्रुओं की सेना अपने आप वश में हो गई थी ।

काल पाकर सुविधि राजा के केशव नामका पुत्र हुआ । सुविधि राजाकी वज्रजंघ पर्याय में जो श्रीमती का जीव था वह भोग भूमिके भोग भोग चुकनेके बाद दूसरे स्वर्गके स्वयंप्रभ विमानमें स्वयंप्रभ नामका देव हुआ था । वही जीव राज सुविधिके केशव नामका पुत्र हुआ था । पूर्वभवके संस्कारसे , राजाका उसमें अधिक स्नेह रहता था । शार्दूलका जीव चित्रांगद भी स्वर्गसे चयकर इसी देश में विभीषण राजा कि प्रियदत्ता पत्नीसे वरदत्त नामका पुत्र हुआ । सुअरका जीव मणि कुण्डली देव अनन्तमति और नन्दिषेण नामक राजदम्पतिके चित्रांगद नामका देव पुत्र हुआ और नकुलका जीव मनोरथ देव चित्रमालीनी और प्रभंजन नामक राजदम्पतिके मदन नामसे, प्रसिद्ध लड़का हुआ ।

कुछ समय बाद चक्रवर्ती अभयघोषने अठारह हजार राजाओं के साथ विमलवाहन नामक मुनिराज के पास जिनदीक्षा ले ली । वरदत्त, वरसेन, चित्रांगद और मदन भी चक्रवर्ती के साथ दीक्षित हो गये थे । पर सुविधि राजाका अपने केशव पुत्र में अधिक स्नेह था इसलिये- वे घर छोड़कर मुनि न हो सके किन्तु उत्कृष्ट श्रावक के व्रत रखकर घरपर ही धर्म सेवन करते रहे । और आयुके अन्त समय में महाव्रत धारण कर कठिन तपस्या के प्रभाव से सोलहवें अच्युत स्वर्ग में अच्युतेन्द्र हुए । पिताके वियोग से दुःखी केशवने भी जिनदीक्षा की शरण ली । वह आयुके अन्तमें मरकर उसी स्वर्गमें प्रतीन्द्र हुआ । तथा वरदत्त आदि राजपुत्र भी अपनी तपस्याके प्रभावसे उसी स्वर्गमें सामानिक जातिके देव हुए । इन सभी की विभूति इन्द्र के समान थी । वहां अच्युतेन्द्र की बाईस सागर प्रमाण आयु थी । बाईसे हजार वर्ष बीत जाने पर आहार की अभिलाषा होती थी , सो शीघ्र ही कण्ठ में अमृत झर जाता था, बाईसे पक्ष में एक बार श्वासोच्छ्वास

होता था । उसका शरीर तीन हाथ ऊंचा था । वह सोने सा चमकता था । मनमें इन्द्राणी का स्मरण होते ही उसकी काम सेवन की इच्छा शान्त हो जाती थी । कहने का मतलब यह है वह हर एक तरह से सुखी था ।

आयुके अन्तमें वह अच्युतेन्द्र स्वर्ग से चयकर जम्बूद्वीप-सम्बन्धी पूर्व विदेह में स्थित पुष्कलावती देश की पुण्डरीकिणी नगरी में श्रीकान्त और वज्रसेना नामक राजदम्पति के पुत्र हुआ । वहां उसका नाम वज्रनाभि था । वरदत्त, वरसेन, चित्रांगग और मदन जोकि अच्युत स्वर्ग में सामानिक देव हुए थे वहां से चयकर क्रमसे वज्रनाभिके विजय. वैजयन्त, जयन्त और अपराजित नाम के लघु सहोदर-छोटे भाई हुए । और केशव जो कि सोलह वे स्वर्ग में प्रतीन्द्र हुआ था वहां से चयकर इसी पुण्डरीकिणी पुरी में कुवेरदत्त तथा अनन्तमती नामक वैश्य दम्पति के धनदेव नामका लड़का हुआ । वज्रनाभि के वज्रजंघ भव में जो मतिवर, आनन्द, धनमित्र और अकम्पन नाम के मन्त्री, पुरोहित, सेठ और सेनापति थे वे मरकर अधोग्रैवेयक में अहमिन्द्र हुए थे वे भी वहांसे चयकर वज्रनाभिके भाई हुए । वहां उनके सुबाह, महाबाहु पीठ और महापीठ नाम रखे थे । इस तरह ऊपर कहे हुए दशों बालक एक साथ खेलते, बैठते उठते , लिखते और पढ़ते थे क्योंकि उन सबका परस्पर में बहुत प्रेम था । राजपुत्र वज्रनाभि का शरीर पहले सा सुन्दर था पर जवानी के आने पर वह और भी अधिक सुन्दर मालूम होने लगा था ।

उस समय उसकी लम्बी और स्थूल भुजाएं , चौड़ा सीना . गम्भीर नयन तथा तेजस्वी चेहरा देखते ही बनता था । एक दिन वज्रनाभि के पिता वज्रसेन महाराज संसार के विषायों से उदास होकर वैराग्य का चिन्तन करने लगे उसी समय लौकान्तिक देवों ने आकर उनके विरक्त विचारों का समर्थन किया जिस से उनका वैराग्य और भी आधिक बढ़ गया । अन्तमें वे ज्येष्ठ पुत्र वज्रनाभि को राज्य देकर हजार राजओ के साथ दीक्षित हो गये ओर कठिन तपस्याओं से केवलज्ञान प्राप्त कर अपनी दिव्य वाणीसे पथ-भ्रान्त पुरुषों को सच्चा मार्ग बतलाने लगे और कुछ समय बाद आठों कर्मा को नष्टकर मोक्ष स्थानपर पहुंचे गये । इधर वज्रनाभि की आयुधशाला में चक्ररत्न प्रकट हुआ जिस में एक हजार आरे थे और जो कान्ति से सहस्र किरण सूर्य-सा चमकता था । चक्ररत्न को आगे कर राजा दिग्विजयके लिये निकले और कुछ समय बाद दिग्विजयी होकर लौट आये । अब वज्रनाभि चक्रवर्ती कहलाने लगे थे । उनका प्रताप और यश सब ओर फैल रहा था । उस समय वहां उनसा सम्पत्तिशाली पुरुष दूसरा नहीं था । जो केशव ( श्रीमती का जीव ) स्वर्ग से चयकर उस पुण्डरीकिणी पुरी में कुवेरदत्त और अनन्तमती नामक वैश्य-दम्पति के धनदेव नामका पुत्र हुआ था वह वज्रनाभि का गृहपति नामक रत्न हुआ । इस प्रकार नौ निधि और चौदह रत्नों का स्वामी सम्राट वज्रनाभि का समय सुख रत्न से बीतने लगा । किसी समय महाराज वज्रनाभि का चित्त संसार से विरक्त हो गया जिससे वे अपने-बज्रदन्त पुत्र को राज्य का भार सौंपकर सोलह हजार राजाओं , एक हजार पुत्रों, आठ भाइयों और धनदेव के साथ तीर्थकर देव के समीप दीक्षित होकर तपस्या करने लगे । वज्रनाभि ने वहीपर दर्शन विशुद्ध विनय सम्पन्नता , शीलव्रतों में अतिचार नहीं लगाना, निरन्तर ज्ञानमय उपयोग रखना , संवेग, शक्त्यानुसार तप और त्याग , साधु समाधि वैयावृत्य, अर्हद्भक्ति, आचार्य भक्ति. बहुश्रुत भक्ति, प्रवचन भक्ति, आवश्यकपरिहाणि मार्ग प्रभावना और प्रवचन वासल्य इन सोलह भावानाओं का चिंतन किया जिससे उन्हें तीर्थकर प्रकृति का बन्ध हो गया । आयु के अन्त समय में वे श्रीप्रभ नामका पर्वत की शिखर पर पहुंचे और वहां शरीर से ममत्व छोड़कर आत्म-समाधि में लीन हो गये । जिस के फलस्वरूप नश्वर मनुष्य देह को छोड़कर सर्वार्थ सिद्धि मे अहमिन्द्र हुए । वहां उनकी आयु तेतीस सागर प्रमाण थी । और शरीर एक हाथ ऊंचा सफेद रंगका था । वे कभी संकल्प मात्र से प्राप्त हुए जल चंदन आदि से जिनेन्द्र देवकी पूजा करते और कभी अपनी इच्छासे पास में आये हुए अहमिन्द्रों के साथ तत्व चर्चाए करते थे ।

तेतीस हजार वर्ष बीत जाने पर उन्हें आहार की अभिलाषा होती थी सो भी तत्काल कण्ठ में अमृत झर जाता था । जिससे फिर उतने ही समयकेलिए निश्चिन्त हो जाते थे । उनका श्वासोच्छ्वास भी तेतीस पक्ष में चला करता था । संसार में उन जैसा सुखी कोई दूसरा नहीं था । यह अहमिन्द्र ही आगे चलकर कथा नायक भगवान वृषभनाथ होगा । विजय, वैजयन्त जयन्त, अपराजित, सुवाहु, महाबाहु, बाहु, पीठ महापीठ और धनदेव भी जो इन्हीं के साथ दीक्षित हो गये थे । आयु केअन्त में सन्यास पूर्वक शरीर छोड़कर सर्वार्थ सिद्धि विमान में अहमिन्द्र हुए थे । इन सबका वैभव वगैरह भी अहमिन्द्र वज्रनाभि के समान था । ये सभी भगनाव वृषभदेव के साथ माक्ष प्राप्त करेंगे ।

## पूर्वभव परिचय

### घनाक्षरी छन्द

आदि जै वर्मा दूजै, महाबल भूप तीजै, स्वर्ग ईशान ललितांग देव भयो है ।  
चौथे बज्रजंघ राय, पांचवें युगल देह, सम्यक हो दूजे देव लोक फिर गयो है ।  
सातवें सुविधि देव, आठवें अच्युत इन्द्र, नौमें भोनरिन्द्र बज्रनाभि नाम पायो है ।  
दशमें अहमिन्द्र जान, ग्यारमें ऋषभभान, नाभिवंश भूधरकेमाथ जन्म लियो है ।

भरतैरावयतो वृद्धिहासौ षट्समयाभ्यामुस्तिर्पिण्यवसर्पिणीभ्याम् ।

भगवान उमास्वामी ने कहा है कि भरत और ऐरावत क्षेत्र में उत्सर्पिणी तथा अवसर्पिणी काल के द्वारा क्रमसे वृद्धि और हानि होती रहती है । जिस प्रकार शुक्ल पक्ष में चन्द्रमाकी कलाएं दिन प्रतिदिन बढ़ती जाती है । उसी प्रकार उत्सर्पिणी काल में लोगों की कला, विद्या, आयु आदि वस्तुएं बढ़ती जाती है । भरत और ऐरावत क्षेत्र में शुक्ल पक्ष और कृष्ण पक्ष की नाईं उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी काल का परिवर्तन होता रहाता है । उनके छह छह भेद हैं । १ अति दुःषमा २ दुःषमा ३ सुषमा दुःषमा ४ दुषमा ५ सुषमा ६ सुषमा सुषमा । यह क्रम उत्सर्पिणीका है । अवसर्पिणीका क्रम से इस उल्टा होता है । ये दोनों मिल कर कल्पकाल कहलाते- हैं जिसका प्रमाण बीस कोड़ा कोड़ी सागर है ।

अभी इस जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र में अवसर्पिणी काल का संसार हो रहा है । उस के सुषमा सुषमा नामक पहले भेद का समय चार कोड़ा कोड़ी सागर है । उस के प्रारम्भ में मनुष्य उत्तर कुरु के मनुष्यों के समान होते थे । वहां पर जीवों की आयु तीन पल्यकी होती है, शरीर की ऊंचाई छह हजार धनुष की होती है । वहाके लोंगों का रंग साने-सा चमकीला होता है । और वे तीन तीन दिन बाद थोड़ा सा आहार लेते हैं । फिर क्रम क्रमसे हानि होने पर दूसरा सुषमा काल आता है जिसका प्रमाण तीन कोड़ा कोड़ी सागर है । उसके प्रारम्भ में मनुष्य हरिवर्ष क्षेत्र के मनुष्यों की भांति होते हैं उनकी आयु दो पल्य की और शरीर की ऊंचाई चार हजार धनुष की होती है । वे दो दिन बाद थोड़ा-सा आहार लेते हैं उनका शरीर शंख के समान श्वेत वर्ण का होता है । फिर क्रमसे हानि होने पर तीसरा सुषमा दुषमा काल आता है जिसका प्रमाण दो कोड़ा कोड़ी सागर है । उसके प्रारम्भमें मनुष्य हैमवत क्षेत्रके मनुष्यों की भांति होते हैं वे एक पल्यतक जीवित रहते हैं । उनका शरीर दो हजार धनुष ऊंचा होता है । वे एक दिन बाद थोड़ा आहार लेते हे और उनके शरीरका रंग नील कमलके समान नील होता है । फिर क्रमसे हानि होनेपर चौथा दुःषमा सुषमा काल आता है जिसका प्रमाण व्यालीस हजार वर्ष न्यून एक कोड़ा कोड़ी सागर है । उसके प्रारम्भ कालमें मनुष्य विदेह क्षेत्रके मनुष्योंके सदृश्य होते हैं । उनके शरीर की ऊंचाई पांच सौ धनुष की और आयु एक करोड़ वर्ष की होती है । वे दिन में एक बार आहार करते हैं । फिर क्रम से हानि होनेपर पांचवां दुःषमा काल आता है जिसका प्रमाण इक्कीस हजार वर्ष का है । इस के प्रारम्भ में

मनुष्यो की ऊंचाई पहले से बहुत कम हो जाती है यहां तक कि साढ़े तीन हाथ ही रहा जाती है ; आयु भी बहुत कम हो जाती है । इस समय के लोग दिन में कई बार खाने लगते हैं । फिर क्रमसे परिवर्तन होने पर दुःषमा दुःषमा नाम का छठवां काल आता है जिस का प्रमाण इक्कीस हजार वर्ष का है । छठवें काल में लोगों की अहगाहना शरीर की ऊंचाई एक हाथ की रहा जाती है आयु बिलकुल थोड़ी रह जाती है और शरीर भी कुरूप होने लगते हैं । इसी तरह उत्सर्पिणी के- भी छह भेद होते हैं और उनका प्रमाण भी दश कोड़ा कोड़ी सागरका होता है परन्तु उनका क्रम अवसर्पिणी के क्रम से विपरीत होता है । जब यहां अवसर्पिणीका क्रम पूरा हो चुकेगा तब उत्सर्पिणी का संचार होगा ।

हमें जिस समयका वर्णन करना है उस समय यहां अवसर्पिणी का तीसरा सुषमा दुःषामा काल चल रहा था । तीसरे कालमें यहां जघन्य भोग भूमि जैसी रचना थी । कल्पवृक्षों के द्वारा ही मनुष्यों की आवश्यकताएं पूर्ण हुआ करती थी । स्त्री और पुरुष साथ में ही उत्पन्न होते थे और वे सात सप्ताह में पूर्ण जवान हो जाते थे । उस समय कोई किसी बात केलिये दुःखी नहीं था सभी मनुष्य एक समान वैभव वाले थे , कोई किसी के आश्रित नहीं था, सभी स्वतन्त्र थे । पर ज्यों ज्यों तीसरा काल बीतता गया त्यों त्यों ऊपर कही हुई बातों में न्यूनता होती गई । यहांतक कि तीसरे काल के अन्तिम पल्य में बहुत कुछ परिवर्तन हो चुके थे ।

स्त्री पुरुषों का एक साथ उत्पन्न होना बन्द हो गया । पहले बालक बालिकाओं के उत्पन्न होते ही उनके माता पिता की मृत्यु हो जाती थी पर जब वह प्रथा धीरे-धीरे बन्द होने लगी, कल्पवृक्षों की कांति फीकी पड़ गयी और फिर धीरे-धीरे वे नष्ट भी हो गये । बिना वपन किये हुए अनाज पैदा होने लगा , सिंह व्याघ्र आदि जानवर उपद्रव करने लगे । इन सब विचित्र परिवर्तनों से जब जनता घबराने लगी तब क्रमसे इस भारत वर्ष में प्रतिश्रुति १ सन्मति २ क्षेमंधर ४ सीमंकर ५ सीमंधर ६ विमल वाहन ७ चक्षुष्मान ८ यशस्वी ९ अभिचन्द्र १० चन्द्राभ ११ मरु देव १२ प्रसेन जित १३ और नाभिराज १४ ये चौदह महापुरुष हुए । इन महापुरुषों ने अपने बुद्धि बल से जनताका संरक्षण किया था इसलिये लोग इन्हें कुलकर कहते थे । यहांपर चौदहवें कुलकर नाभिराज का कुछ वर्णन करना अनावश्यक नहीं होगा क्योंकि कथानायक भगवान का इनके साथ विशेष सम्बन्ध रहा है ।

यहां जब भोगभूमि की रचना मिट चुकी थी और कर्मभूमि की रचना प्रारम्भ हो रही थी तब अयोध्या नगरी में अन्तिम कुलकर नाभिराज का जन्म हुआ था । ये स्वभाव से ही परोपकारी, मृदुभाषी और प्रतिभाशाली पुरुष थे । इनकी आयु एक करोड़ पूर्वकी थी और शरीर की ऊंचाई पांच सौ पच्चीस धनुष की थी । इनके मस्तकपर बन्धा हुआ सोने का मुकुट बड़ा ही भला मालूम होता था । इनके समय में उत्पन्न होते समय बालक की नाभि में नाल दिखाई देने लगी थी । महाराज नाभिराज ने उस नाल के काटने का उपाय बतलाया था इसलिये उनका नाभि सार्थक नाम प्रसिद्ध हुआ था । इन्हीं के समय में आकाश में श्यामल मेघ दिखने लगे थे और उनमें इन्द्रधनुष की विचित्र आभा छिटकने लगी थी । कभी



उन मेघों में मृदंग- केशब्द जैसा सुन्दर शब्द सुनाई पड़ता और कभी बिजली चमकती थी । वर्षा होने से पृथ्वी की अपूर्व शोभा हो गई थी । कहीं सुन्दर निर्झर कलरव करते हुए बहने लगे थे, कहीं पहाड़ों की गुफाओं से इठलाती हुई नदियां बहने लगी थीं , कहीं मेघों की गर्जना सुनकर बनों में मयूर नाचने लगे- थे , आकाश में सफेद बगुले उड़ने लगे थे और समस्त पृथ्वी तप हरी हरी घास उत्पन्न हो- गई थी जिससे ऐसा मालूम पड़ता था मानो पृथ्वी हरी साड़ी पहिनकर नवीन अभ्यागत पावस ऋतु का स्वागत करने के लिये ही उद्यत हुई हो । उस वर्षा से खेतों में अपने आप तरह तरह के धान्य के अंकुर उत्पन्न होकर योग्य फल देने वाले हो गये थे । इस तरह उस समय यद्यपि भोग उपभोग की समस्त सामग्री मौजूद थी परन्तु उस समय की प्रजा उसे काम में लाना नहीं जानती थी इसलिये वह उसे देख कर भ्रम में पड़ गई थी । अबतक भोगभूमि बिलकुल मिट चुकी थी, और कर्म युग का प्रारम्भ हो गया था परन्तु लोगकर्म करना जानते नहीं थे- इसलिये वे भूख प्याससे दुःखी होने लगे ।

एक दिन चिन्ता से आकुल हुए समस्त प्राणी महाराज नाभिराज के पास पहुँचे और उनसे दीनता पूर्वक प्रार्थना करने लगे । महाराज ! पाप के उदय से अब मनचाहे फल देनेवाले नष्ट हो गये हैं । इसलिये हम सब भूख प्याससे व्याकुल हो रहे हैं, कृपाकर जीवित रहनेका कुछ उपाय बतलाइये । नाथ ! देखिये कल्पवृक्ष नष्ट उपाय बतलाइये । नाथ ! देखिये कल्पवृक्षों के बदले ये अनेक तरहके वृक्ष उत्पन्न हुए हैं जो फल के भारसे नीचे झुक रहे हैं । इनके फल खानेसे हम लोग मर तो न जावेंगे और ये खेतोंमें कई तरह के छोटे छोटे पौधे लगे हुए हैं जो बालों के भार से झुकने के कारण ऐसे मालूम होते हैं मानो अपनी जननी महीदेवी को नमस्कार ही कर रहे हों । कहिए ये सब किसलिए पैदा हुए हैं ? महाराज ! आप हम सब के रक्षक हैं, बुद्धिमान हैं। इसलिये इस संकट के समय हमारी रक्षा कीजिये । प्रजा के ऐसे दीनता भरे वचन सुनकर नाभिराज ने-मधुर वचनों से सबको सन्तोष दिलाया और युग के परिवर्तन का हाल बताते हुए कही कि भाइयों ! कल्पवृक्षों के नष्ट हो जाने पर भी ये साधारण वृक्ष तुम्हारा वैसा ही उपकार करेंगे जैसा कि पहले कल्पवृक्ष करते थे । देखो, ये खेतों में अनेक तरह के अनाज पैदा हुए हैं इनके खाने-से आप लोगों की भूख शान्त हो जायेगी और इन सुन्दर कुएँ बावड़ी, निर्झर आदि का पानी पीनेसे तुम्हारी प्यास मिट जायेगी । इधर देखो, ये लम्बे गन्ने के पेड़ दिख रहे हैं जो बहुत ही मीठे हों । इन्हें दांतों अथवा यन्त्र से पेलकर इनका रस पीना चाहिये । और इस ओर देखो, इन गाय भैसों के स्तनों से सफेद सफेद मीठ दूध झर रहा है इसे पीने से शरीर पुष्ट होता है और भूख मिट जाता है । इस तरह दयालु महाराज नाभिराज ने उस दिन प्रजा को जीवित रहने के सब उपाय बतलाये तथा हाथी के गण्डस्थल पर थाली आदि कई तरह के मिट्टी के बर्तन बना कर दिये एवं आगे इसी तरह का बनाने का उपदेश दिया । नाभिराज के मुख से यह सब सुनकर प्रजाजन बहुत ही प्रसन्न हुए और उनका द्वारा बतलाये हुए उपायों को अमल में लाकर सुख से रहने लगे ।

पहले लोग बहुत ही भद्र परिणामी होते थे इसलिये उनसे किसी प्रकार का अपराध नहीं होते थे । पर ज्यों ज्यों समय बीतता गया त्यों लोगों के परिणाम कुटिल होते गये और वे- अपराध करने लगे इसलिये नाभिराज ने और पहले कुलकारों ने अपराधी मनुष्यों दण्ड देने- केलिये दण्ड-विधान भी चलाया था । सुनिये उनका दण्ड विधान ! प्रारम्भ के पांच कुलकारों ने अपराधी मनुष्यों को डहाड इस तरह शोक प्रकट करने रूप दण्ड देना शुरु किया था । उन केबाद पांच कुलकारों ने डहाड शोक प्रकट करने तथा डमोड अब ऐसा नहीं करना ये दो दण्ड चलाये थे और उनसे पीछे के कुलकारों ने डहाड डमोड डधिकड ये तीन प्रकार के दण्ड चलाये थे । नाभिराज की स्त्री का नाम मरु देवी था । मरुदेवी के उत्कर्ष के विषय में उस के नख-शिखका वर्णन न कर इतना ही कह देना पर्याप्त है कि उसके समान सुन्दरी और सदारचारिणी स्त्री पृथ्वीतल पर न हुई है , न है, न होगी । राजा नाभिराज की राजधानी अयोध्यापूरी थी । राजदम्पति अनेक तरह के सुख भोगते हुए बड़े आनन्द से वहां रहते थे और नये नये उपायोसे प्रजा का पालन करते - थे । अब यहां पर यह प्रकट कर देना अनुचित न होगा कि वज्रनाभि चक्रवर्ती जो कि सर्वार्थ सिद्धि में अहमिन्द्र हुए थे कुछ समय बाद वहा से चयकर इन्हीं राजदम्पतिके पुत्र होंगे और वृषभनाथ नाम से प्रसिद्ध होंगे । ये वृषभनाथ ही इस युग के प्रथम तीर्थकार कहलावेंगे ।

सर्वार्थ सिद्धि में ज्यों ज्यों वज्रनाभि अहमिन्द्र की आयु कम होती जाती थी त्यों त्यों तीनों लोको में आनन्द बढ़ता जाता था । यहां तक कि, वहां उनकी आयु सिर्फ छः माहकी बाकी रह गई तब इन्द्र की आज्ञा से धनपति कुबेर ने राजधानी अयोध्या के समीप ही एक दूसरी अयोध्या नगरी बनाई । वह नगरी बारह योजन लम्बी और नौ योजन चौड़ी थी । नगरी के बाहर चारों ओर अगाध जल से भरी हुई सुन्दर परिखा थी जिसमें कई रंगों के कमल फूले हुए थे ओर उन कमलों की पराग से उस परिखा का पानी पिघले हुए सुवर्ण की तरह जान पड़ता था । उसके बाद सुवर्णमय कोट बना हुआ था । उस कोट की शिखरें बहुत ऊंची थीं । कोट के चारों ओर चार गोपुर बने हुए थे । जिनकी गगनचुम्बी शिखरो पर मणिमय कलशों ऐसे मालूम होते- थे मानो उदयाचल की शिखरों पर सूर्य के बिम्ब ही विराजमान हों । उस नगरी में जगह जगह विशाल जिन मन्दिर बने हुए थें जिन में जिनेन्द्र देव की रत्नमयी प्रतिमाएं पधराई गई थी । कहीं स्वच्छ जल से भरे हुए तालाब दिखाई देते थे । उन तालाबों में कमल फूल रहे थे और उनपर मधु के पीने से मत्त हुए भौंरे मनोहर शब्द करते थे । कहीं अगाध जल से भरी हुई वापिकाएं- नजर आती थीं जिनके रत्न खचित किनारों पर हंस, सारस आदि पक्षी क्रीड़ा किया करते थे । कहीं आम, नींबू , अमरुद, अनार आदि के पेड़ों से विशोभित बड़े बड़े बगीचे - बनाये गये थे । जिनमें हीरा मोती पन्ना आदि माणियों के ढेर लगाये जाते थे । कहीं सेठ साहुकारों के बड़े बड़े महल बने हुए थे जिनकी शिखरों पर कई तरह रत्न जड़े हुए थे । किसी सुन्दर जगह में राजभवन बने हुये थे जिनकी ऊंची शिखरें आकाश के अन्तस्थल को भेदती हूँगी आगे चली गई थी । और कहीं निर्बाध स्थानों में विस्तृत विद्यालय बनाये गये थे । जिन की दीवारों पर कई प्रकार के शिक्षा प्रद चित्र टंग हुये थे ।

कविवर अर्हद्दास ने ठीक लिखा है कि जिसके बनाने में इन्द्र सूत्रधार हो और देव लोग स्वयं कार्य करने वाले हों उस अयोध्या नगरी की वर्णन कहां तक किया जा सकता है ? सचमुच उस नवनिर्मित अयोध्या के सामने इन्द्रकी अमरावती बहुत ही फीकी मालूम होती थी ।

किसी दिन शुभमुहूर्त में सौधर्म स्वर्ग के इन्द्रने सब देवों के साथ आकर उस नवीन नगरी में महाराज नाभिराज और मरु देवी का राज्याभिषेक कर उन्हें राजभवन में ठहराया । उसी दिन सब अयोध्या वासियों को भी नवीन अयोध्या में प्रवेश कराया जिससे उसकी शोभा बहुत ही विचित्र हो गयी थी । इसके बाद वे देव लोग कई तरह के कौतुक दिखलाकर अपने स्थानों पर चले गये ।

जबतक मनुष्य भोग लालसाओं में लीन रहते हैं तबतक उनके हृदय में धर्म की वासना दृढ़ नहीं होने पाती पर जैसे जैसे भोग लालसाएं घटती जाती हैं वैसे ही उनमें धर्म की वासना दृढ़ होती जाती है । इस भारत वसुन्धरा पर जबसे कर्मयुग का प्रारम्भ हुआ तब से लोगों के हृदय भोग लालसाओं से बहुत कुछ विरक्त हो चुके थे इसलिये वह समय उनके हृदयों में धर्म का बीज वपन करने के लिये सर्वथा योग्य था । उस समय संसार को ऐसे देवदूत की कर्तव्यका ज्ञान करावे और उनके सुकोमल हृदय क्षेत्रों में धर्म कल्पवृक्ष के बीज वपन करे । वह महान् कार्य कीसी साधारण मनुष्यसे नहीं हो सकता था, उसके लिये तो किसी ऐसे महात्माकी आवश्यकता थी जिसका व्यक्तित्व बहुत ही बढ़ा चढ़ा हो । जिसका हृदय अत्यन्त निर्मल और उदार हो । उस समय वज्रनाभि चक्रवर्ती का जीव जो कि सर्वार्थसिद्धिमें अहमिन्द्र पदपर आसीन था इस महान् कार्य के लिये उद्यत हुआ । देवताओं ने उसका सहर्ष अभिवादन किया । यद्यपि उसे अभी भारत-भूपर आने के लिये कुछ समय बाकी था तथापि उसके पुण्य परमाणु सब ओर फैल गये थे ।

सबसे पहले देवों ने उस महात्मा के स्वागत के लिये नव्य नगरीका निर्माण किया और फिर + ६६३ उसमें प्रति दिन दिनमें तीन तीन बार करोंडों रत्नोंकी वर्षा की थी । एक दिन महारानी मरुदेव गंगा जल के सामने स्वच्छ वस्त्र से शोभित शय्यापर शयन कर रही थी । उस समय सरयू नदी की तरल तरंगों के आलिंगन से शीतल हुई हवा धीरे धीरे बह रही थी , इसलिये वह सुखकी नींद सो रही थी । जब रात पूर्ण हुआ चाहती थी तब उसने आकाश में नीचे लिखे सोलह स्वप्न देखे । १ ऐरावत हाथी , २ सफेद बैल, ३ गरजता हुआ सिंह, ४ लक्ष्मी, ५ दो मालाएं, ६ चन्द्र मण्डल, ७ सूर्य बिम्ब, ८ सुर्वणके दो कलश, ९ तालाबमें खेलती हुई दो मछलियां , १० निर्मल जस से भरा हुआ सरोवर, ११ लहराता हुआ समुद्र, १२ रत्नोंसे जड़ा हुआ सिंहासन, १३ देवोंका विमान, १४ नागेन्द्र भवन, १५ रत्नराशि और १६ अग्नि । स्वप्न देखने के बाद उसने अपने मुंहमें प्रवेश करते हुए कुन्द पुष्प के समान श्वेत वर्णवाला एक बैल देखा । इतने में रात पूर्ण हो गई पूर्व दिशा में लाली छा गई और राज-मन्दिर में बाजों की मंगल ध्वनि होने लगी । बाजों की आवाज तथा बन्दीजनों के स्तुति भरे वचनों से उसकी ( मरुदेवी की ) नींद खुल गई । वह पंच परमेष्ठी का स्मरण करती हुई शय्यासे उठी तो . अनोखे स्वप्नों का ख्यालकर आश्चर्य सागर में

विमग्न हो गई । जब उसे बहुत कुछ सोच विचार करनेपर भी स्वप्नों के फल का पता न चला तब वह शीघ्र ही नहां धोकर तैयार हुई और बहुमूल्य वस्त्राभूषण पहिनकर सभा मण्डपकी ओर गई । महाराज नाभिराज ने हृदयवल्लभा मरुदेवी का यथोचित सत्कार कर उसे योग्य आसनपर बैठाया और मधुर बचनों से कुशल प्रश्न पूछ चुकने के बाद उसके राजसभा में आने का कारण पूछा । मरुदेवी ने विनयपूर्वक रात में देखे हुए स्वप्न राजासे- कहे और उनके फल जानने की इच्छा प्रकट की । नाभिराज को अवधिज्ञान था इसलिये वे सुनते- समय ही स्वप्नों का फल जान गये थे । जब मरुदेवी अपनी जिज्ञासा प्रकट कर चुप हो रही तब महाराज नाभिराज बोले । बोलते समय उनके दांतों की सफेद किरणे- मरुदेवीके वक्षस्थल पर पड़ रही थी जिनसे ऐसा मालूम होता था मानो महाराज अपनी प्रियतमाको मोतियों का हार ही पहिना रहे हों ।

देवि ! ऐरावत हाथी के देखने से तुम्हारे अत्यन्त उत्कृष्ट पुत्र होगा, बैलके देखने से वह पुत्र समस्त संसार का अधिपति होगा, सिंह के देखने से अत्यन्त पराक्रमी होगा, लक्ष्मी के देके से अत्यन्त विभवशाली होगा, दो मालाओं के देखने से धर्म तीर्थ का कर्ता होगा, पूर्ण चन्द्रमा के देखने से समस्त प्राणियों को आनन्द देने वाला होगा , सूर्य को देखने से तेजस्वी होगा , सोने के कलश देखने से निधियों का स्वामी होगा , मछलियों के देखने से अनन्त सुखी और सरोवर के देखने से उत्तम लक्षणों से भूषित होगा , समुद्र के देखने से सर्वदर्शी और सिंहासन के देखने से स्थिर साम्राज्यवान् होगा , देव विमान देखने से वह स्वर्ग से आवेगा, नागेंद्र का भवन देखने से अवधिज्ञानी , रत्नोंकी राशि देखने से गुणों की खानि और निर्धूम अग्नि के देखने- से वह कर्म रूपी ईधन को जलानेवाला होगा । तथा स्वप्न देखने के बाद जो तुमने मुह में प्रवेश करते हुए सफेद बैल को देखा है उससे मालूम होता है कि तुम्हारे गर्भ में किसी देवने-अवतार लिया है । छ

यहांपर राज नाभिराज मरु देवी के लिये स्वप्नों का फल बतला रहे थे वहां देवों के अचानक आसन कम्पायमान हुए जिससे उन्हें भगवान् वृषभनाथ के गर्भारोहण का निश्चय हो गया । इन्द्र की आज्ञानुसार दिक्कुमारियां तथा श्री, ऋषी, घृति, कीर्ति, बुद्धी, लक्ष्मी आदि देवियां जिनमाता महारानी मरुदेव की सेवा के लिये आ गई । इन्द्र आदि समस्त देवों ने आकर अयोध्यापुरी में खूब उत्सव किया और वस्त्र आभूषण आदि से राजा नाभिराज और मरुदेव का खूब सत्कार किया । जो रत्नों की धारा गर्भाधान में छह माह पहले से बरसती थी वह गर्भ के दिनों मे भी वैसी बरसती रही । इस तरह आषाढ शुक्ला द्वितीया के दिन उत्तराषाढ नक्षत्र में वज्रनाभि अहमिन्द्र ने सर्वार्थ सिध्दी से चयकर महादेवी के गर्भ मे स्थान पाया । जब भगवान् गर्भ में आये थे तब तीसरे सुषमा दुःषमा कालके चौरासी लाख पूर्व तथा चार वर्ष साढ़े पांच माह बाकी थे । मरुदेव की सेवा के लिये जो दिक्कुमारियां तथा श्री, ऋषी आदि देवियां आई थी उन्होंने सबसे पहले स्वर्ग लोक से आई हुई दिव्य औषधियों से उसका गर्भ शोधन किया और फिर निरन्तर गर्भ की रक्षा तथा उसके पोषण में दत्तचित्त रहने लगी । वे देवियां मरुदेवी की तरह तरह की सेवा करने लगी

कोई शरीर में तैल का मर्दन करती थी, कोई उबटन लगाती थी, कोई नहलाती थी, कोई चन्दन कपूर कस्तूरी आदि सुगन्धित द्रव्यों का लेप लगाती थी, कोई बालों का सम्भालकर उन्हें सुगन्धित फूलों से सजाती थी , कोई अमृत के समान अत्यन्त मधुर भोजन कराती थी, कोई शिरपर छत्र लगाती थी, कोई उत्तम ताम्बूल के बीड़े समर्पण करती थी कोई रत्नों के चर्ण से चौक पूरती थी, कोई तलवार लेकर पहरा देती थी , कोई आंगन बुहारती थी और कोई मनोहर कविताओं, कहानियों, पहेलियों और समस्याओं के द्वारा उनका चित्त अनुरंजित करती थी । इस तरह देवियों के साथ नृत्य गीत आदि विनोदों के द्वारा मरु देवी का समय सुख से बीतता था । उस समय विचित्र बात यह थी कि गर्भ के दिन बीत जाते थे पर उनके शरीर में गर्भ के कुछ भी चिन्ह प्रकट नहीं हुए थे । न पेट बढ़ा था, न मुख की कान्ति फीकी पड़ी थी, न आंखों स्तनों में भी कुछ परिवर्तन हुआ था ।

जब धीरे धीरे गर्भका समय पूरा हो गया तब चैत्र कृष्ण नवमी के दिन उत्तम लग्न में प्रातःकाल के समय मरुदेवी ने पुत्र-रत्न प्रसूत किया । उस समय वह पुत्र सूर्य के समान मालूम होता था, क्योंकि जिस प्रकार सूर्य उदयाचल के द्वारा प्राची दिशा में प्रकट होता है, उसी प्रकार वह भी महाराज नाभिराज के द्वारा महारानी मरुदेवी में प्रकट हुआ था । जिस तरह सूर्य किरणों से प्रकाशमान होता है तथा अन्धकार नष्ट करता है उसी तरह वह भी मति, श्रुति, अवधि ज्ञानरूपी-किरणों से चमक रहा था और अज्ञान-तिमर को नष्ट करता था । बालक रूपी बाल सूर्य को देखकर देवाङ्गनाओं के नयन-कमल विकसित हो गये थे और उनसे हर्षाश्रु रूपी मकरन्द झरने लगा था । बालक की अनुपम प्रभा से समस्त प्रसूति-गृह अन्धकार रहित हो गया था इसलिये देवियों ने जो दीपक जलाये थे वे सिर्फ मंगल के लिये ही थे । उस समय तीनों तलोकों में उल्लास मच गया था । क्षण एक के लिये नारकी भी सुखी हो गये थे । दिशाएं निर्मल हो गयी थी, आकाश निर्मेघ हो गया था । नदी तालाब आदिका पानी स्वच्छ हो गया था । सूर्यकी कान्ति फीकी पड गई थी । मन्द सुगन्धित पवन बह रहा था । बन में एक साथ छहों ऋतुओं की शोभा प्रकट हो गई थी । घर घर पर उत्सव मनाये जा रहे थे , जगह-जगह पर लय और तालके साथ सुन्दर संगीत हो रहे थे , मृदंग, वीणा आदि बाजों की रसीली आवाज सारे गगन में गूंज रही थी, मकानों की शिखरों पर कई रंगकी पताकाए फहराई गई थी, सड़कोंपर सुगन्धित जल सींचकर चन्दन छिड़का गया था और उत्तम फूल बिखेरे थे और आकाश से तरह तरहके रत्न तथा मन्दार, सुन्दर, नमेरु, परिजात, सन्तान आदि कल्पवृक्षों से फल बरस रहे थे । इन सबसे अयोध्यापुरी की शोभा बड़ी ही विचित्र मालूम होती थी । उस समयवहां ऐसा कोई भी मनुष्य नहीं था जिसका हृदय तीर्थकर बालक की उत्पत्ति सुनकर आनन्द से न उमड़ रहा हो । देव, दानव, मृग, मानव आदि सबी प्राणियों के हृदयों में आनन्द सागर लहरा रहा था ।

बालक के पुण्य प्रतापसे भवनवासी देवोंके भवानों में बिना बजाये ही शंख बजने लगे - थे । व्यन्तरों के भवनों में भेरी का शब्द होने लगा था । ज्योतिषियों के विमान सिंहनाद से प्रतिध्वनित हो उठे थे और कल्पवासी देवोंके विमानों मे घण्टाओंका सुन्दर शब्द होने लगा था । जगत्गुरु जिनेन्द्र देव के

सामने किसी दूसरे का राज्य सुदृढ़ सिंहासन नहीं रह सकता , मानो यह प्रकट करते हुए ही देवों के आसन हिल गये थे । जब इन्द्र हजार आंखों से भी आसन हिलने कारण न जान सका तब उसने अवधिज्ञान-रूपी लोचन खोला जिससे वह शीघ्र ही समझ गया कि अयोध्यापुरी मे श्री महाराज नाभिराज के घर प्रथम तीर्थकर का जन्म हुआ है । यह जानकर इन्द्रने शीघ्रता पूर्वक सिंहासन से उठ अयोध्यापुरी की ओर सात कदम जाकर तीर्थकर बालक को परोक्ष नमस्कार किया । फिर भगवान् के जन्माभिषेक महोत्सव में शामिल होने के लिये प्रस्थान भेरी बजवाई । भेरी का गम्भीर शब्द, चिरकाल से सोये हुए समीचीन धर्म को जगाते हुए के समान तीनों लोकों में फैल गया था, प्रस्थान भेरीका आवाज सुन समस्त देव सेनाएं अपने अपने आवासों से निकरलकर स्वर्ग के गोपुर द्वार पर इन्द्र की प्रतीक्षा करने लगी । सौधर्म स्वर्ग का इन्द्र भी इन्द्राणी के साथ ऐरावत हाथीपर बैठकर समस्त देव सेनाओं के साथ साथ अयोध्यापुरी की ओर चला । रास्तों में नेक सुर नर्तकियां अभिनय करती जाती थी । सरस्वती वीणा बजाती थी , गन्धर्व गाते थे और भरतचार्य नृत्य की व्यवस्था करते जाते थे । उस समय परस्पर के आघातसे टूट नीचे गिरते हुए माला के मणि ऐसे मालूम पड़ते थे मानो ऐरावत आदि हाथियों के पाद संचार से चूर्ण हुए नक्षत्रों के टुकड़े ही हों । धीरे धीरे- वह देव सेना आकाश में स्थित हो इन्द्र इन्द्राणी आदि कुछ प्रमुख जनम नाभिराज के भवनपर पहुंचे ओर दीन प्रदक्षिणाएं देकर उसके भीतर प्रिवष्ट हुए । वहां राजमन्दिर की अनूठी शोभा देखकर इन्द्र बहुत हर्षित हुआ । जिन बालक को लाने के लिए इन्द्रने इन्द्राणीको प्रसूति-गृह में भेजा और स्वयं अंगणमें खड़ा रहा । वहां जब उसकी दृष्टी माता के पास शयम करते हुए जिन बालकपर पड़ी तब उसका हृदय आनन्द से भर गया ।

इन्द्राणी ने उन्हें भक्तिपूर्वक नमस्कार किया और फिर वह मरुदेवी का महामाया नीद से अचेतकर उसके समीप में एक माया -निर्मित बालक सुलाकर जिन बालक को बाहर ले आई । उस समय उनके आगे दिक्कुमारी देवियां अष्ट मंगल लिये हुए चल रही थी, कोई जय जय शब्द कर रही थी ओर कोई मनोहर मंगल गीत गा रही थी । इन्द्राणी ने ले जाकर जिन-बालक न्द्रि केलिये सौंप दिया । कहते हैं कि इन्द्र दो आंखों से बालक का सौंदर्य बना ली थी । देखकर सन्तुष्ट नहीं हुआ था इस लिए उसने उसी समय विक्रिया से हजार आंखे बना ली थी । पर कौन कह सकता है कि वह हजार आंखों से भी उन्हें देखकर संतुष्ट हुआ होगा ? उस समय देव -सेना में जय जयकार शब्दके सिवाय और कोई शब्द सुनाई नहीं पड़ता था । सौधर्म इन्द्र ने उन्हें ऐरावत हाथीपर बैठाया और स्वयं अपने होथों वा गोद से साधे रहा । उस समय बालक वृषभानाथ के सिरपर ऐशान स्वर्ग का इन्द्र धवल छत्र लगाये हुए था । सनत्कुमार ओर महेन्द्र स्वर्ग के इन्द्र दोनों चमर ढोर रहे ते तथा अवशिष्ट इन्द्र और देव मेरुपर्वत की ओर चली और धीरे धीरे निन्यानवे हजार योजन ऊंचे जाकर मेरु पर्वत पर पहुंच गई । मेरु पर्वत की शिखर पर जो पाण्डुक बन है उस में देव सेना को ठहराकर देवराज इन्द्र उस बन के ईशान्य की ओर गया । वहां उसकी दृष्टी शिलापर पडी पाण्डुक -शिला स्फटिक मणियों से बनी हुई थी , देखने- अर्धचन्द्र-सी

मालूम होती थी ष पचास योजन चौड़ी सो योजन लम्बी और आठ योजन ऊंची थी । इस के बीच भाग में एक रत्न - खचित सोने का सिंहासन रक्खा खा और उस सिंहासन के दोनों ओर दो सिंहासन और रक्खे हुए थे । इन्द्रने वहां पर वस्त्रांग जाति के कल्पवृक्षो से प्राप्त हुए वस्त्रों से एक सुन्दर मण्डप तैयार करवा कर उसे अनेक तरह के रत्न और जित्रों से सजवाया ता । इसके अनन्तर इन्द्रने जिन बालक को ऐरावत हाथी के गण्डस्थल से उतारक बीच के सिंहासन पर विराजमान कर दिया तथा बगल में दोनों आसनों पर सौधर्म और ऐशान स्वर्ग के इन्द्र बैठे । इन दोनों इन्द्रों के समीप से लेकर क्षीर-समुद्र तक देवों की दो पंक्तियां बनी हुई थी जो वहाँ से भरे चलसे कलश हाथों हाथ इन्द्रों ने विक्रिया से हजार हजार हाथ बना लिये थे इसलिये उन्होंने एक साथ हजार कलशे लेकर बालक का अभिषेक किया । जिन बालक में जन्म से ही अतुल्य बल था इसलिये वे इस विशाल जलधार से रंचमात्र भी व्याकुल नहीं हुये थें ।

यदि वह धारा किसी वज्र पर्वत पर पड़ती तो- वह खण्ड हो जाता, पर वह प्रचण्ड जलधारा जिनेन्द्र बालक पर फुलों की कली से भी लघु मालूम पड़ती थी । जब अभिषेक का कार्य पूरा हो गया तब इन्द्राणी ने उत्तम वस्त्र से- शरीर पोंछकर उन्हें तरह तरह के आभूषण पहिनाये । देवराज वे मनोहर शब्द और अर्थसे भरे- हुए अनेक स्तोत्रों के द्वारा उनकी खूब स्तुति की ।

भक्तिसे भरी हुई देव नर्तकियों ने सुन्दरी अभिनय नृत्य किया और समस्त देवो ने उनका जन्म कल्याणक देखकर अपनी देव पर्याय का सफल समझा था । ये बालक वृष-धर्म से शोबायमान हे ऐसा सोचकर इन्द्रने उसका वृषभनाथ नाम रक्खा । इस तरह इन्द्र आदि देवमण्डल मेरु पर्वत पर अभिषेक महोत्सव समाप्त कर पुनः अयोध्या को वापिस आये ओर वहां उन्होंने जिन बालक को माता की गोद में देकर अभिषेक विधि के सब समाचर कह सुनाये । जिससे उनके माता पिता आदि परिवार के लोग बहुत ही प्रसन्न हुए । उसी समय इन्द्र ने आनन्दोद्यत नामका नाटक किया था जिस में उसने अपनी अनूठी नृत्य-कला के द्वारा समस्त दर्शकों के चित्त को मोहित कर लिया था । फिर विक्रिया से भगवान वृषभदेव के महाबल आदि दश पूर्वभवों का दृश्य परिचय कराया । महाराज नाभिराज ने भी दिल खोलकर पुत्रोत्पत्तिके उपलक्ष्य में अनेक उत्सव किये थे । उस समय अयोध्यापुरी की शोभा सजावट के सामने कुबेर की अलकापुरी और इन्द्र की अमरावती बहुत कुछ फीकी मानूम होती थी । जन्माभिषेक का महोत्सव पूरा कर देव और देवेन्द्र अपने अपने स्थानों पर चले गये । जाते समय इन्द्र भगवान के लालन - पालन में चतुर कुछ देवकमार और देव- कुमारियां को नाभिराज के भवन पर छोड़ गया था । वे देव - कुमार विक्रिया से अनेक रूप बनाकर भगवान का मनोरंजन करते थे ओर देव-कुमारियां तरह-तरह के उत्तम पदार्थों से उनका लालन पालन करती थीं । कहते हैं कि इन्द्रने भगवान के हाथ के अंगूठे में अमृत छोड़ दिया था जिसे चूस चूसकर वे बड़े हुए थे , उन्हें माता के दूध पीने की आवश्यकता नहीं हुई थी । बाल - भगवान् अपनी लीलाओं से सभी का मन हर्षित करते थे ऐसा कौन होगा उस समय जो बालक की मन्द मुसकान तोतली बोली और मनोहर चेष्टों से प्रमुदित हो जाता हो ? उन्हें जन्मसे ही मति श्रुति और

अवधि ज्ञान था । उनकी बुद्धि इतनी प्रखर थी कि उन्हें किसी गुरुसें विद्या सीखने- की आवश्यकता नहीं पड़ी । वे अपने आप ही समस्त विद्याओं और कलाओं में कुशल हो - गये थे । उनके अद्भूत पाण्डित्य के सामने अच्छे अच्छे विद्वानों का अभिमान छोड़ देना पड़ता था । वे कभी अलंकार शास्त्र की चर्चा करते थे , कभी तरह तरह की पहेलियां के द्वारा मन बहलाया करते थे, कभी न्याय शास्त्र की चर्चा से अभिमानी वादियों का मान दूर करते थे , कभी सुन्दर संगीत सुधाका पान करते थे , कभी मयूर, तोता , हंस, सारस आदि पक्षियों की मनाहेर चेष्टोंये देख देख कर प्रसन्न होते थे , कभी आए हुये प्रजाजन से मधुर वार्तालाप करते थे, कभी हाथीपर सवार होकर नदी, नद, तालाब , बगीच आदिकी सैर करते थे और कभी ऊंचे ऊंचे पहाड़ों की चोटियों पर चढ़कर प्रकृति की शोभा देखते थे । इस प्रकार राजकुमार वृषभनाथ ने सुखपूर्वक कुमार काल व्यतीत कर तरुण अवस्था में पदापर्ण किया । उस समय उनके शरीर की शोभा तपाये हुये काञ्चनकी तरह बहुत ही भली मालूम होती थी । उनका शरीर नन्द्यावर्त आदि एक सौ आठ लक्षण और मसूरिका आदि नौ सौ व्यञ्जनों से विभूषित था । उनका रुधिर दूधके समान सफेद था, शास्त्र, पाषण, धूप, सरदी वर्षा, विष अग्नि, कंटक आदि कोई भी वस्तुये उन्हें कष्ट नहीं पहुंचा सकती थी । उनके शरीर से फूले हुये कमल सी गन्ध निकलती थी । जवानी ने उनके अंग प्रत्यंग में अपूर्व शोभा ला दी थी । यदि आप कवियों की वाणी का गप्प न समझते हों तो मैं कहूंगा कि उस समय निशानायक चन्द्रमा अपने कलंक को दूर करने के लिये भगवान का मुख बन गया था और उसकी स्त्री निशा अपना दोष नाम हटाने के लिये उनके केश बन गई थी । यदि ऐसा न हुआ होता तो वहां उत्पल (नयन-कुमुद) और उत्तम श्री (अन्धकार की शोभा तथा उत्कृष्ट शोभा) कहां से आती ? क्योंकि उत्पलों की शोभा चन्द्रमा के रहते हुये और अन्धकारकी शोभा रात के रहते हुये ही होती है । उनके गले में तीनों रेखायें थीं जिन से मालूम होता था कि वह गला तीनों लोकों मे सबसे सुन्दर हैं । गले की सुन्दर आभा देखकर बेचारे शंख से न रहा गया और वह पराजित होकर समुद्र में डूब - मरा । कोई कहते हैं कि उनका वक्षःस्थल मोक्षस्थान था क्योंकि वहां पर शुद्ध दोष रहित मुक्ता-मोती तथा मुक्त जीव विद्यमान थे । और कोई कहते हैं उनका वक्षःस्थल हिमालय पर्वत था क्योंकि उसपर मुक्ता-हार-रू पी गंगा का प्रवाह पड़ रहा था । उनकी नाभि सरोवर के समान सुन्दर थी उसमें मिथ्यात्व रू पी घाम से संतप्त हुआ धर्म रू पी हस्ती डूबा हुआ था इसलिये उसके पास काली रोमराजि उस हस्ती की मदधारा सी मालूम-होती थी । उनके कन्धे बैल के ककुद के समान अत्यन्त स्थूल ते भुजाये घुटनों तक लम्बी । उरु त्रिभुवन रूप भवनके मजबूत खम्बों के समान जान पड़ती थी और चरण लाल कमलों की तरह मनोहर थे ।

यह आश्चर्य की बात कि जो जवानी प्रत्येक मानव हृदय विकार की छाप लगा देती है उसी जवानी में भी राजपुत्र वृषभनाथ के मनपर विकार के कोई चिन्ह प्रकट नहीं हुये थे । उनकी बालकों जैसी खुली हंसी ओर निर्विकार चेष्टायें उस समय भी ज्यों की त्यों विद्यमान थी ।



एक दिन महाराज नाभिराज ने वृषभनाथ के बढ़ते हुये यौवनको देखकर उनका विवाह करना चाहा पर ज्यों ही उनकी निर्विकार चेष्टाओं और उदासीनता पर महाराज की दृष्टी पड़ी त्यों ही कुछ हिचक गये । उन्होंने सोचा- कि इनका हृदय अभीसे निर्विकार है विकार शून्य है । जब ये बन्धन मुक्त हांथी की नाई हटसे तपकेलिये बन को चल जावेंग तब दूसरे की लड़ी का क्या होगा ? क्षण एक ऐसा विचार करने केबाद उनकेदिलमें आया कि संभव है विवाह कर देनेसे ये कुछ संसार से परिचित हा सकेंगे इसलिए सहसा वनको न भागेंगे और दूसरी बात यह भी है कि यह युगका प्रारम्भ है । इस समय के लोग बहुत भोले हैं, सृष्टी की व्यवस्था एक चाल से नहीं के बराबर है । लोग प्रायः एक दूसरे का अनुकरण करते हैं अतएव इस युगमें विवाह की रीति का प्रचलित करना तथा सृष्टि को व्यवस्थित बनाना अत्यन्त आवश्यक है । सम्भव है जब तक इनकी कालसन्धि ( तप करनेके योग्य समयकी प्राप्ति ) नहीं आई है तब तक ये विवाह सम्बन्ध स्वीकर कर भी लेंगे ऐसा सोचकर किसी समय पिता नाभिराज वृषभनाथ के पास गए वृषभनाथ ने पिता का उचित सत्कार किया । कुछ समय ठहरकर नाभिराज ने कहा हे त्रिभुवन पते ! यद्यपि मैं समझता हूं कि आप स्वयंभू हैं अपने आप ही उत्पन्न- हुए हैं, मैं आपकी उत्पत्ति में इस तरह केवल निमित्त मात्र हूं जिस तरह कि सूर्य की उत्पत्ति में उदयचाल होता है तथापि निमित्त मात्र की अपेक्षा मैं आपका पिता हूं इसलिए मेरी आज्ञा का पालन करना आपका कर्तव्य है । मुझे आशा है कि आप जैसे उत्तम पुत्र गुरुजनों की बातों का उल्लंघन नहीं करेंगे । मैं जों बात कहना चाहता हूं वह यह है कि इस समय आप लोक की सृष्टी की और दृष्टी दीजिए जिसमें आपको लोक की सृष्टी प्रवृत्त हुआ देखकर दूसरे लोग भी उसमें प्रवृत्त होवें । इस समय मानव समाज को सृष्टी का क्रम सिखलाने के लिए आप ही सर्वोत्तम है , आपका ही व्यक्तित्व सबसे ऊंचा है । इस के लिए आप किसी योग्य कन्या के साथ विवाह सम्बन्ध करने की अनुमती दीजियेगा । जब इतना कहकर नाभिराज चुप हो रहे तब भगवान् वृषभनाथ मन्द मुस्कान से पिता के वचनो का उत्तर दिया । महाराज नाभिराज पुत्र की अनुमति पाकर बहुत प्रसन्न हुए उन्होंने उसी समय इन्द्र की सहायता से तैयारीया करनी शुरु कर दि और किसी शुभमुहूर्त में राजा कच्छ और महाकच्छ की बहिनें यशस्वी थी तथा सुनन्दा के साथ विवाह कर दिया । यशस्वती और सुनन्दा के सौन्दर्य के विषय में न लिखकर इतना ही लिखना पर्याप्त होगा कि वे दोनों अनुपम सुन्दरी थीं उस समय उन जैसी सुन्दरी स्त्रियां दूसरे नहीं थी । भगवान के विवाहोत्सव में देव तथा देवराज सभी शामिल हुए थे पुत्र वधुओं को - दुखकर माता मरुदेवी का हृदय का फूला न समाता था । उन दिनों अयोध्या में कहीं तरह के उत्सव मनाये गये थे । यशस्वती और सुनन्दा ने अपने रूप - पाशसे वृषभनाथ के चंचल चित्त को अपने वश में कर लिया था । वे उन दोनों के साथ नाना तरहके की क्रीडएं करते हुए सुखसे समय बिताने लगे ।

किसी एक दिन रातके समय यशस्वती महादेवी अपने महल की छतपर पड़े हुए रत्नखचित पलंगपर सो रही थी । सोते समय उसने रात्रि के पिछले पहर में सुमेरु पर्वत सूर्य, चन्द्र, कमल,

महीग्रसन और समुद्र ये स्वप्न देखे । सवेरा होते ही माड.लिक बाजो तथा बन्दीजनों की स्तुतियों के मनोहर शब्दोंसे उसकी नीद खुल गई । जब वह सोकर उठी तब उसे बहुत आश्चर्य हुआ । उसने स्वप्नों का फल जाननेके लिये बहुत कुछ प्रयत्न किये पर जब सफलता न मिली तब नहा धोकर सुन्दर वस्त्राभूषण पहिनकर भगवान वृषभनाथ के पास गई । उन्होंने उसखा शूब सत्कार किया तथा अपने पासमें ही सुवर्णमय आसन पर बैठाया । कुछ समय बाद उनसे महादेवी ने रात में देखे हुए स्वप्न कहे और उनका फल जानने की इच्छा प्रकट की । हृदय वल्लभा के वचन सुनकर भगवान वृषभनाथ ने हंसते हुए कहा -की सुन्दरि ! तुम्हारे मेरु पर्वत के देखने से चक्रवर्ती, सूर्य के देखने से प्रतापी, चन्द्रमा के देखने से कान्तिमान् कमल के देखने से लक्ष्मीवान्, महीग्रसन के देखने से समस्त वसुधा का पालक और समुद्र के देखने से गम्भीर हृदय वाला चरम शरीरी पुत्र उत्पन्न होगा । वह पुत्र इस इक्ष्वाकु वंश की कीर्ती-कौमुदी को प्रसारित करेगा और अपने अतुल्य भुजबल से भरत क्षेत्र के छहों खण्डों का राज्य करेगा । पतिदेव के मुख से स्वप्नों का फल सुनकर यशस्वती महादेवी बहुत ही हर्षित हुई । इसके अनन्तर व्याघ्रका जीव सुवाहु, जो कि सर्वार्थ सिद्धि में अहमिन्द्रमे हुआ था , वहां से चयकर यशस्वती के गर्भ में आया । धीरे-धीरे महादेवी के शरीर में गर्भ के चिन्ह प्रकट हो गये , समस्त शरीर सफेद हो गया , स्तन-युगल स्थूल और कृष्ण वर्ण हो गये , मध्य भाग कृष हो गया और उदर वृद्धी को प्राप्त हो गया था । उस समय उसका मन शृंगार चेष्टाओं से हटकर वीर चेष्टाओं में रमता था । वह शाणपर घिसी हुई तलवार में मुंह देखती थी , योद्धाओं के वीरता भरे वचन सुनती थी. धनुष की टंकार सुनकर अत्यन्त हर्षित होती थी , पिंजडे में बन्दे किये हुए सिंहोके बच्चोंसे प्यार करती थी ओर शूर वीरोंकी युद्ध कला देखकर अत्यन्त प्रसन्न होती थी । महादेवी की उक्त चेष्टोंओंसे स्पष्ट मालूम होता था कि उसके गर्भमे किसी विषेश पराक्रमी पुरुषने अवतार लिया है ।

क्रम-क्रमसे जब नौ महीने बीत चुके तब किसी शुभ लग्नमें प्रातःकाल समय उसने- एक तेजस्वी बालक को प्रसूत किया । उस समय वह बालक प्रतापी सूर्य की नाई और यशस्वती देवी प्राची दिशाकि नाई मालूम होती थी । वह बालक अपनी भुजाओंसे जमीनको छूता हुआ उत्पन्न हुआ था , इसलिये निमित्त -शास्त्रके जानकारोंने कहा था हि यह पुत्र सार्वभौम समस्त पृथ्वीका अधिर्पात अर्थात् चक्रवर्ती होगा । पुत्र -रत्नकी उत्पत्तिसे जिनराज वृषभदेव बुहत ही प्रसन्न हुए थे । मरुदेवी और नाभिकराजा के हर्षका तो पार ही नहीं रहा था । उस समय अयोध्यामें ऐसा काई भी मानव नहीं था जिसे वृषभदेवके पुत्र की उत्पत्तिसे सुनकर हर्ष न हुआ हो । सम्पूर्ण नगरी तरह तरहकी पताकाओसे सजाई गई थी , राजमार्ग सुगंधित जल से सींचे गये थे और उनपर सुगंधित फूल बिखरे गये थे । प्रत्येक घर के आंगन मे रत्नचूर्ण से चौक पूरे गये थे और अट्टालिका में सारङ्गी, तबला आदि मनोहर बाजोंके साथ संगीत चतुर पुरुषों के श्रुति सुभग गान हुए थे । राजा नाभिराज ने जो दान दिया था उससे पराजित होकर कल्पवृक्ष कामधेनु ओर चिन्तामणि रत्न भी भूलोक छोड़ कहीं अन्यत्र जा छिपे थे । कच्छ, महाकच्छ आदि राजाओं ने

मिलकर पुत्र का जन्मोत्सव मनाया और उसका भरत नाम रखा । भरत अपनी बाल चेष्टाओं से माता पिताका मन हर्षित करता हुआ बढ़ने लगा ।

भगवान् वृषभनाथ के वज्रजंघ भव में जो आनन्द नामक पुरोहित था और क्रम-क्रमसे सर्वार्थ सिद्धि में अहमिन्द्र हुआ था वह कुछ समय बाद यशस्वी को वृषभसेन नामका पुत्र हुआ । फिर क्रम-क्रम से सेठ धनमित्र, शार्दूलार्य, वहाहार्य, वानरार्य और नकुलार्य के जीव सर्वार्थसिद्धिसे च्युत हाकर उसी यशस्वती के क्रम से अनन्तविजय, अनन्तवीर्य, अच्युत, वीर ओर वरवीर नाम के पुत्र हुए । इस तरह भरत के बाद महादेवी यशस्वतीके निन्यानवे पुत्र और ब्राह्मी नामक पुत्री उत्पन्न हुई । अब वृषभनाथ की दूसरी पत्नी सुनन्दाका हाल सुनिये ।

किसी दिन रात के समय सुनन्दाने भी उत्तम स्वप्न देखे जिस के फलस्वरुफ उसके गर्भ में वज्रजंघ भवका सेनापति जो क्रम क्रम से सर्वार्थसिद्धि में अहमिन्द्र हुआ था अवतीर्ण हुआ । नौ माह के बाद सुनन्दाने बाहुबली नामका पुत्र उत्पन्न किया । बाहुबलीका जैसा नाम था वैसे ही उसमें गूण थे । उसकी वीर चेष्टाओं के सामने यशस्वती के समस्त पुत्रों को मुंहकी खानी पड़ती थी वृषभेश्वर की , वज्रजंघ भव में जो अनुन्दरी नामकी बहिन थी वह कुछ समय बाद उसी सुनन्दाके सुन्दरी नामकी पुत्री हुई । इस प्रकार भगवान् वृषभनाथ का समय अनेक पुत्र पुत्रियों के साथ सुखसे व्यतीत होता था ।

एक दिन भगवान् वृषभेश्वर सभाभवन में स्वर्ण सिंहासन पर बैठे हुए थे, कुछ अमरकुमार चमर ढोल रहे थे । बन्दीगण, गर्भकल्याणक जन्मकल्याण आदिकी महिमा का बखान कर रहे थे पासमें ही देव, मनुष्य, विद्याधर वगैरह बैठे हुए थे । इतनेमें ब्राह्मी और सुन्दरी कन्यायें पास पहुंची । कन्याओंने पिता वृषभदेव को झुक कर प्रणाम किया । वृषभदेवने उन्हें उठा कर अपनी गोदमें बैठा लिया ओर प्रेमसे कुशल प्रश्न पूछा । पुत्रियों की विनयशीलता देखकर वे बहुत ही प्रसन्न हुए । उसी समय उन्होंने विद्याप्रदान के योग्य समझकर उन्हें विद्याप्रदान करने का निश्चय किया और निश्चयनुसार वर्णमाला सिखलाने के बाद उन्होंने ब्राह्मीका गणितशास्त्र और सुन्दरी का- व्याकरण, छन्द तथा अलंकार शास्त्र सिखलाये । ज्येष्ठ भरत के लिये- अर्थशास्त्र और नाट्यशास्त्र वृषभसेनके लिये संगीत- शास्त्र , अनन्त विजयके लिये चित्रकला और घर बनाने की विद्या, बाहुबली के लिये कामतन्त्र, सामुद्रिक शास्त्र. आयुर्वेद, धनुर्वेद , हस्तितन्त्र, अश्वतन्त्र तथा रत्नपरीक्षा आदि शास्त्र पढ़ाये . इसी तरह अन्य पुत्रोंके लिये भी लोकापकरी समस्त शास्त्रों पढ़ाये उस समय अनेक शास्त्रों के जानकार पुत्रोंसे आदि शास्त्र पढ़ाये । इसी अन्यत्र की तरह धिरे हुए भगवान् तेजस्वी किरणों से उपलक्षित सूर्य के समान मालूम होते थें । इस तरह महा पवित्र पुत्र एक और स्त्रियोंके- साथ विनोदमय जीवन बिताते हुए भगवान् वृषभनाथ का बहुत कुछ समय क्षण एक के समान बीत गया था ।

यह पहले लिख आये हैं कि वह समय अवसर्पिणी काल था इसलिये प्रत्येक विषय में हास ही हास होता जाता था । कुछ समय पहले कल्पवृक्षों के बाद बिना बोयी हुई धान्य पैदा होती थी पर अब वह

नष्ट हो गई, औषधि वगैरह की शक्तियां कम हो गई इसलिये मनुष्य खाने पीनेकेलिये दुखी होने लगे । सब ओर त्राहि त्राहिका आवाज सुनाई पड़ने लगी । जब लोगों को अपनी रक्षाका कोई भी उपाय नहीं सूझ पड़ा तब वे एकत्रित होकर महाराज नाभिराज की सलाहसे भगवान् वृषभनाथ के पास पहुंचे और दीनता भरे वचनों में प्रार्थना करने लगे ऐ त्रिभुवनपते ! हे दयानिधे ! मह लोगोंकेदुर्भाग्य से कल्पवृक्ष तो पहले ही नष्ट हो चुके थे पर अब धान्य वगैरह भी नष्ट हो गई है । इसलिए भूख प्यासकी बाधायें हम सबको अधिक कष्ट पहुंचा रही है । वर्षा, धूप और सर्दीसे बचनेके लिये हमारे पास कोई साधन नहीं हैं नाथ ! इस तरह हम लोग कब तक जीवित रहेंगे, आप हम सबकेउपकार के लिए ही पृथ्वीतल पर उत्पन्न हुए है । आप विज्ञ हैं , समर्थ हैं, दयालुता के समुद्र हैं इसलिये जीविका के कुछ उपाय बतलाकर हमारी रक्षा कीजिये , प्रसन्न होइये । इस तरह लोगोंकी आर्त वाणी सुनकर भगवान् वृषभदेव का हृदय दया से भर आया । उन्होंने निश्चय किया कि पूर्व पश्चिम विदेशों की तरह यहां पर भी ग्राम शहर आदिका विभाग कर असि.मषी, कृषी शिल्प वाणिज्य और विद्या इन छह कार्यों की प्रवृत्ती करनी चाहिए । ऐसा करने पर ही लोग सुख से आजीविका कर सकेंगें । ऐसा निश्चय कर उन्होंने लोगों को आश्वासन दिया और इच्छानुसार समस्त व्यवस्था करनेके लिये इन्द्रका स्मरण किया । उसी समय इन्द्र समस्त देवों के साथ अयोध्यापुरी आया और वृषभेश्वर केचरण कमलों में प्रणाम कर आज्ञा की प्रतीक्षा करने लगा था । भगवानने अपने समस्त झुका कर उनकेविचार इन्द्रके सामने प्रकट किये । इन्द्रने हर्षित हो मस्तक कर उनकेविचारों का समर्थन किया और स्वयं परिवार केसाथ सृष्टिकी रचना करने के लिये तत्पर हो गया ।

सबसे पहले उसने अयोध्यापुरी मे चारो दिशाओंमे बड़े-बड़े सुन्दर जिनमन्दिरोंकी रचना की फिर काशी-कौशल-कलिंग-करणाटक अंग-बंग-मगध-चौल-केरल-मालवा महाराष्ट्र सोरठ-आन्ध-तुरुष्क-कररसेन विदर्भ आदि देशोंका विभाग किया । उन देशोमें नदी- नहर-तालाब- वन-उपवन आदि लोकोपयोगी सामग्रीका निर्माण किया । फिर उन देशोंकेमध्यमें परिखा कोट बगीचा आदि से शोभायमान गांव पुर खेत कर्वट आदिकी रचना की । उसी समय पुर अर्थात् नगरो का विभाग करनेवाला इन्द्रका पुरन्दर नाम सार्थक हो गया था । वृषभेश्वर की आज्ञा पाकर देवन्द्र ने उन नगरों ठहराया । प्रजानन भी रहने के लिए ऊंचे-ऊंच मकान पर अत्यन्त प्रसन्न हुए । इंद्र अपना कर्तव्य पूरा कर समस्त देवों के साथ स्वर्गको चला गया । किसी दिन-मौका पाकर वृषभ देवने प्रजा के लोगों क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन तीन वर्णोंकी कल्पना कर उन्हें उनकेयोग्य आजीविकाकेउपाय बतलाये । उन्होंने क्षत्रियों के लिए धनुष-बाण तलवार आदि शस्त्रों का चलाना सिखलाकर दीन हीन जनों की रक्षा करने का कार्य सौंपा । वैश्यों के लिये- देश विदेशों में घुमकर तरह तरहकेव्यापार सिखलाए और शूद्रोंकेलिए दूसरो की सेवा शुश्रूषा का काम सौंपा था । उस समय भगवान् का आदेश लोगोंने मस्तक झुकाकर स्वीकार किया था जिससे. सब और सुख शान्ति नजर आने लगी थी ।

वृषभेश्वर ने सृष्टिकी सुव्यवस्था की थी इसलिएलोग उन्हें स्रष्टा-ब्रह्मना नाम से, और उस युगको कृतयुग नाम से पुकारने लगे थे । जब भगवान् आदिनाथ का प्रजा केऊपर पूर्ण व्यक्तितत्व प्रगट हो गया तब इंद्र ने समस्त देवों के साथ आकर महाराज नाभिराज की सम्मति पूर्वक उनका राज्याभिषेक किया । राज्याभिषेक के समय अयोध्यापुरी की खूब सजावट की गई थी, गगनचुम्बी मकानों पर कई रंगकी पताकाएं फहराई गई थीं, जगह जगह पर तोरणद्वार बनाकर उनमें मणिमयी बन्धन मालाएं बांधी गई थीं और सड़के सुगन्धित जलसे सींची जाकर उनपर हरी-हरी दूब बिछाई गई थी । जगद्गुरु आदिनाथ का राज्याभिषेक था और देव देवेन्द्र उसके प्रवर्तक थे तब किसकी कलम में ताकत है जो उस समयकी समग्र शोभाका वर्णन कर सके ।

मणिखचित सुवर्ण सिंहासन पर बैठे हुए भगवान् आदिनाथ को तेजोमय मुख ठीक सुर्य के समान चमकता था । पासमें खड़े हुए बन्दीगण मनोहर शब्दोंमें उनकी कीर्ति गा रहे थे । महाराज नाभिराजने अपने हाथ से उनके मस्तकपर राज्यपट्ट बांधा था । उस समय सनत्कुमार और महेन्द्र स्वर्ग के इन्द्र चमर ढोल रहे थे और ईशान स्वर्ग का इन्द्र शिरपर छत्र लगाए हुए था । सौधर्मेन्द्र ने सभास्थल में आनन्द नामका नाटक किया था जिससे समस्त देव, दानव नर, विद्याधर वगैरह अत्यन्त हर्षित हुए थे । भगवान् आदिनाथ ने पहले प्रभावक शब्दों में सुन्दर भाषण दिया जिस में धर्म, अर्थ आदि पुरु षार्थों का स्पष्ट विवेचन किया गया था । फिर लघुता प्रगट करते हुए सृष्टीके भार अपने कन्धोंपर लिया था -राज्य करना स्वीकार किया था । भगवान् का राज्याभिषेकसमाप्त कर देव, देवेन्द्र वगैरह अपने स्थानों पर चले गये ।

यह हम पहले लिख आए हैं कि वृषभदेव ने प्रजाको सुव्यवस्थित बनाने के लिए उसमें क्षत्रिय वैश्य और शूद्र वर्णका विभाग कर दिया था । तथा उन्हें उनके योग्य कार्य भार सौंप दिया था । लोग उक्त व्यवस्थासे सुखमय जीवन बिताने लगे थे । पर कालके प्रभावसे लोगों के हृदय उत्तरोत्तर कुटिल होते जाते थे इसलिए कोई कभी वर्ण - व्यवस्था के क्रमका उल्लंघन भी कर बैठते थे । वह क्रमोल्लंघन आदिनाथको सह्य नहीं हुआ इसलिए उन्होंने द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावका ख्याल रखते हुये अनेक तरहके दण्ड-विधान नियुक्त किये थे ।

उन्होंने अपने सिवाय सोमप्रभ, हरि, अकम्पन और काश्यप नाम के चार महा माण्डलिक राजाओं का भी राज्याभिषेक कराया था । उन चारों माण्डलिक राजाओं में प्रत्येक के चार चार हजार मुकुटबद्ध राजा आधीन थे । आदिनाथ ने इन राजाओंको अनेक प्रकारके दण्ड-विधान सिखलाकर राज्य का भार सौंप सोमप्रभ को कुरु राज नाम से पुकारा था और उनके वंशका नाम कपरु वंश रक्खा था । अकम्पन को श्रीधर नाम से प्रख्यात किया था और उनके वंशका नाम नाथवंश रक्खा था, एवं काश्यप को मघवा नामसे पुकारा था और उनके वंश का नाम उग्रवंश रक्खा था । इसके सिवाय कच्छ, महाकच्छ आदि राजाओंको भी वृषभेश्वर ने अच्छे अच्छे देशो का राजा बना दिया था । अपने पुत्रों में ज्येष्ठ पुत्र भरत को युवराज बनाया तथा शेष पुत्रो को भी योग्य पदोंपर नियुक्त किया था ।

भगवान् वृषभनाथ ने समस्त मनुष्यों को इक्षु (ईख)के रसका संग्रह करने का उपदेश दिया था इसलिये लोग उन्हें इक्ष्वाकु कहने लगे थे । उन्होंने प्रजा पालन के उपाय प्रचलित किये थे, इसलिये उन्हें लोग प्रजापिता कहते लगे थे । उन्होंने अपने वंशकुल का उध्दार किया था इसलिये -लोग उन्हें कुलधर कहते थे । वे काश्य अर्थात् तेज के अधिपति थे इसलिये लोग उन्हें काश्यप कहते थे । वे कृतयुग के प्रारम्भ में सबसे पहले हुए थे इसलिये लोग उन्हें आदि ब्रह्मा नामसे-पुकारते थे । अधिक कहा तक कहें, उस समय की प्रजा ने उनके गुणों से विमुग्ध होकर कई तरह के सुन्दर सुन्दर नाम रख लिये थे ।

उनके राज्य काल में कभी किसी जगह राजाओं में परस्पर कलह नहीं हुई । सब देश खूब सपन्न थे कहीं भी ईति भीतिका डर नहीं था, सभी लोग सुखी थे । वहांका प्रत्येक प्राणी राज राजेश्वर भगवान् वृषभदेव के राज्यकी प्रशंसा किया करता था । इस तरह उन्होंने-तिरेसठ लाख पूर्व वर्षतक राज्य किया । सो उनका वह विशाल समय पुत्र पौत्र आदिका सुख भोगते सहज ही में व्यतीत हो गया था ।

एक दिन भगवान् वृषभदेव राजसभामें सुवर्ण सिंहासन पर बैठे हुए थे । उनके आसपास में और भी अनेक राजा, सामन्त, पुरोहित मन्त्री आदि बैठे हुए थे । इतनेमें उपासना करने के लिये अनेक देव देवियों के साथ सौधर्म स्वर्गका इन्द्र आया । आते समय इन्द्र, सोचता आता था कि भगवान् वृषभदेव अबतक सामान्य मनुष्योंकी भांति विषय-वासनामें फंसे हुए हैं । जबतक वे विषय-वासना से, हटकर मुनिमार्ग में पदार्पण नहीं करेगे तब तक संसार का कल्याण होना मुश्किल है । इसलिये किसी छलसे आज इन्हें विषय-भोगोंसे विरक्त बना देने का उद्योग करना चाहिये । यह सोचकर उसने, राजसभा में एक नीलाञ्जना नामक अप्सरा को जिसकी आयु अत्यन्त अल्प रह गई थी नृत्य करने के लिये खड़ा किया । तब नीलाञ्जना नृत्य करते-करते क्षण एक में बिजली की भांति विलीन हो गई तब इन्द्रने रसमें भंग न हो इसलिये उसीके समान रूप और वेष-भूषावाली दूसरी अप्सरा नृत्य-स्थल में खड़ी कर दी । वह भी नीलाञ्जना की तरह हाव-भावपूर्वक मनोहर अभिनय दिखाने, लगी । सामान्य जनता को इस सब परिवर्तन का कुछ भी पता नहीं लगा पर भगवान् की दिव्य दृष्टिसे यह समाचार छिपा न रहा ।

वे नीलाञ्जना के अदृश्य होते ही संसार से एकदम उदास हो गये । इन्द्रने अपनी चतुराई से जो दूसरी अप्सरा खड़ी की थी उसका उनपर कुछ भी असर नहीं हुआ । वे सोचने लगे कियह शरीर हवा के वेग से कम्पित दीप-शिकार की नाईं नश्वर है, यह लक्ष्मी बिजली की चमक की तरह क्षणभंगुर है, यौवन संध्या की लाली के समान देखते देखते नष्ट हो जाता है और यह विषय-सुख समुद्र की लहरोंके सामन चंचल है । इन्द्र की आज्ञा से नृत्य करती हुई यह कमलनयनी देवी भी जब आयु क्षीण हो जानेपर इस अवस्था मृत्यु को प्राप्त हुई है तब कौन दूसरा संसार में अमर होगा ? देवों के सामने मनुष्यों की आयु ही कितनी है ? यह लक्ष्मी विषराशि-समुद्र से उत्पन्न हुई है तब भी लोग इसे अमृत सागर से उत्पन्न हुई बतलाते - हैं । जो शरीर इस आत्मा के साथ दूध और पानी की तरह मिला हुआ है-सुख दुःख में साथ देता है वह भी जब समय पाकर आत्मा से न्यारा हो जाता है जब बिलकुल न्यारे रहनेवाले स्त्री, पुत्री, पुत्र

धन सम्पत्ति वगैरह में कैसे स्थिर बुद्धि की जा सकती है ? यह प्राणी पाप के वश नरकगति में जाता है, वहां सागरों वर्ष पर्यन्त अनेक तरह के दुख भोगता है वहांसे, निकल तिर्यचगति मेशीत-उष्ण भूख-प्यास आदि के विविध दुःख उठाता है । कदाचित् सौभाग्य से, मनुष्य भी हुआ तो दरिद्रता रोग आदिसे दुःखी होकर हमेशा संक्लेश का अनुभव करता है और कभी कुछ पुण्योदय से देव भी हुआ तो वहां भी अनेक मानसिक दुःखोंसे दुःखी होता रहता है । इस तरह चारो गतियों में कहां भी सुखका ठिकाना नहीं है । इस मनुष्य पर्याय को पाकर मदि मैंने आत्म-कल्याण के लिये प्रयत्न नहीं किया तब मुझ से मूर्ख और कोन होगा ? इधर भगवान अपने हृदय में ऐसा विचार कर रहे थे उधर ब्रह्मलोक पांचवें स्वर्ग में रहनेवाले -लौकान्तिक देवों के आसन कम्पायमान हुए जिससे वे भगवान आदिनाथ का हृदय विषयों से विरक्त समझ शीघ्र ही उनके पास आये और तरह तरह के वचनो से स्तुति कर उनके विचारो का समर्थन करने लगे । देवों के वचन सुनकर उनकी वैराग्य-धारा अत्यन्त वेगवती हो गई । अब उन्हें राज्य सभा में, गगन-चुम्बी महलों में, स्वर्गपुरी को जीतनेवाली अयोध्यापुरी में और स्त्री, पुत्र, धन धान्य आदि में थोडा भी आनन्द नहीं आता था । जब लौकान्तिक देव अपना कार्य समाप्त कर हंसों की नाई आकाश में उड़ गये तब इन्द्र प्रतीन्द्र आदि चारों निकाय के देवोंने अयोध्यापुरी आकर जय जय घोषणा के साथ भगवान् का क्षीरसागर के जलसे अभिषेक किया । अभिषेक के बाद में तप कल्याण की विधि प्रारम्भ की । इसी बीचमें भगवान् वृषभदेव ने ज्येष्ठ पुत्र भरतके लिये राज्यगद्दी देकर बाहुबली को युवराज बना दिया था जिससे वे राज्य कार्य की ओरसे बिलकुल निराकुल होगये थे । उस समय तप कल्याणक और राज्यभिषेक इन दो महान् उत्सवोंसे नर-नारियों और देव-देवियों के ही क्या प्राणी मात्रके हृदयों में आनन्द सागर लहरा रहा था । त्रिभुवनपति भगवान् वृषभनाथ, महाराज नाभिराज और महारानी मरु देवी आदि से आज्ञा लेकर बन में जाने के लिये देव-निर्मित पालकीपर सवार हुए । वह पालकी खूब सजाई गई थी उसके ऊपर कई रंगोंकी पताकाएं लगी हुई मणियों की छोटी छोटी घंटियां रू ण-ञ्जुण शब्द करती थीं । सबसे पहले बड़ें-बड़ें भूमिगोचरी राजा पालकी को - अपने कंधोंपर रखकर जमीन में सात कदम चले फिर विद्याधर राजा कन्धोंपर रखकर सात कदम- आकाश में चले इसके अनन्तर प्रेमसे भरे हुए सुर असुर उस पालकी को अपने कन्धोंपर रखकर आकाश मार्गसे चले ।

उस समय देव-देवेन्द्र जय जय शब्द बोलते और कल्पवृक्षके सुगन्धित फूलों की वर्षा करते जाते थे । असंख्य देव-देवियां और नर-नारीका समूह भगवान के पीछे जा रहा था । शोकसे विह्वल माता मरु देवी, महादेवी, यशस्वती और सुनन्दा आदि अंतःपुरकी नारियां तथा महाराज नाभिराज, भरतेश्वर, बाहुबली, कच्छ, महाकच्छ, आदि प्रधान प्रधान राजा अत्यन्त उत्कण्ठित भाव से भगवान के तप कल्याणक की महिमा देख रहे थे । देव लोग भगवान् की पालकी अयोध्यापुरी के समीपवर्ती सिध्दार्थ नामक बन में ले गये । वह बन चारो ओरसे सुगन्धित फूलों की सुवासने सुगन्धित हो रहा । वहां चतुर देवांगनाओंने कई तरह के चौक पूर रक्खे थे । देवों ने एक सुन्दर पटमण्डप बनवाया था जिसमें

देवांगनाओं का मनोहर अभिनय-नृत्य हो रहा था । वह बन गन्धर्व किन्नरों के सुरीले संगीत से गूँज रहा था । बन के मध्य भाग में एक चन्द्रकान्त मणिकी शिला पड़ी थी । पालकी से उतर कर भगवान् उसी शिलापर बैठ गये । वहां उन्होंने, क्षण भर ठहर कर सबकी ओर मधुर दृष्टि से देखा और फिर देव, देवेन्द्र तथा कुटुम्बी -जनों से, पूछकर समस्त वस्त्राभूषण उतारकर फेंक दिये । पंच-मुष्टियों से केश उखाड़ डाले तथा पूर्व दिशाकी ओर मुंहकर खड़े हो सिद्ध परमेष्ठि को नमस्कार करते हुए इन्द्र, सिद्ध, और आत्मा की साक्षी पूर्वक समस्त परिग्रहों का त्याग करदिया था । इस तरह भगवान् आदिनाथ ने चैत्रबदी नवमी के दिन सायंकाल से समय उत्तराषाढ नक्षत्र में जिन-दीक्षा ग्रहण की थी । इन्हें दीक्षा लेते समय ही मनःपर्यय ज्ञान और अनेक ऋद्धियां प्राप्त हो गई थीं । इनके साथ में कच्छ महाकच्छ आदि चार हजार राजाओं ने भी जिनदीक्षा ग्रहण की थी । चार हजार मुनियों से घिरे हुए आदीश्वर महाराज, तारा परिवृत्त चन्द्रमा की तरह शोभायमान होते थे । दीक्षा लेते समय वृषभदेव ने जो केश उखांड कर फेंक दिये थे इन्द्र इन्हें रत्नमयी पिटारी में रखकर क्षीरसागर ले गया ओर उसकी तरल तरंगों में, विनय-पूर्वक छोंड़ आया था । जिनेन्द्र के नया कल्याणक का उत्सव पूराकर समस्त देव देवेन्द्र अपने, स्थान पर चले गये । बाहुबली आदि राजपुत्र भी पितृ वियोग से कुछ खिन्न होते हुए अयोध्यापुरी को लौट आये ।

बन में भगवान् आदिनाथ छह महीनो का अनशन धारण कर एक आसन पें बैठे, हुए थे । धूप, वर्षा, शीत आदिकी बाधएं उन्हें रंग-मात्र भी विचलित नहीं कर सकी थीं । वे मेरू के सामन अचल थे बालक के समान निर्विकार थे, निर्मेघ आकाश की तरह शुद्ध थे, साक्षात् शरीरधारी शामा के समान मालूम होते थे । उनकी दृष्टि नासा के अग्र भाग पर लगी हुई, हाथ नीचे को लटक रहे थे, और मुह के भीतर अन्यत्र रू पसे कुछ मन्त्राक्षरों का उच्चारण हो रहा था । कहने का मतलब यह है कि वे समस्त इंद्रियों को बाह्य व्यापार से हटाकर अध्यात्म की ओर लगा चुके थे । अपने आप उत्पन्न हुए अलौकिक आत्मानन्द का अनुभव कर रहे थे । न उन्हें भूखका दुःख था, न प्यास का कष्ट था, और न राज्य की ही कुछ चिन्ता थी ।

उधर मुनिराज वृषभदेव आत्मध्यान में लीन हो रहे थे और इधर कच्छ महाकच्छ आदि चार हजार राजा जो कि देखोदेखी ही मुनि बन बैठे थे - मुनि मार्ग का कुछ रहस्य मही समझ सके कुछ दिनों में ही भूख प्यास की बाधाओं से तिलमिला उठे । वे सब आपस में सलाह करने-लगे कि भगवान् वृषभदेव ने जाने किस लिये नग्न दिगम्बर हो बैठे हैं । ये हम लोगों से कुछ-कहते ही नहीं हैं । न उन्हें भूख प्यास की बाधा सताती है, न धूप, वर्षा सर्दीसे ही दुःखी होते-हैं । पर हम लोगों का हाल तो इनसे बिल्कुल उल्टा हो रहा है । अब हम से भूख प्यास की बाधा नहीं सही जाती । हमने सोचा था कि इन्होंने कुछ दिनोंकेलिये ही यह वेष रचा है, पर अब तो दो माह हो गये फिर भी इनके रहस्य का पता नहीं चलता जो भी हो, शरीर की रक्षा तो हम लोगों को अवश्य करनी चाहिये और अब इसका उपाय क्या हैं ? चलकर उन्हीसे पूछना चाहिये, ऐसी सलाह कर सब राजमुनि, मुनिनाथ भगवान् वृषभदेव के पास जाकर तरह



तरहके शब्दोंमे, उनकी स्तुति करने लगे-उनकी धीरता की प्रशंसा करने लगे । स्तुति कर चुकने केबाद उन्होंने,मुनिवेष धारण करने का कारण पूछा, उसकी अवधि पूछी और हम भूख प्यास का दुःख नहीं सह सकते, यह प्रकट कर उस केदूर करने का उपाय पूछा । पर वे तो मौन व्रत केलिये हुए थे आत्मध्यान में मस्त थे, उनकी दृष्टि बाह्य पदार्थोंसे सर्वथा हट गई थी-वे कुछ न बोले जब उन्हें वृषभदेव की ओरसे कुछ भी उत्तर नहीं मिला उन्होने-आंख उठाकर भी उन लोगोंकी ओर नहीं देखा तब वे बहुत घबड़ाये और मुनि मार्ग से भ्रष्ट होकर जंगलों में चले गये उन्होंने, सोचा था कि यदि हम अपने अपने घर वापिस जाते हैं तो- राजा डरत हमको दण्डित करेगा इसलिये इन्हीं सघन बनों में रहना अच्छा है । यहां वृक्षों के कन्द, मूल फल खाकर नदी तालाब, आदिका मीठा पानी पीवेंगे और पर्वतों की गुफाओंमें-रहेंगे । अब ये शेर, चीते वगरह ही हम, लोगों के परिवार होंगे, इस तरह भ्रष्ट होकर वे चार हजार द्रव्यलिंगी मुनि ज्योंही तालाब में पानी पीनेके लिये घुसे त्योही उन देवताओंने प्रकट होकर कहा कि यदि तुम दिगम्बर मुद्रा धारण कर ऐसा अन्याय करोगे तो हम तुम्हें दण्डित करेंगे । यह सुनकर किन्हीने वृक्षों के पत्ते व बक्कल पहिनकर हाथमें पलाश वृक्ष के दण्ड के लिये । किन्हीने शरीर में भस्म रमाली और किन्हीने जटायें बढ़ाली । कहने का मतलब यह है कि उन्हें जिसमें सुविधा दिखी वही वेष उन्होंने धारण कर लिया । इतना होने पर भी वे सब लोग भगवान् आदिनाथ के लिये ही अपना इष्ट देव समझते, थे, उन्हें सिंह अपनेको सियार समझते- थे वे लोग प्रतिदिन तालाबोमे से कमल के फूल तोड़कर लाते , थे और उनसे भगवान् की पूजा किया करते थे ।

वृषभदेव को बाह्य जगत को कुछ ध्यान नहीं था । वे समताभावों से क्षुधा तृषा की बाधा सहते हुए आत्मध्यान में लीन रहते थे । जिस बनमें महामुनि वृषभेश्वर ध्यान कर रहे थे उस बन में, जन्मविरोधी जीवों ने भी परस्पर का विरोध छोड़ दिया था-सिंहनी गायकेबच्चे को प्यारसे-दूध पिलाती थी और गाय सिंहनी केबच्चे को प्रेम से पुचकारती थी, मृग और सिंह परस्पर में खेला करते थे, सर्प, नेवला, मोर आदि विरोधी जीव एक दूसरे के साथ क्रीड़ा किया करते- थे, हाथियों केबच्चे लड़े मृगराजों की अयालों गर्दन केबालों को नोचते थे । सच हे-विशुद्ध आत्मा का असर प्राणियों, पर ही क्या अचेतन वस्तुओं पर भी पड़ सकता है ।

एक दिन कच्छ और महाकच्छ राजाओं के लड़के नमि और विनमि भगवान् के चरण कमलो के पास आकर उनसे प्रार्थना करने लगे की हे त्रिभुवन नायक ! आप अपने समस्त पुत्रों तथा इतर राज कुमारों को को राज्य देकर सुखी कर आये पर हम दोनोंको आपने कुछ भी नहीं दिया । भगवन् ! आप तीनों लोकों के अधीश्वर हैं समर्थ है, दयालु है, इसलिये राज्य देकर हमको सुखी कीजिएगाड । भगवान आत्मध्यान में लीन हो रहे थे इसलिये यद्यपि नमि विनमिको उनकी ओरसे कुछ भी उत्तर नहीं मिला तथापि वे अपनी प्रार्थना जारी ही किये गये । इस घटना से एक धरणेन्द्र का आसन कंमा जिससे वह भगवान के ध्यान में कुछ बाधा समझकर शीघ्र ही उनके पास आया । आकर जब वह देखता है, कि हुए

दोनों ओर खड़े हुये नमि विनमि भगवान से राज्य की याचना कर रहे हैं, तब धरणेन्द्रने अपना वेष बदलकर दोनो राजकुमारों से कहा कि आप लोग राजा भरत से राज्य की याचना कीजियेगा जो आपकी अभिलाषाओं को पूर्ण करने- में समर्थ है । इनके पास क्या रक्खा है जिसे, देकर ये आपकी राज्य लिप्सा को पूर्ण करें ! आप लोग राजकुमार इतना भी नहीं समझ सके कि जिसके पास होता है वही किसीको कुछ दे सकता है । धरणेन्द्र की बातें सुनकर उन दोनोंने कहा कि महाशय ! आप बड़े बुद्धिमान मालूम होते हैं बोलने आप बहुत ही चतुर होते हैं आपका वेष भी विश्वसनीय हैं पर मेरी समझ में नहीं आता कि आप बिना पूछे ही हम लोगों के बीचमें क्यों बोलने लगे ? तीनों लोकों के एक मात्र आधीश्वर वृषभदेव की चरणछाया को छाड़कर भरत से राज्यकी याचना करूं ? जो बेचारा खुद जरा सी जमीन रा राजा है । कहिये महाशय जो कमण्डलु महासागर के जलसे नहीं भरा क्या गोष्पद के जल से भरा जावेगा ? क्या अनोखा उपदेश है आप का ? राजकुमारों की उक्ति प्रत्युक्ति से प्रसन्न होकर धरणेन्द्रने अपना कृत्रिम वेष छोड़ दिया और प्रकृति वेष में प्रकट होकर उसने नमि विनमिसे कहा-राजपुत्रो ! राज्य का विभाग करते समय भगवान ! वृषभेश्वर आप लोगोंका राज्य मुझे बतला गये हैं सो चलिये मैं चलकर आपका राज्य आपको दे दूं इस समय वे ध्यान में लीन है इनकेमुख से आपको कुछ भी उत्तर नहीं मिलेगा इत्यादि प्रकार से समझाकर वह धरणेन्द्र उन्हें विमानपर बैठाकर विजयार्ध पर्वत पर ले गया । पर्वत की अलौकिक शौभा देखकर दोनों राजपुत्र बहुत ही प्रसन्न हुये । उस पर्वत की दो श्रेणियां है एक दक्षिण श्रेणी और दूसरी उत्तर श्रेणि । इन दोनों श्रेणियोंपर सुन्दर सुन्दर नगरों की रचना है जिस में विद्याधर लोग रहा करते हैं । वहां पहुंचकर धरणेन्द्र कहा कि भगवान् आप लोगों को यही राज्य देना स्वीकार कर चुके हैं सो आप यहां का राज्य प्राप्त कर देवराज की तरह अनेक भोगों को भोगो और इन विद्याधरों का पालन करो । ऐसा कहकर उसने दक्षिण श्रेणि के साम्राज्य में नमिका और उत्तर श्रेणि के साम्राज्य में विनमि का अभिषेक किया । उन्हें कई प्रकार की विद्यायें दी तथा जनता से उनका परिचय कराया । नमि विनमि विद्याधरों का राज्य पाकर बहुत प्रसन्न हुये । धरणेन्द्र कर्तव्य पूरा कर अपने स्थानको- वापिस, चला गया ।

ध्यान करते करते जब छह माह व्यतीत हो गये तब वृषभदेव ने अपनी मुद्रा समाप्त कर आहार लेने का विचार किया । यद्यपि उनके शरीर में जन्म से ही अतुल्य बल था वे आहार न भी करते तब भी उनके शरीर में कुछ शिथिलता न आती तथापि मुनि मार्ग चलाने- का ख्याल करते हुये उन्होंने आहार करने का निश्चय कर गावों में विहार करना शुरू कर दिया । विहार करते समय वे चार हाथ जमीन देखकर चलते थे और किसीसे कुछ बोलते न थे । यह हम पहले लिख चुके हैं कि उस समयके लोग इत्यन्त भोले थे । आदिनाथ के पहले वहां कोई मुनि हुआ ही नहीं था इसलिये वे लोगमुनि मार्ग से सर्वथा अपरिचित थे । वे यह नहीं समझते थे कि मुनियों केलिये आहार कैसे दिया जाता है । महामुनि आदिनाथ किसी को कुछ बतलाते, न थे क्योंकि यह नियम है कि दीक्षा लेने के बाद जब तक केवलज्ञान प्राप्त नहीं

हो जाता तब तक तीर्थकर मौन होकर रहते हैं किसी से कुछ नहीं कहते । इसलिये जब वे आहरकेलिए नगरों में पहुंचते तब कोई लोग कहने लगते थे कि हे देव ! प्रसन्न होओ, कहिये कैसे आगमन हुआ ? कोई महामूल्य रत्न सामने रखकर ग्रहण करने की प्रार्थना करते थे, कोई हाथी घोड़ा आदि सवारियां समर्पण कर उन्हें प्रसन्न करना चाहते थे, कोई सर्वाङ्ग सुन्दरी कन्यायें ले जाकर उन्हें स्वीकार करने का आग्रह करते थे । और कोई सोने की थालियों में उत्तमोत्तम भोजन ले, जाकर ग्रहण करने की प्रार्थान करते थे । पर वे विधिपूर्वक न मिलने के कारण बिना आहार लिए ही नगरो से वापिस चले जाते थे । इस तरह जगह जगह घूमते हुए उन्हें एक माह और बित गया पर कही विधिपूर्वक उत्तम पवित्र आहार नहीं मिला । खेद के साथ लिखना पड़ता है कि जिनके गर्भमें आनेके छह माह पहले इन्द्र किंकर की तरह हाथ जोड़कर आज्ञा की प्रतीक्षा करता रहा, सम्राट भरत जिनका पुत्र था, और जो स्वयं तीनों लोकों के अधिपति कहलाते, थे वे भी ना कुछ आहार के लिये निरन्तर छह माह तक एक-दो नहीं कई-नगरों में घूमते रहे, पर आहार न मिला । कितना विषम है कर्मोंका का उदय ?

इस तरह भगवान आदिनाथ ने एक वर्ष तक कुछ भी नहीं खाया पिया था तो-भी उनके चित्त व शरीर में किसी प्रकार की विकृति और शिथिलता नहीं दीख पड़ती थी । अब हम कुछ समय के लिये पाठकों का चित्त वहां ले जाते हैं चहांपर महामुनि के लिये अकस्मात् आहार प्राप्त होगा ।

जिस समय की यह बात है उस समय कुरु जांगल देश के हस्तिनापुर में एक सोमप्रभ राजा राज्य करते थे, वे बड़ें ही धर्मात्मा थे, उनके छोटे भाई का नाम श्रेयांसकुमार था, यह श्रेयांसकुमार भगवान् आदिनाथ के वज्रजंघ भवमें श्रीमती स्त्रीका जीव था जो क्रम क्रमसे आर्या, स्वयंप्रभ देव, केशव, अच्युत प्रतीन्द्र धनदेव आदि होकर सर्वार्थ सिद्धि में अहमिन्द्र हुआ था और वहांसे चयकर श्रेयांसकुमार हुआ था । एक दिन रात्रि के पिछले प्रहरमें श्रेयांसकुमार ने अत्यन्त ऊंचा मेरु पर्वत, शाखाओं में लटकते हुए भूषणों से सुन्दर कल्पवृक्ष, मूंगोके समान लाल लाल अयाल से शोभायमान सिंह, जिसके सींगोंपर मिट्टी लगी हुई है ऐसा बैल, चमकते हुए सूर्य चन्द्रमा, लहराता हुआ समुद्र और अष्ट मंगल द्रव्योंको लिये हुए व्यन्तर देव स्वप्नमें देखे सवेरा होते ही उसने अपने पुरोहित से ऊपरे कहे हुए स्वप्नों का फल पूछा । पुरोहितने निमित्त ज्ञान से सोचकर कहा कि मेरुपर्वत के देखनेसे उसके समान उन्नत कोई महापुरु ष अपने शुभागमन से-आपके भवनको, अनुकृत करेगा और बाकी स्वप्न उन्हीं महापुरु षके गुणोंकी उन्नति बतला रहे हैं ।

पुरोहित मुखसे स्वप्नों का फल सुनकर सोमप्रभ और श्रेयान्स दोनों भाई हर्ष के मारे, फूले न समाते थे । प्रतः कालके समय देखे गये स्वप्न शीघ्र ही फल देते हैं । पुरोहित के इन वचनोने तो उन्हें और भी अधिक हर्षित बना दिया था । राज भवन में बैठे हुए दोनों भाई उन महापुरु ष की प्रतीक्षा कर ही रहे थे कि इतने में महापुरु ष भगवान् आदिनाथ ईर्या समिति से विहार करते हुए हस्तिनापुर जा पहुंचे ।

जब वे राज भवन के पास आये तब सिध्दार्थ नामक द्वारपालने राजा सोमप्रभ और युवराज श्रेयासकुमार को उनके आनेकी खबर दी ।

द्वारपाल के मुख से भगवान् का आगमन सुनकर दोनो भाई दौड़ें हुए आये और उन्हें प्रणाम कर बहुत ही आनन्दित हुए । युवराज श्रेयांसकुमार ने ज्योंही भगवान् का दिव्य रूप देखा त्याही उसे जाति स्मरण हो आया । श्रीमती और वज्रजंघ भवका समस्त वृत्तान्त उनकी आंखोंके सामने, ज्यों की त्यो दिखने लगा । पुण्डरीकिणीपुरी को जाते समय रास्तेमें सरोवर के किनारे जो मुनि युगल के लिये आहार दिया था वह भी श्रेयांस को ज्योका त्यो याद हो गया । यह प्रातःकाल का समय आहार देनेके योग्य है ऐसा विचार कर उसने उन्हें नवधा भक्तिपूर्वक पड़गाहा और श्रद्धा, तुष्टि आदि गुणों से युक्त होकर आदि जिनेन्द्र वृषभनाथ को आहार देने के लिये भीतर लिवा ले गया । वहां उसने राजा सोमप्रभ और उनकी स्त्री लक्ष्मीपती के साथ भगवान् के पाणिपात्र में इक्षुरस की धाराएं प्रदान की । इस पवित्र दानसे प्रभावित होकर देवोंने आकाश से रत्नों की वर्षा की, दुन्दुभि बाजे बजाये, पुष्प वर्षाये और जय जय ध्वनिके साथ अहो दानम् कहते हुए दान की प्रशंसा की उस समय सब दिशाएं निर्मल हो गई थी । आकाश में मेघ का एक टुकड़ा भी नजर नहीं आता था और मन्द, सुगन्ध पवन चलने लगा था । महामुनीन्द्र वृषभेश्वर के लिये दान देकर दोनों भाईयों ने अपने आप को कृतकृत्य समझा । बहुतोंने इस दान की अनुमोदना की ।

आहार ले चुकने के बाद वृषभदेव बन की ओर बिहार कर गये । उस युग में सब से पहले, दानकी प्रथा श्रेयांसकुमार ने ही चलाई थी इसलिए देवोंने आकर उस का खूब सत्कार किया । सम्राट भरत को इस बात का पता चला तब वे भी समस्त परिवार के साथ हस्तिनापुर आये और वहां सोमप्रभ श्रेयान्स तथा लक्ष्मीपती का सत्कार कर प्रसन्न हुए । इस के अनन्तर श्रेयान्सकुमार ने दान स्वरूप, दानकी आवश्यकता तथा उत्तम, मध्यम जघन्य पात्रोंका स्वरूप बतलाकर दानतीर्थ की प्रवृत्ति चलाई । प्रथम तीर्थकर वृषभदेव को आहार देकर श्रेयान्सकुमार ने जिस लोकोत्तर पुण्य का उपार्जन किया था उसका वर्णन कौन कर सकता है ? आचार्यों ने कहा है कि जो तीर्थकरों को सबसे, पहले आहार देता है वह नियम से उसी भवसे मोक्ष प्राप्त करता है, सो श्रेयांस भी लोक में अत्यन्त प्रतिष्ठा प्राप्त कर जीवनके अन्त समयमें मोक्ष प्राप्त करेंगे ।

भगवान् आदिनाथ बीहड़ अटवियों में ध्यान लगाकर आत्मशुद्धि करते थे । वे बहुत दिनों का अन्तराल देकर नगरों में आहार लेनेके लिये आते थे सो भी रूखा सूखा स्वल्प आहार करते थे । वे अनशन, ऊनोदर, वृत्तिपरिसंख्यान, रसपरित्याग, विवक्त, शय्यासन, कायक्लेश प्रायश्चित्त, विनय, वैयावृत्य, स्वाध्याय, व्यत्सर्ग और ध्यान इन बारह तपोंको भलीभांति तपते थे । उन्होंने जगह जगह घूमकर अपनी चेष्टाओंसे मुनि मार्गका प्रचार किया था । यद्यपि वे उस समय मुह से कुछ बोलते न थे तथापि इनकी क्रियाएं इतनी प्रभावक होती थी कि लोग उन्हें देखकर बहुत जल्दी प्रतिबुद्ध हो जाते थे । वे कभी ग्रीष्म ऋतुमें पहाड़ की चोटियों पर ध्यान लगाते थे, कभी शीत कालकी विशाल रातोंमें नदियों के तटपर आसन जमाते थे और कभी वर्षा ऋतुमें वृक्षों के नीचे योगासन लगाकर बैठते थे । इस तरह उग्र तपश्चर्या करते करते जब उन्हें एक हजार वर्ष बीत गये तब वे एक दिन पुरीमताल नामक नगरके पास

पहुंचे और वहां शकट नामक बनमें निर्मल शिला तल पर पद्मासन लगा कर बैठे । उस समय उनकी आत्म-विशुद्धि उत्तरोत्तर बढ़ती जाती थी जिसके फलस्वरूप उन्होंने क्षपक श्रेणीमें प्रवेश कर शुक्ल ध्यान के द्वारा ज्ञानावरणीय दर्शनावरणीय, मोहनीय और अन्तराय इन चार घातिया कर्मों का नाशकर फाल्गुन कृष्ण एकादशीके दिन उत्तराषाढ नक्षत्र में सकल पदार्थों को प्रकाशित करने वाले केवलज्ञान का लाभ किया । भगवान् आदिनाथ केवलज्ञान के द्वारा तीनों लोकों को और तीनों कालों के समस्त पदार्थों को एक साथ जानने देखने लगे थे । ज्ञानावरण के नाश होनेसे उन्हें केवलज्ञान प्राप्त हुआ था दर्शनावरणके अभाव में केवलदर्शन मोहनीय के अभाव में अनन्त सुख और अन्तराय के अभाव में अनन्त वीर्य प्राप्त हुआ था ।

वृषभ जिनेन्द्र को केवलज्ञान प्राप्त हुआ है इस बात का इन्द्र तो पता चला तब वह समस्त परिवार के साथ भगवान के साथ भगवान की पूजा केलिये पुरीमतालपुर आया । इन्द्र के आनेके- पहिले ही धनपति कुवेरने वहां दिव्य सभा-समवसरण की रचना कर दी थी । वह सभा बारह योजन विस्तृत नील मणिकी गोल शिला-तल पर बनी हुई थी । जमीन से पांच हजार धनुष ऊंची थी । ऊपर पहुंचने केलिये उसमें बीस हजार सीढियां बनी हुई थी, उस सभा के चारों ओर अनेक मणिमय सुवर्णमय कोट बने हुए थे । उसमें चारों दिशाओं में चार मानस्तम्भ बनाये गये थे, जिन्हें देखनेसे मानियों का मान खण्डित हो जाता था । अनेक नाट्यशालायें बनी हुई थीं जिनमें स्वर्ग की अप्सरायें भगवद् भक्ति से प्रेरित होकर नृत्य कर रहे थे । अनेक परिखाएं थीं जिन में सहस्रदल-हजार पांखुड़ी वाले- कमल-फूल रहेथे । वहांके रत्नमय दरवाजोंपर देव लोग पहरा दे रहे थे । ऊपर चलकर भगवान् की गन्धकुटी बनाई गई था, जिसमे रत्नमय सिंहासन रक्खा हुआ था । सिंहासन के चारों ओर श्रीमण्डप बनाया गया था, उसके सब ओर परिक्रमा रू पसे बारह सभाएं बनाई गई थीं जिनमें देव, देवियां, मनुष्य, तिर्यच, पशु, पक्षी आदि सभी सुखसे बैठ सकते - थे । कुवेरके द्वारा बनाई हुई दिव्य सभा को देखकर इन्द्र बहुत ही हर्षित हुआ, और भक्ति से जय, जय जय शब्द करता हुआ समस्त परिवार के साथ वहां पहुंचा जहा पूर्ण ज्ञानी योगी भगवान् आदिनाथ विराजमान थे । ऊपर जिस गन्धकुटीका कथन कर आये हैं भगवान् उसी में स्वर्ण सिंहासनपर चार अंगुल अन्तरीक्ष में विराजमान थे । वहां उनके दिव्य तेजसे सब ओर प्रकाश सा फैल रहा था । इन्द्रसे विनय नमस्कार कर सुमधुर शब्दोंमें हजार नामोंसे उनकी स्तुति की ।

महाराज भरत राजसभामें बैठे हुए ही थे कि इतने में पुरोहित ने पहुंचकर उनसे जगद्गुरु वृषभदेव को केवलज्ञान होने का समाचार सुनाया । उसी समय कञ्चुकी - अन्तःपुरके पहरेदारने, आकर पुत्रोत्पत्ति का समाचार सुनाया और उसी समय तेजके शस्त्रपालने आकर कहा कि नाथ ! शस्त्रशाला में चक्ररत्न प्रकट हुआ है । जो अपने तेजसे सूर्यके तेज को पराजित कर रहा है । राजा भरत तीनोंके मुखसे एक साथ शुभ समाचार सुनकर बहुत प्रसन्न हुए । इन तीन उत्सवों में, से पहले किसमें शामिल होना चाहिये, यह विचार कर क्षण एक केलिये भरत महाराज व्याकुल - चित्त हुए थे अवश्य, पर उन्होंने बहुत

जल्दी धर्मकार्य ही करना चाहिये , ऐसा दृढ़ निश्चय कर लिया और निश्चय के अनुसार समस्त भाई , बन्धु, मन्त्री पुरोहित , मरुदेवी आदि परिवार के साथ गुरदेव पितृदेव के वैत्रल्य महात्सवमें शामिल होने के लिये पुरिमतालपुर , पहुंचे । वहां समवसरण की अद्भूत शोभा देखकर भरत का चित्त बुहत ही प्रसन्न हुआ । देव द्वारपालों ने , उन्हें सभा के भीतर पहुंचा दिया । वहां उन्होंने प्रथम पीठिकापर विगजमान धर्म-चक्रोंकी प्रदक्षिणा दी , फिर द्वितीय पीठिका पर शोभायमान ध्वजाओं की पूजा की, इसके अनन्तर गन्ध-कुटी में सुवर्ण सिंहासन पर चार अंगुल अधर विराजमान महायोगीश्वर भगवान् वृषभदेव को देखकर, उन का हृदय भक्तिसे गद्गद् हो गया । भरत बगैरहने ती न प्रदक्षिणाएं- दी फिर जमीन पर मस्तक झुकाकर जिनेन्द्र देव को नमस्कार किया और श्रुतिसुखद शब्दों में अनेक स्तोत्रो से स्तुतिकार जल चन्दन आदि अष्ट द्रव्योंसे उनकी पूजा की । भक्ति प्रदर्शित करनेके बाद भरत वगैरह मनुष्यों के कोठे मे बैठ गये । उस समों जिनेन्द्र दिवकी बैठक के पास अनेक किसलयों से, शोभायमान अशोक वृक्ष था जो अपनी श्यामल रक्त प्रभा से प्राणिमात्र केशोक समूह का नष्ट कर रहा था । वे ऊंचे सिंहासनपर विराजमान थें, उन के पीछे भामण्डल लगा हुआ था जो अपनी कान्तिसे भास्कर ( सूर्य) को भी पराजित कर रहा था, यक्षकुमार जाति के देव चौंसठ चमर ढोल रहे थे , जो भगवानके फैलते हुए धवल यशकी तरह मालूम होते थे । देव लोग स्वर ताल के साथ दुन्दुभि आदि हजारो तरह के बाजे बजा रहे थे और आकाशसे मन्दार सुन्दर नमेरु, पारिजात सन्तानक आदि कल्पवृक्षों के सुगन्धित फूल वर्षा रहे थे । उस समय उनका एक ही मुख चारो ओरसे दिखाई देता था ।

उनके पुण्य प्रताप से चारों ओर एक योजन तक सुभिक्ष हो गया था कोई धन-धान्य के अभाव में, दुखी नहीं था । उनके शरीरकी छाया नहीं पड़ती थी , कोई कसी कियो नहीं सताता था , सभीके हृदय - क्षेत्रों में दया-सरिता कल-कल वाद करती हुई बह रही थी । त्रिभुवनपति वृषभदेव के इस दिव्य प्रभाव को देखकर सभी चकीत हो गये थे । उनके मुखचंद्रको देखकर प्राणिमात्र के -हृदयों में आनन्द का समुद्र लहरा राह था । उस सभा में देव लोग इतना सुन्दर- प्रबन्ध कर रहे थे कि जिससे किसी को कुछ भी कष्ट मालूम नहीं होने पाता था । जन्म- के अन्धे, लंगडे बहरे आदि मनुष्य उस सभामें पहुंचकर नीरोग हो जाते थे । धीरे धीरे सभा के बारहों कोठे देव, देवियां, मनुष्य स्त्रियां तथा पशु, पक्षी वगैरह से खचाखच भर गये थे । जब सभा में पूर्ण शान्ति नजर आने लगी, तब भगवान् के मुखारविन्द से दिव्य वाणी प्रकट हुई । उनकी वह वाणी ओंकार रूप थी । उसमें मुंहसे प्रकट होते समय अक्षरों का विभाग नहीं मालूम- होता था , इसलिये लोग उसे निरक्षरी भाषा कहते है । उस भाषा में सब भाषाओं का रूप - परिणम करने की शक्ति थी , इसलिये जो प्राणी जिस भाषाको -समझता था उसके कानोंमें - भगवान् की वाणी उसी भाषा रूप परिणित हो जाती थी । उनकी कवह वाणा इतनी मधुर और- स्पष्ट होती थी कि उसे सुनकर सभी को मालूम होता था कि हमारे - कानों में अमृत के झरने- झर है ।

उन्होंने अतिशयपूर्ण दिव्य ध्वनिमें धर्म-अधर्म का स्वरूप समझाकर सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चरित्र का, जीव अजीव, आस्रव,बन्ध, संवर , निर्जरा ओर मोक्ष इन सात तत्त्वों का , जीव-पुद्गल, धर्म अधर्म आकाश और काल इन छहों द्रव्योंकी , पुण्य-पाप का और लोक-अलोक का स्वरूप बतलाया था । यह भी बतलाया था कि जब तक प्राणियों की दृष्टि बाह्य भौतिक पदार्थों में उलझी रहेगी तबतक उसे आत्मीय आनन्द का अनुभव नहीं हो सकता । उसे प्राप्त करने के लिये तो सब ओरसे मोह छोड़कर कठिन तपस्याएं करने की आवश्यकता है -इंद्रियों पर विजय प्राप्त करने की आवश्यकता है और है आवश्यकता आत्मध्यान में अचल होने की । भगवान् की भव्य भारती सुनकर हर एक का चित्त द्रवीभूत हो गया था । राजा भरतने दृढ़- सम्यग्दर्शन धारण किया । कुरुकुल चूड़ामाणि राजा, सामप्रभ दानतीर्थ के प्रवर्तक युवराज श्रेयान्स और भरत का छोटा भाई वृषभसेन इन तीन पुरुषोंने प्रभावित होकर उसी सभा मे जिन दीक्षा ले , ली और मति, श्रुति अवधि, और मनःपर्याय ज्ञानकेधारक गणधर मुख्य श्रोता बन गये । ब्राह्मी और सुन्दरी नामक पुत्रियों भी पूज्य पिताकेचरण कमलोंके उपाश्रयमें आर्यिका केव्रत लेकर समस्त आर्यिकाओं की गणिनी-स्वामिनी हो गई थी । कच्छ महाकच्छ आदि चार हजार राजा जो कि पहले मुनि मार्गसे भ्रष्ट हो गये थे , भरत पुत्र मरीचिको छोड़कर वे सब फिरसे भावलिङ्ग.पूर्वक सच्च दिगम्बर मुनि हो गये थे । आदिनाथ का पुत्र अनन्तवीर्य बी दीक्षित हो गया । श्रुतिकिर्ती ने , श्रावक केव्रत लिये और प्रिचव्रत ने श्राविका केव्रत ग्रहण किये । निक सिवाय असंख्य नर-नारियों ने व्रत-विधान धार किये थे यहां सिर्फदो-चार मुख्य व्यक्तियों का नामोल्लेख किया है । बहुतसे देव देवियों ने अपने आपको सम्यग्दर्शन अलंकृत किया था । इस प्रकार भगवान् का केवलज्ञान-महोत्सव देखकर भरत सम्राट राजधानी अयोध्दा को वापिस लौट आये । लोगोंका आना जाना जारी रहता था इसलिये समवसरण की भूमि देव, मनुष्य और तिर्यचों से कभी खाली नहीं होने पाती थी ।

इन्द्रने जिनेन्द्र देवसे प्रार्थना की हे देव ! संसार केप्राणी अधर्म रुप सन्ताप से सन्तप्त हो रहे है । उन्हें हेय उपोदय का ज्ञान नहीं है इसलिये देश -विदेशों में विहार कर उन्हें हित का उपदेश देवे के लिये यही समय उचित है । किसी एक जगह जनता का इपस्थित होना अशक्य है अतएव यह कार्या जगह-जगह विहार करने से ही सम्पन्न हो - सकेगा । इन्द्रकी प्रार्थना सुनकर उन्होंने अनेक देशों में विहार किया । वे आकाश में चलते थे । चलते समय देव लोग उनके पैरों के , नीचे सुर्वण कमलो की रचना करते जाते थे । मन्द सुगन्धित हवा बहती थी, गन्धोदक की वृष्टी होती थी , देव जय जय शब्दो करते थे उस समय पृथ्वी कांच केसमान निर्मल हा गई थी , समस्त ऋतुएं एक साथ शोभाए प्रकट कर रही थी, पृथ्वी में कहीं कण्टक नहीं दिखाई देते थे , सब ओर सुभिक्ष हो गया था , कहीं आर्तध्वनि सुनाई नहीं पड़ती थी और उनकेआगे, धर्म -चक्र तथा अष्ट-मंगल द्रव्य चला करता था । कहने का मतलब यह है कि उनकेपुण्य परमाणु इतने सुभग और विशाल थे कि वे जहां भी जाते थे , वही देव , दानव मानव आदि सभी प्राणी उनकेवशीभूत हो जाते थे । विहार करते करते वहाँ वे रुक जाते थे ,



धनपति कुबेर वहीं पर पूर्व की तरह समवसरण दिव्य सभा की रचना कर देता था जहां बैठकर भव्य जीव सुखपूर्वक आत्म-हित का उपदेश श्रवण करते थे । उनके उपदेश की शैली इतनी मोहक थी कि वे जहां भी उपदेश देते थे वहीं असंख्य नर-नारी प्रतिबुद्ध होकर मुनि , आर्यिका , श्रावक , श्राविका बन जाते थे । उस समय सकल भारत वर्षा में अखण्ड रूपसे जैन धर्म फैला हुआ था । इस प्रकार देश विदेशों में घूमकर वे कैलाश गिरिपर पहुंचे और वहां आत्म-धान्य में लीन हो गये । अब कुछ सम्राट भरत के विषय में सुनिये - समवसरण से लौटकर महाजा भरत ने - पहिले चक्रवर्त्तन कि पूजा कि और फिर याचकों को- इच्छानुसार दान देते हुये पुत्रोत्पत्ति का उत्सव किया । अभिनव राजा भरत के पुत्र उत्पन्न हुआ हैं यह समाचार किसे हर्षित बना देता था ? उस उत्सव में अयोध्यापुरी इतनी सजाई गई थी कि उसके सामने- पुरन्दपुरी अमरावती भी लज्जा से सहम जाती थी । प्रत्येक मकानों की शिखरोंपर तरह तरह की पताकाएं फहराई गई थी, राजमार्ग सुगन्धित जलसे सींचे गये थे , बड़े बड़े बाजों आवाजसे आकाश गुंज गया था , सभी ओर मनोहर संगीत और नृत्य-ध्वनी सुनाई पड़ रही थी, जगह जगह तोरणद्वारा बनाये गये थे , और हर एक घरोंके द्वार पर मणिमय वन्दनमालएं लटकाई गयी थी । उस समय अन्तःपुर की शोभा तो सबसे निराली ही नजर आती थी ।

इधर समस्त नगरमें पुत्रोत्पत्ति का उत्सव मानाया जा रहा था , उधर महाराज भरत दिग्विजय की यात्रा के लिए तैयारी कर रहे थे । वह समय शरद् ऋतु का था । आकाश में कहीं कहीं सफेद बादलों का समूह फैल रहा था , जो कि भरत-राजाके निर्मल यश के समान मालूम होते थे, गगनमें जो सूर्य चमकता था वह सम्राटके तीव्र प्रताप की तरह जान पड़ता था , रात्रि में निर्मल चन्द्रमा शोभा देता था, जो कि भरतके साधु स्वभाव की तरह दिखाई देता था , नद-नदी,तालाब आदि का पानी स्वच्छ हो गया था , सूर्य की तेजस्वी किरणों से मार्ग का कीचड़ सुख गया था, तालाबों में दिनमें कमल और रात में कुमुद फूलते थे । उनपर भ्रमर जो मनोहर गुञ्जार करते थे सो ऐसा मालूम होता था , मानों वे भरत -राजा का यशही गा रहे हैं । हंस अपने सफेद पर फैलाकर निर्मल नीले नभमें उड़ते हुए नजर आते थे , उस समय प्रगृतिरानी की शोभा सब से निराली थी । भरत ने उस समय को ही दिग्विजय केलिये । योग्य समझकर शुभमुहूर्त में प्रस्थान किया । प्रस्थान करते समय गुरुजनों ने भरत का अभिषेक किया । सुन्दर वस्त्राभूषण पहिनाये, माथे पर कुंकुम का तिलक लगाया और आरती उतारी थी । समस्त वृद्ध जनों ने आशीर्वाद दिया , बालकों ने अदम्य उत्साह प्रकट किया और महिलाओने पुष्प तथा धान के खीले बरसाये थे । उस समय भरत-राज की असंख्य सेना उमड़ते हुए समुद्र की तरह मालूम होती थी । वृषभनन्दन भरत कुमार आद्य चक्रवर्ती थे, इसलिये उनके चौदह रत्न और नौ निधियां प्रकट हुई थी । रत्नोंके नाम ये हैं । १ सुदर्शन चक्र २ सूर्यप्रभ छत्र, ३ सौनन्दक खड्ग, ४ चण्डवेग दण्ड, ५ चर्मरत्न, ६ चूड़ामणि मणि, ७ चिन्ताजननी काकिणी, ८ कामवृष्टि गृहपति, ९ अयोध्य सेनापति, १० भद्रमुख तक्षक, ११ बुद्धि सागर पुरोहीत , १२ विजयर्धा याग हस्ती, १३ पवनंजय अश्व और, १४ मनोहर सुभद्र स्त्री ।

इनमेंसे प्रत्येक रत्नकी एक एक हजार देव रक्षा करते थे । ये सब रत्न दिग्विजय के समय चक्रवर्तीके साथ चल रहे थे । इनके रहते- हुए उन्हें- कोई भी काम कठिन मालूम नहीं होता था । नव निधियां ये हैं -१ काल २ महाकाल ३ पाण्डूक ४ मानवाख्य ५ वैरुपाख्य ६ सर्व रत्नाख्य ७ शङ्ख ८ पद्म ९ पिंगलाख्य । इन निधियों की भी हजार देव रक्षा करते थे । निधियों के रहते हुए भरत सम्राट्को कभी धन धान्य की चिन्ता नहीं करनी पड़ती थी ।

इच्छानुसार समस्त वस्तुयें निधियोंसे ही प्राप्त हो जाती थी । भरत चक्रवर्ती अपने तक्षक-रत्न (उत्तम बद्धई ) के द्वारा बनाये गये रथपर बैठे हुए थे । उनके मस्तक पर रत्नखिचत सोने का मुकुट चमक रहा था । शिरपर सफेद छत्र लगा हुआ था और दोनों ओर चमर ढोले जा रहे-थे । बन्दी गण गुणागन कर रहे थे । अनेक हाथी, घोड़े, रथ और प्यादों से भरी हुई सम्राट की सेना बहुत भली मालूम होती थी ।

उस समय लोगो के पदाघात से उड़ी हुई धूलिने प्रकाश को ढक लिया ता , जिस से ऐसा मालूम होता था मानो सूर्य भरत के प्रताप से पराजित होकर कहींपर जा छिपा है । सैनिको के हाथों में, अनेक तरह के आयुध ( हाथियार ) चमक रहे थे भरत सम्राट का सैनिक बल देखने के लिये आये हुए देव और विद्याधरों के विमानों से समस्त आकाश भर गया था । वह सेना अयोध्यापुरी से निकल कर प्रकृति की शोभा निहारती हुई मैदानमें द्रुत गतिसे जाने लगी थी । बीच बीच में अनेक अनुयायी राजा अपनी सेना सहित भरत के साथ मिलते जाते थे । इसलिये वह सेना नदी की भांति उत्तरोत्तर बढ़ती जाती थी । बहुत कुछ मार्ग करने पर भरतेश गङ्गा नदी के पास पहुंचे । गंगा की अनूठी शोभा देखकर भरत की तबियत बाग बाग हो गई । गड़ा शीतल जलकणों से मिली हुई और सरोज गन्ध से सुवासित मन्द समीर से उनका स्वागत किया । भरत ने वह दिन गड़ा तीरपर ही बिताया । भरत तथा सेनाके ठहरने के लिये रथपति ने अनेक तम्बु, कपड़े के पाल तैयार कर दिये थे जिनसे ऐसा मालूम होता था कि भरत के विरह से दुःखी होकर अयोध्यापुरी ही वहां पहुंच गई है । दूसरे दिन विजयार्ध गिरिके समान अत्यन्त ऊंचे विजार्ध नामक हाथीपर बैठकर सम्राट ने समस्त सेना के साथ गङ्गाके किनारे प्रस्थान किया । चण्डवेग नामक दण्डके प्रताप से समस्त रास्ता पक्की सड़क के समान साफ होता जाता था, इसलिये सैनिकों को चलनमें किसी प्रकार का कष्ट नहीं होने पाता था । बीचमें अनेक नरपाल मुक्ताफल, कस्तूरी, सुवर्ण ,चांदी आदिका उपहार लेकर भरतेश से भेंट करनेके लिये आते थे । इस तरह कुठ दूरतक चलने के बाद वे गंगा-द्वारा पर पहुंचे । वहांपर उपसागर की अनुपम शोभा देखकर वे बहबत ही प्रसन्न हुए । फिर क्रम-पूर्वक स्थल-मार्ग से - वेदी-द्वारमें प्रविष्ट हुए । वहां गंगा नदीके किनारे के बनों में अपनी विशाल सेना ठहरा कर लवण समुद्र के ऊपर अधिकार करने की इच्छा से भरत महाराज तीन दिन तक वहीं रहे । वहां उन्होंने-लगातार तीन दिन का अनशन किया तथा कुशासन पर बैठकर जैन शास्त्रोंके मन्त्रों की आराधना की ।

यह सब करते हुए भी भरत परमेष्ठी पूजा सामायिक आदि नित्यकर्म नहीं भूलते थे । वहां भी उन्होंने पुरोहित के साथ मिलकर पंच परमेष्ठी की पूजा की थी और एकाग्रचित्त होकर ध्यान सामायिक वगैरह किया था । फिर समस्त सेनाकी रक्षा के लिये सेनापति को छोड़कर अजितंजय नामक रथपर सवार हो गंगा-द्वारसे प्रवेश कर लवण - समुद्र में प्रस्थान किया । वे जिस रथपर बैठे हुए थे वह अनेक दिव्य अस्त्रोंसे भरा हुआ था । उसमें जो घोड़े जोते थे वे जलमें ,भी स्थल की तरह चलते थे और अपने वेग सम मन के वेग को जीतते थे । उनका वह रथ पानी में , ठीक नाव की तरह चल रहा था । रथके प्रबल वेग से समुद्र में जो रथके प्रबल वेग से समुद्र में जो ऊंची लहरे उठती थीं उनसे ऐसा मालूम होता था मानों वह भरत के अभिगमनसे प्रसन्नचित्त होकर बढ़ रहा हो । चलते चलते जब वे बारह योजन आगे निकल गये तब उन्होंने वज्रमय धनुषपर अपने नाम से अंकित बाण आरोपित किया और क्रोधसे हुंकार करते हुए ज्योंही उसे छोड़ा त्योंही वह मगध देव की सभा में जा पड़ा । बाण के पड़ते ही मगध देव के क्रोध का ठिकाना नहीं रहा । वह अपनी अल्प समधसे चक्रवर्ती के साथ लड़ने के लिये तैयार हो गया । परन्तु उनके बुद्धीमान मन्त्रियों बाण में चक्रवर्ती भरत का नाम देखकर उस शान्त कर दिया और कहा कि यह चक्रवर्ती का बाण है इसकी दिव्य गन्ध, अक्षत आदिसे पूजा करनी चाहिये । इस समय प्रथम चक्रवर्ती भरत दिग्विजय के लिये निकले हुये है , वे बड़े प्रतापी हैं । भरत क्षेत्र के छह खण्ड की वसुधा पर उन का एकछत्र राज्य होगा । सब देव , विद्याधर आदि उनके वशमं रहेंगे इसलिये प्रबल शत्रु के साथ विग्रह कना उचित नहीं है । मन्त्रियों के वचन सुन कर मगध का कोप शान्त हो गया । अब वह अनेक मणि मुक्ताफल आदि लेकर मन्त्री वगैरह आत्मजनों- के साथ सम्राट भरत के पास पहुंचा और वहां उनेक सामने समस्त उपहार भेंट कर विनम्र शब्दों मे कहने लगा देव ! आज हमारे पूर्वकृत शुभ कर्मों का उदय आया है जिससे आप जैसे- महापुरुषों का समागम प्राप्त हुआ है । आपके शुभागमन से मुझे जो हर्ष हो रहा है वह वचनों से नहीं कहा जा सकता । साक्षात् परमेश्वर वृषभदेव जिन के पिता है, और चौदह रत्न तथा नौ निधियां अप्रमत्त होकर जिन की सदा सेवा किया करती हैं ऐसे आपके सामने अद्यापि यह मणि मुक्ताओं की तुच्छ भेंट शोभा नहीं देती तथापि प्रार्थना है कि, महानुभाव सेवक की इस अल्प भेंटको भी स्वीकृत करेंगे । यह कहकर उसने भरत के कानों मे मणिमयी कुण्डल और गेले में मणिमय हार पहिना दिया । भरत महाराज मगधदेव के नम्र व्यवहार से बहुत प्रसन्न हुये । उन्होंने सुमधुर शब्दों में उसके प्रति अपना कर्तव्य प्रकट कर मित्रता प्रकट की । मगध भी कर्तव्य पूरा कर अपने स्थान को वापिस चला गया ।

चक्रवर्ती भी विजय प्राप्त कर शिविर (सेना स्थानपर ) वापिस आ गये । विजय का समाचार सुनकर चक्रवर्ती की समस्त सेना आनन्दसे फूल उठी । उसने हर्षध्वनि से सारे आकाश को गुञ्जा दिया । फिर दक्षिण दिशाके राजाओ को वश में करने के लिए चक्रवर्ती ने विशाल सेना के साथ दक्षिण की ओर प्रस्थान किया । उस समय भरत महाराज उपसागर और लवणसागर के बीच में जो स्थल-मार्ग था , उसीपर गमन कर रहे थे । वहां उनकी वह विशाल सेना लहराते - हुए तीसरे सागर की नाईं जान पड़ती

थी । इस तरह अनेक देशों को उल्लंघन करते और उनके राजाओं को अपने आधीन बनाते हुये भरतजी इष्ट स्थानपर पहुंचे । वहांपर उन्होंने इलायची की बेलोंसे मनोहर बन मे सेना ठहराकर पूर्वकी तरकह वैजयन्त महाद्वार से दक्षिण लवणोदधि में प्रवेश किया और बाहर योजन दूर जाकर उसके अधिपति व्यन्तर देवको पराजित कर वे वहांसे वापिस लौट आये । फिर उसी समुद्र और उपसमुद्र के बीच के रास्तेसे प्रस्थान कर पश्चिम की ओर रवाना हुये । क्रम-क्रम से सिन्धु नदी के द्वारपर वहां उन्होंने द्वार के बाहर की चन्दन, नारियल, एस, लवंग आदि के वृक्षोंसे शोभायमान वनोंमें सेना ठहराकर पहले की तरह लवण समुद्र में प्रवेश किया और के बाहर योजन दूर जाकर व्यन्तरों के अधीश्वर प्रभास नामक देवको पराजित किया । विजय प्राप्त कर लौटे हुए सम्राट का सेना ने शानदार स्वागत किया । इस प्रकार पूर्व, दक्षिण और पश्चिम दिशा में विजय प्राप्त कर चुकने के बाद भरतजी उत्तर दिशा की ओर चले । अब तक उनकी सेना बहुत अधिक बढ़ गई थी क्योंकि रास्तों में मिलनेवाले- की अनेक राजा मित्र होकर अपनी अपनी सेना लेकर उन्हीं के साथ मिलते जाते थे । जब वह विशाल सेना चलती थी तब उसके भार से पृथ्वी, पर्वत और पादप आदि सभी वस्तुयें कांप उठती थी । उसकी जयध्वनि सुनते ही शत्रु राजाओंके दिल दहल जाते थे । चलते चलत चक्रवर्ती बिजयार्ध पर्वत पास पहुंचे , वहां उन्होंने सुखसे समस्त सेना को ठहराया और स्वयं आवश्यक कार्य कर चुकने के बाद मन्त्रों की आराधना में लग गये । कुछ समय बाद वहांपर एक देव भरत से मिलने के लिए आया । भरतने उस सत्कार पूर्वक आसन दिया । भरत प्रदत्ता आसनपर बैठकर देवने निम्न शब्दों में अपना परिचय दिया प्रभो मैं बिजयार्ध नाम का देव हूं, मैं जाति का व्यन्तर हूं आप को आया हूआ देखकर सेवां में उपस्थित हुआ, आज्ञा कीजिए मैं हर एक तरह से आपका सेवक हूँ । देव ! देखिये, आप का निर्मल-धवल यश समस्त आकाश मे कैसा छा रहा है- इत्यादी मनोहर स्तुति कर उसने चक्रवर्ती का तीर्थोदक से अभिषेक किया और अनेक वस्त्राभूषण, रत्नसिंगार, सपेद छत्र, दो चमर तथा सिंहासन प्रदान किया । इसके बाद देव आत्रा प्रकट कर अपनी जगहपर वापिस चला गया । यह बिजयार्ध देव बिजयार्ध गिरिकी दक्षिण श्रेणीमें- रहता हैर इसलिये इस के वशीभूत हो चुकनेपर भी उत्तर श्रेणी के देव को वश में करना बाकी है, और जब समस्त बिजयार्ध पर हमार अधिकार हो चुकेगा तभी दक्षिण भारत की दिग्विजो पूर्ण हुई कहलावेगी, ऐसा रगेचकर भरत महाराज ने जल, सुगन्धि आदि से चक्रत्न की पूजा की तथा उपवास रखकर मन्त्रों की आराधना की । फिर समस्त सेना के साथ प्रस्थान कर बिजयार्ध गिरि की पश्चिम गुफा के पास आये । चक्रवर्ती ने पास के बनों में सना ठहरा दी । वहां पर भी अनेक राजा तरह तरह के उपहार लेकर उनसे मिलने के लिए आये । उत्तर बिजयार्ध का स्वामी कडतमाल नामक देव भी भरत के स्वागत के लिये आया । भरत ने उसके-प्रति प्रेम प्रदर्शन किया । कृतमाल ने चौदह आभूषण देकर भरत की खूब प्रशंसा की और गुफामें प्रवेश करने के उपाय बतलाये । चक्रवर्ती ने प्रसन्न हो कर कृतमाल को वापिस किया और स्वयं दण्ड रत्न से गुफां के द्वार का उद्घाटन किया । द्वारा का उद्घाटन करते ही जब उसमें- से चिरसंचित ऊष्मा गर्मी निकलने

लगी तब उन्होंने सेनापति से कहा कि जब तक यहाँ की ऊष्मा शांत होती है तब तक तुम्हें पश्चिम खण्ड पर विजय प्राप्त करो । चक्रवर्ती की आज्ञानुसार सेनापति अश्व रत्न पर सवार हो कुछ सेनाके साथ पश्चिम की ओर आगे बढ़ा । उस समय उसके आगे - दण्ड रत्न भी चल रहा था । याद रहे कि भरत का सेनापति हास्तिनापूर के राज सोमप्रभा का पुत्र जयकुमार था । वह बड़ा वीर बहादुर और निर्मल बुद्धि वाला था । जयकुमार ने दण्ड रत्नसे गुहा द्वार का उद्घाटन किया । पहले द्वार के समाने उसमें से भी ऊष्मादाह निकलने लगी पर उसने उसकी परवाह नहीं की । वह अश्वरत्न पर सवार हो शीघ्रतासे आगे निकल गई । देवों की सहायतासे उसकी समस्त सेना भी कुशलता पूर्वक आगे निकल गई । इस प्रकार सेनापति समस्त सेनाके साथ विजयार्थ गिरिकी तटवेदिका को पारकर सिन्धु नदी की पश्चिम वेदिका के तोरणद्वारसे म्लेच्छ खण्डों में जा पहुंचा । वहाँ उसने घुम-घुमकर समस्त म्लेच्छ खण्डों में चक्रवर्ती का शासन प्रतिष्ठापित किया । फिर म्लेच्छ राजा और उनकी सेना के साथ वापिस आकर पहली गुहा के द्वार का निरीक्षण किया । सेनापति को म्लेच्छ खण्डों के जीतने- में जितना ( छह माह का ) समय लगा था उतने समय तक गुहा द्वार की ऊष्मा शान्त हो चुकी थी । गुहा में प्रवेश करने के उपाय सोचकर विजयी जयकुमार चक्रवर्ती आ मिला । चक्रवर्ती भरत ने उसका बहुत सन्मान किया । जयकुमारने साथ में आये हुए म्लेच्छ राजाओं का चक्रवर्ती .... से परिचय कराया ।

इसके अनन्तर सम्राट भरत समस्त सेनाके साथ उस गुहाद्वार में प्रविष्ट हुए ! सेनापति और पुरोहित गुफा की दोनों दीवालों पर काकिणी रत्न घिसते जाते थे जिससे उस तमिस्त्र गुफा में सूर्य चन्द्रमा के प्रकाश की तरह प्रकाश फैलता जाता था । गुहा का आधा मार्ग तय करने पर उन्होंने निमन्ना और उन्मन्ना नामकी नदियाँ मिली । निमन्ना नदी हर एक पदार्थ को डुबा देती थी और उन्मन्ना नदी डूबे हुए पदार्थ को ऊपर ला देती थी । स्थपति रत्नने दोनों नदियों के पुल तैयार कर दिये थे । चक्रवर्ती समस्त सेना के साथ उन्हें पार कर आगे बढ़े । इस तरह कुछ दिनों तक निरन्तर चलने पर गुहा मार्ग समाप्त हो गया और चक्रवर्ती तट के बन में पहुंच गये । वहाँ सिन्धु नदी के शीतल जल कर्णोंस मिश्रित पवन के सुखद स्पर्शसे सबको बहुत आनन्द हुआ । तटबन की मनोहरता से प्रमुदित होकर चक्रवर्तीने कुछ दिनों तक वहीं पर विश्राम किया । भरत की आज्ञा पाकर सेनापति जयकुमार ने पश्चिम की तरफ पूर्व खण्डों में भी घुम घूमकर उनाक शासन स्थापित किया । जब जयकुमार लौट कर वापिस आया तब चक्रवर्ती उनका खूब आदर सत्कार किया । अब चक्रवर्ती समस्त सेना लेकर मध्यम खण्डको जीतने के लिये चले । वहाँ इनकी सेना का तुमुल रव सुनकर दो म्लेच्छ युद्ध करनेके लिये भरत के सामने आये । उन म्लेच्छ राजाओं को उनके बुद्धिमान मन्त्रियों ने पहले तो युद्ध करने से बहुत रोका पर अन्त में जब उनका विशेष आग्रह देखा तब उन्हें युद्ध करनेके अनेक उपाय बताये । मन्त्रियों के कहे अनुसार म्लेच्छ राजाओंने मन्त्र बल से नागदेवों का आव्हान किया । नागदेव मेघों का रूप बनाकर समस्त आकाश में फैल गये और लगे चक्रवर्ती की सेनापर मूसलधार पानी बरसाने । पानी बरसते- समय ऐसा मालूम होता

था मानों आकाशकेफट जानेसे स्वर्ग गंगा का प्रबल प्रवाह ही वेग से - नीचे गिरा रहा हो । जब चक्रवर्ती की सेना उस प्रचण्ड वर्षासे आकुल व्याकुल होने लगी तब उन्होंने ऊपर छत्ररत्न<sup>१</sup> और नीचे चर्मरत्न पैलाकर उसके बीचमें समस्त सेना के साथ विश्राम किया

लगातर सात दिन तक मूसलाधार वर्षा होती रही जिस से ऐसा मालूम होने लगा था कि भरत की सेना समुद्र में तैर रही है । मौका देखकर भरत ने उपद्रव दूर करनेके लिये गणबध्द देवों को आज्ञा दी । गणबध्द देवोंने अपनी अप्रतिम हुंकार से समस्त दिशाएं गुंजा दी । उसी समय बहादूर जयकुमार ने दिव्य धनुष लेकर बाणोंसे आकाश को भर दिया और सिंह नाद से सब नागोंकेदिल दहला दिये थे । वे डरकर भाग गये जिस से आकाश निर्मल हो गया । उस में पहले की भांति सूर्य चमकने लगा । भरतने जयकुमार की वीरता से प्रसन्न होकर उसका ६ मेघेश्वर ड नाम रखा और उपद्रव को दूर हुआ समझकर छत्ररत्न का संकोच किया । जब नागदेव भाग गये तब म्लेच्छ राजा बहुत दुःखी हुए क्योंकि इनके पास चक्रवर्ती की सेना के-

साथ लडनेकेलिये और कोई उपाय नहीं था । अन्तमें हार मानकर वे चक्रवर्ती से मिलने के- लिये और साथमें अनेक मणि, मुक्ता आदि का उपहार लाये । सम्राट भरत म्लेच्छ राजाओं से - मित्र की तरह मिले । भरत का सद्ब्यवहार देखकर वे पराजित होने का दुःख भूल गये और कुछ देर तक अनुनय विनय करनेके बाद अपने स्थानपर चले गये । इस के अनन्तर भरतजी समस्त सेना के साथ हिमवत् पर्वत की ओर गये । वहां मार्ग में सिन्धु देवीने अभिषेक कर उन्हें एक उत्तम सिंहासन भेंट किया । कुछ दिनों तक गमन करनेके बाद वे हिमवत् पर्वत के उपकण्ठ<sup>२</sup> समीप में पहुंच गये । वहां उन्होंने पुरोहित के साथ उपवास करके चक्ररत्न की पूजा की तथा और भी अनेक मन्त्रों की आराधना की । फिर हाथ में वज्रमय धनुष लेकर हिमवत् पर्वत की शिखर को लक्ष्यकर अमोध बाण छोडा । उसके प्रताप से वहां रहने वाला देव नम्र होकर चक्रवर्ती से मिलने आया और साथ में अनेक वस्त्राभूषणों की भेंट लाया । चक्रवर्ती ने उसके नम्र व्यवहार से प्रसन्न होकर उसे विदा किया । वहांसे लौटकर वे वृषभाचल पर्वतपर पहुंचे । वह पर्वत श्वेत रंग का था इसलिए ऐसा मालूम होता था मानो चक्रवर्ती का इकट्ठा हुआ यश ही हो । सम्राट भरत ने वहां पहुंच कर अपनी कीर्ति प्रशस्त लिखनी चाही पर उन्हें वहां कोई ऐसा शिला - तल खाली नहीं मिला जिसपर किसी का नाम अंकित न हो । अब तक दिग्विजयी भरत का हृदय अभिमान से फुला न समाता था पर ज्योंही उनकी दृष्टि असंख्य राजाओं की प्रशस्तियों पर पड़ी त्योंही उनका समस्त अभिमान दूर हो गया । निदान, उन्होंने एक शिलापर दुसरे राजा की प्रशस्ति मिटाकर अपनी प्रशस्ति लिख दी । सच है संसार के समस्त प्राणी स्वार्थ साधनमें तत्पर हुआ करते हैं । वृषभाचल से लौटकर वे गंगा द्वार पर आये, वहां गंगादेवीने अभिषेक कर उन्हें अनेक रत्नों के आभूषण भेंट किये । वहांसे भी लौटकर वे विजयार्ध गिरिके पास आये । वहां गुहा-द्वार का उद्घाटन कर प्राच्य खण्ड की विजय करनेके लिये सेनापति जयकुमार को भेजा और आप वहीं पर छह मास तक सुखसे ठहरे रहे । इसी बीचमें

विद्याधरो के राजा नमि, विनमि अनेक उपहार लेकर चक्रवर्तीसे भेंट करनेके लिये आये । चक्रवर्तीके सद्व्यवहार से प्रसन्न होकर नमि राजाने उनकेसाथ सुभद्रा नाम की बहिन की शादी कर दी ।

अनवद्य सुन्दरी सुभद्रा को पाकर चक्रवर्ती ने अपना समस्त परिश्रम सफल समझा ।इतनेमें - सेनापति जयकुमार प्राच्य खण्डों को जीतकर वापिस आ गया । अब सब सेना और सेनापति के साथ चक्रवर्ती भरत, खण्ड - प्रपात नामक गुहा में घुसे । वहां नाटयमाल नाम के देवने उनका खुब सत्कार किया तथा अनेक आभूषण दिये । गुहा पार करने केबाद क्रम-क्रमसे भरत महाराज कैलाश गिरिपर पहुंचे , वहां उन्होंने कुछ दिनों तक विश्राम किया । कैलाश की गगन चुम्बी धवल शिखरोंने भरतराज केहृदय पर अपना अधिकर जमा लिया था । वहांका प्राकृतिक सौन्दर्य देखते हुए उनका जी उसे छोडना नहीं चाहता था । यही कारण था कि वहांपर कथा नायक भगवान् वृषभदेव समवसरण सहित कई बार पहुंचे और भरत ने आगे चलकर तीर्थकरों के सुन्दर मन्दिर बनवाये । कैलाश से लौटकर सम्राट भरतने राजधानी अयोध्या की ओर प्रस्थान किया और कुछ प्रयाण पडाव तय करने केबाद अयोध्यापुरी को वापिस आ गये । दिग्विजयी भरत के स्वागत के लिये अयोध्या नगरी खुब सजाई थी । समस्त नगरवासी और आसपासके बत्तीस हजार मुकुटबध्द राजा उनकी अगवानी के लिये गये थे । अपने प्रति प्रजा का असाधारण प्रेम देखकर भरतजी बहुत प्रसन्न हुए । वे सब लोगोंके साथ अयोध्यापुरी में प्रवेश करने के लिये - चले । सब लोगोंकेआगे चक्रत्न चल रहा था ।

चक्रवर्ती का जो सुदर्शन - चक्रभारतवर्ष की छह खण्ड वसुन्धरा में उनकी इच्छाके - विरुध्द कहीं पर नहीं रुका था वह पुरीमें प्रवेश करते समय बाहा द्वार पर अचानक रुक गया । यक्षोंकेप्रयत्न करने पर भी जब चक्रत्न तिल भर भी आगे नहीं बढ़ा तब चक्रवर्ती ने विस्मित होकर पुरोहित से उसका कारण पूछा । पुरोहितजी ने निमित्तज्ञान से जानकर उसका कारण बतलाया कि अभी आप को अपने भाइयों को वश में करना बाकी है - जब तक आपके सब भाई आप के आधीन न हो जायेंगे तब तक चक्रत्न का नगरमें प्रवेश नहीं हो सकता, क्योंकि इस दिव्य शस्त्र का ऐसा नियम है कि , जब तक छह खण्ड के समस्त प्राणी चक्रवर्ती केअनुयायी न बन जावे तब तक वह लौटकर नगर में प्रवेश नहीं करता । पुरोहित केवचन सुनकर चक्रवर्तीने अनेक उपहारों के साथ अपने भाइयोंकेपास चतुर दूत भेजे और उन्हें अपनी आधीनता स्वीकार करने - के लिए प्रेरित किया । भरतके भाइयोंने ज्योंही दूतों के मुखसे उनका सन्देश सुना त्योंही उन्होंने - संसार से विरक्त होकर राज्य -तृष्ण छोडकर दीक्षा लेना अच्छा समझा और निश्चय केअनुसार दीक्षा लेनेकेलिये भगवान् आदिनाथ केपास चले भी गये । इन्होंने लौटकर भरतजी से -सब समाचार कह सुनाये । भाइयों के विरह से उन्हें चिन्ता हुई तो अवश्य, किन्तु राज्य लिप्सा भी कीई चीज है उसके वशीभूत होकर उनने अपने हृदयमें बन्धु-विरह को आधिक स्थान नहीं दिया । फिर उन्होंने अपनी दूसरी मा सुनन्दा के पुत्र बाहुबलीके पास एक चतुर दूत भेजा । उस समय बाहुबली पोदनपुन के राजा थे । वह

क्रम-क्रमसे अनेक देशोंके लांघता हुआ पोदनपुर पहुंचा और वहां द्वारपाल के द्वारा राजा बाहुबलीके पास आनेकी खबर भेजकर राजसभा में पहुंचा । वहां एक ऊंचे सिंहासन पर बैठे हुए बाहुबली को देखकर इनकेमनमें संशय हुआ कि यह शरीर धारी है या अनड है ? मोहनी आकृतिसे युक्त बसंत है ? मूर्तिधारी प्रताप है? अथवा घाम तेजका समूह है ? दूतने उन्हें नमस्कार किया । बाहुबली ने भी बड़े भाई भरतके- राजदूत का यथोचित सत्कार किया । कुछ समय बाद जब उन्होंने उससे आने का कारण पूछा तब तह विनीत शब्दों में कहने लगा- नाथ ! राज राजेश्वर भरत जो कि भारतवर्ष की छह खण्ड वसुन्धरा को जीतकर वापिस आये है , उन्होंने राजधानी अयोध्या से मेरे द्वारा आपकेपास सन्देशा भेजा है - प्यारे भाई । यह विशाल राज्य तुम्हारे बिना शोभा नहीं देता इसलिये तुम शीघ्रही आकर मुझसे मिलो । क्योंकि राज्य वही कहलाता है जो समस्त बन्धु बान्धवोंके भोगका कारण हो । यद्यपि मेरे चरण कमलोंमे समस्त देव विद्याधर और सामान्य मनुष्य भक्ति से मस्तक झुकाते है तथापि ज तक तुम्हारा प्रतापमय मस्तक उनकेपास मज्जाल मराल-मनोहर हंस की भांति आचरण नहीं करेगा तब तक उनकी शोभा नहीं । इसके अनन्तर महाराज ने यह भी कहला भेजा है कि जो केई हमारे अमोघ शासन को नहीं मानता उनका शासन यह चक्रन्त करता है बस जब दूत संदेश सुना कर चुप हो रहा तब कुमार बाहुबली मुस्कराते हुए बोले- ठीक, तुम्हारे राज राजेश्वर बहुत ही बुद्धिमान मालूम होते है । उन्होंने अपने संदेश में कुछ कुछ साम और दाम और विशेष कर भेद-दण्ड का कैसा अनुपम समन्वय कर दिखाया है ? कहते कहते - बाहुबली की गंभीरता उत्तरोत्तर बढ़ती गई । उन्होंने गंभीर स्वरमें कहा - तुम्हारा राजा भरत बहुत मायावी मालूम होता है । उसके मन में कुछ और है और संदेश कुछ और ही भेज रहा है । यदि दिग्विजयी भरत सचमुचमें सुरविजयी है तो फिर दर्भ कुशाके आसनपर बैठकर उनकी आराधना क्यों करता था ? इसी तरह यदि उसकी सेना अजेय थी तो वह म्लेच्छोंके समर में लगातार सात दिन तक क्यों तकलीफ उठाती रही ? पूज्य पिताजीने मुझ में और उसमें समान रूपसे राज पदका प्रयोग किया था । फिर उसके साथ राजराजेश्वर का प्रयोग कैसा ? सचमुच- तुम्हारा राजा चक्री है , कुम्हार है उसे चक्र घुमाने का खुब अभ्यास है । इसीलिए वह अनेक पार्थिव घडे बनाता रहता है, चक्र ही उसके जीवन का साधन है । उससे जाकर कह दो यदि तुम अरिचक्र का संहार करोगे तो जीवन - जल आयुसे हाथ धोना पड़ेगा । भरत के अन्तिम - सन्देश का उत्तर देते समय बाहुबली के आँठ कांपने लगे थे , आंखे लाल हो गई थी , उन्होंने दूत से कहा जाओ तुम्हारा भरत संग्रामस्थल में मेरे सामने ताण्डव नृत्य रचकर अपना भरत -नट नाम सार्थक करे । मैं किसी तरह उसकी सेवा स्वीकार नहीं कर सकता । उक्त उत्तरके साथ बाहुबली ने दूत को विदा किया और युद्धकेलिए सेना तैयार की ।

इधर दूतने आकर जब भरतसे ज्योंके त्यों सब समाचार कह सुनाये तब वे भी युद्ध के लिये सेना लेकर पोदनपुर पहुंचे । वह भाई भाईको लहाई किसीको अच्छी नहीं लगी । दोनों बुद्धिमान - मन्त्रियोंने दोनोंको लडने से रोका, पर राज्य - लिप्सा और अभिमान से भरे हुए उनके हृदय में किसी के



भी वचन स्थान न पा सके । अगत्या दोनों ओरके मन्त्रियोंने सलाह कर भरत और बाहुबली से निवेदन किया कि इस युद्धमें सेनाका व्यर्थही संहार होगा इसलिए आप दोनों महाशय स्वयं युद्ध करें, सैनिक लोग चुपचाप तमाशा देंखे । आप भी सबसे पहले - दृष्टि युद्ध फिर जलयुद्ध और बादमें मल्लयुद्ध ही कीजियेगा । इन तीन युद्धों में जो हार जावेगा वही पराजित कहलावेगा । मन्त्रियों की सलाह दोनों भाइयों को पसन्द आ गई इसलिये उन्होंने अपनी अपनी सेनाको युद्ध करनेसे रोक दिया । निश्चयानुसार सबसे पहिले दृष्टि युद्ध करने के लिये दोनों भाई युद्धभूमि में उतरे । दृष्टि युद्ध का तरीका यह था कि दोनों विजिगीषु एक दूसरे कि आंखो की ओर देखे, देखते देखते जिसके पलक पहले झप जावें वही पराजित कहलावे । यहां इतना ख्याल रखिये कि भरत का शरीर पांच सौ धनुष ऊंचा था और बाहुबली का पांच सौ पच्चीस । इसलिये दृष्टि युद्धके समय भरत को ऊपर की ओर देखना पडता था और बाहुबलीको नीचेकी ओर । वायु भरने से भरत के पलक पहले झप गये । विजयलक्ष्मी बाहुबली का प्राप्त हुई । इसके अनन्तर जलयुद्धके लिये दोनों भाई तालाबमें प्रविष्ट हुए । जलयुद्ध का तरीका यह था कि दोनों एक दूसरे पर पानी फेंके जो पहिले रुक जावेगा वही पराजित कहलावे बाहुबली ऊंचे थे इसलिये वे जो जलधारा छोडते थे वह भरत के सारे शरीर पर पडती थी और भरत जो जलधारा छोडते थे वह बाहुबली को छू भी न सकती थी । निदान इसमें भी बाहुबली ही विजयी हुए । उन्तमें मल्लयुद्ध के लिए दोनो वीर युद्ध- स्थलमें उतरे । मल्लयुद्ध देखने के लिए आए हुए देव और विद्याधरों के विमानों से आकाश भर गया था और पृथ्वी तल पर असंख्य मनुष्यराशि दिख रही थी । देखते देखते बाहुबली ने भरत को उठाकर चक्र की भांति आकाश में घुमा दिया जिस से बाहुबली का जयनाद समस्त आकाश में गूंज उठा । चक्रवर्ती भरत को अपना अपमान सहा नहीं हुआ इसलिए उन्होंने क्रोध में आकर भाई बाहुबली के ऊपर सुदर्शन चक्र चला दिया जो कि दिग्विजय के समय किसी के ऊपर नहीं चलाया गया था । पुण्य के प्रताप से चक्ररत्न, बाहुबली कुमार का कुछ भी न बिगाड सका, वह उनकी तीन प्रदक्षिणाएं देकर भरत के पास वापिस लौट आया । जब भरत ने चक्र चलाया था तब सब ओरसे धिक् धिक की आवाज आ रही थी । बडे भाई भरत का यह तुच्छ व्यवहार देखकर कुमार बाहुबली का मन संसार से एक दम उदास हो गया । उन्होंने सोचा कि मनुष्य राज्य आदिकी लिप्सासे क्या अनुचित काम नहीं कर बैठते ? जिस राज्य के लिये भरत और मैने - इतनी बिडम्बना की है अन्त में उसे छोडकर चला जाना पडेंगा इत्यादि विचार कर उन्होंने अपने - पुत्र महाबली के लिये राज्य- भार सौंपकर जिनदीक्षा लेली । वे एक वर्ष तक खडे खडे ध्यान - लगाये रहे , उनके पैरों में अनेक बन- लताए और सांप लिपट गये थे फिर भी वे ध्यानसे विचलित नहीं हुए । एक वर्षके बाद उन्हें दिव्य ज्ञान प्राप्त हो गया जिस के प्रताप से वे तीनों कालोंकी बात और तीनों लोकोंको एक साथ जानने और देखने लगे थे और अन्त में सबसे पहले मोक्ष धामको गये । इधर जब क्रोध का वेग शान्त हुआ तब भरत भी बाहुबली के बिना बहुत दुःखी हुए । आखिर उपाय हि क्या था ? समस्त पुरवासी और सेनाके साथ लौटकर उन्होंने अयोध्या में प्रवेश किया । अब वे

निष्कण्टक होकर समस्त पृथ्वी का शासन करने लगे । सम्राट भरत ने राज्य रक्षाकेलिये समस्त राजाओं को राज - धर्म , क्षत्रिय धर्म का उपदेश दिया था । जिसके अनुसार प्रवृत्ति करने से राजा और प्रजा सभी लोग सुखी रहते थे । राजा प्रजा की भलाई करनेमें - संकोच नहीं करते थे और प्रजा, राजा की भलाई में प्राण देनेके लिये भी तैयार रहते थे । इस तरह महाराज भरत स्त्रीरत्न सुभद्रा के साथ नाना प्रकार के भोग भोगते हुए सुख से समय बिताते थे ।

एक दिन उन्होंने विचारा कि मैंने जो इतनी अधिक सम्पत्ति इकट्ठी की है , उसका क्या होगा ? बिना दान किये इसकी शोभा नहीं पर दान दिया भी किसे जावे ? मुनिराज तो - संसार से सर्वथा निस्पृह है इसलिये वे तो धन धान्य आदिका दान न ले सकते हैं न उन्हें देने - की आवश्यकता भी है । वे सिर्फ भोजन की इच्छा रखते हैं सो गृहस्थ उनकी इच्छा पूर्ण कर देते हैं । हां गृहस्थ धन-धान्य का दान ले सकते हैं परअब्रती गृहस्थो को - दान देनेसे लाभ ही क्या होगा ? इसलिए अच्छा हो जो प्रजामें से कुछ दान - पात्रों का चुनाव किया जावे जो योग्य हों उन्हें दान देकर इस विशाल सम्पत्ति को सफल बनाया जावे ।

वे लोग दान लेकर आजीविका की चिन्ताओंसे निर्मुक्त हो धर्म का प्रचार करेंगे और पठन -पाठन की प्रवृत्ति करेंगे । यह सोचकर उन्होंने किसी व्रत के दिन प्रजाको राजमन्दिर में - आनेके लिए आमंत्रित किया । राजमन्दिर के रास्ते में हरी-हरी दूब लगवा दी, जब प्रजा के - व्रतधारी मनुष्योंने द्वार पर पहुंच कर वहां हरी दूब देखी तब वे अपने व्रतकी रक्षकेलिए वही पर खडे रह गये । पर जो अब्रती थे वे पैरों से दूबको कुचलते हुए भीतर पहुंच गये । भरत ने व्रती मनुष्यों को जो बाहर खडे हुए थे दूसरों प्रासुक रास्ते से बुलाकर खुब सत्कार किया । उस समय व्रती मनुष्यों को भरत महाराज ने गृहस्थोपयोगी समस्त क्रियाकाण्ड , संस्कार ,आवश्यक कार्य आदिका उपदेश देकर यज्ञोपवीत प्रदान किये और जगत्में उन्हें वर्णोत्तम ब्राह्मण नाम से प्रसिध्द किया । पाठक भूले न होंगे कि पहले भगवान् वृषभदेवने क्षत्रिय वैश्य और शूद्र-वर्ण की स्थापना की थी , और अब भरत ने वर्णोत्तम ब्राह्मण वर्णकी स्थापना की है । इस तरह सृष्टि की लौकिक और धार्मिक व्यवस्था के लिए चार वर्णों की स्थापना हुई थी । भरत ने ब्राह्मणोंके लिए अनेक वस्त्राभूषण प्रदान किये और उनकी आजीविका के समुचित प्रबन्ध कर दिये ।

धीरे धीरे ब्राह्मणों की संख्या बढ़ती गई । वे आजीविका आदिकी चिन्ता में निर्मुक्त हो स्वतन्त्र चित्तसे शास्त्रों का अध्ययन करते और जैन धर्म का प्रचार करते थे । वर्ण - व्यवस्था का उल्लंघन न हो , इस बात का सम्राट् बहूत ख्याल रखते थे । उस समय क्षत्रिय प्रजा का पालन करते थे, वैश्य व्यापार के द्वारा सबकी आर्थिक चिन्ता दूर करते शूद्र दूसरे की सेवा करते - और ब्राह्मण पठन-पाठन का प्रचार करते थे । कोई अपन अपने कर्मोंमें व्यतिक्रम नहीं करने पाते थे इसलिए सब लोग सुख शान्ति से जीवन व्यतीत करते थे । एक दिन भरत महाराज ने - रात्रि के पिछले -पहर में कुछ अद्भुत स्वप्न देखे जिससे उनके चित्तमें बहुत कुछ उद्वेग पैदा हुआ । स्वप्नों का निश्चित फल जानने के लिए

उन्होंने किसी औरसे नहीं पूछा, वे सीधे जगत्पूज्य भगवान आदिनाथ के समवसरण में पहुंचे । वहां उन्होंने गन्धकुटीमें बिराजमान जगद्गुरु को - भाक्ति पूर्वक नमस्कार किया और जल चन्दन आदि से उनकी पूजा की : पूजा कर चुकने के- बाद भरत ने पूछा हे त्रिभुवनगुरो ! धर्म-मार्ग के प्रवर्तक आपके रहते हुए भी मौने अपनी मन्दता से एक ब्राह्मण वर्णकी सृष्टि की है उससे कुछ हानि तो न होगी ? यह कहकर रात्रिके- देखे हुए स्वप्न भी कह सुनाये और उनका फल जानने की इच्छा प्रकट की । भरत का प्रश्न समाप्त होते ही भगवान ने दिव्य बाणीमें कहा

पूजा द्विजानां शृणु वस्त ! साध्वी, कालान्तरे प्रत्युत दोष हेतु : ।

काले कलौजाति मदादिमेते, बैरं करिष्यन्ति यत : सुमार्गे ॥

- अर्हदास

वत्स ! यद्यपि इस समय ब्राह्मणों की पूजा श्रेयस्करी है उससे कोई हानि नहीं है तथापि कालान्तरमें वह रोष का कारण होगी । यही लोग कलिकालमें समीचीन मार्ग के विषय में जाति आदिके अहंकारसे विद्वेष करेंगे । यह सुनकर भरतने कहा -यदि ऐसा है तब मुझे इन्हें विध्वंस ' नष्ट करनेमें क्या देर लगेगी ? मैं शीघ्र ही ब्राह्मण वर्ण की सृष्टि मिटा दूंगा । तब उन्होंने कहा नहीं । धर्म सृष्टि का अतिक्रम करना उचित नहीं है , इसकेबाद उन्होंने जो स्वप्नों का फल बतलाया था वह यह है - अये वत्स ! पृथ्वीतलमें बिहार करनेके बाद पर्वत की शिखरोंपर बैठे हुए तेईस सिंहों के देखने का फल यह है कि प्रारम्भसे तेईस तीर्थकरों के समय में दुर्णय की उत्पत्ति नहीं होगी, पर जो तुमने दूसरे स्वप्नमें एक सिंह-बालकके पास हाथी खडा देखा है उससे मालूम होता है कि अन्तिम तीर्थकर महावीर तीर्थमें कुलिडी साधु अनेक दुर्णय प्रकट करेंगे । हाथीके भारसे जिसकी पीठ भग्न हो गई है ऐसे घोड़ेके देखने - से यह प्रकट होता है कि दुःषम पंचम कालके साधु तपकार धारण नहीं कर सकेंगे । सुखे पत्ते खाते हुये बकरों का देखना बतलाता है कि कलिकालमें - मनुष्य सदाचार को छोडकर दुराचारी हो जावेंगे ।

मन्दोन्मत्त हाथी की पीठपर बैठा हुआ बन्दर बतलाता है कि दुःषम काल में - अकुलीन मनुष्य राज्य शासन करेंगे । कौओंके द्वारा उल्लूओंका मारा बतलाता है कि कालान्तर में मनुष्य सदा सुखद जैन धर्म को छोडकर दूसरे मतों का करने लगेंगे । नृत्य करते हुए भुतों के देखने से मालूम होता कि आगे चलकर प्रजा के लोग व्यन्तरीको ही देव समझकर पूजा करेंगे ।

जिसका मध्यभाग सूखा हुआ है और आस पास पानी भरा हुआ है ऐसे तालाब देखने -का फल यह है कि कालान्तर मैं मध्य खण्डमें सद्धर्म का अभाव हो जावेगा और वह आस पास में स्थिर रहेगा । धूलिधूसर रत्नों के देखने से ज्ञात होता है कि दुषम काल मे मुनियों को ऋद्धियां उत्पन्न नहीं होगी । कुन्ते का सत्कार देखना बतलाता है कि आगे चलकर ब्रतरहित ब्राह्मण पूजे जावेंगे घुमते हूये जवान बैल के देखने का फल यह है कि मनुष्य जवानी मेही मुनिव्रत धारण करेंगे । चन्द्रमा के परिवेष

देखने से मालूम होता है कि कालिकाल के मुनियों को अवधिज्ञान प्राप्त नहीं होगा । परस्पर मिलकर जाते हुये बैलो को देखने से प्रकट होता है कि साधु कभी अकेले विहार नहीं कर सकेंगे ।

सूर्य का मेघों में छिप जाना बतलाता है कि पंचमकाल में प्रायः केवलज्ञान उत्पन्न नहीं होगा । सूखा वृक्ष देखने से पुरुष और स्त्रियां चरित्र हो जावेंगी यह प्रकट होता है । और वृक्षों के जीर्ण पके हुये पत्तों के देखने से बिदित होता है कि पंचम युग में महौषधियां तथा रस वगैरह नष्ट हो जावेंगे ।

इस तरह उन्होंने स्वप्नों का फल बतलाकर भरत आदि समस्त श्रोताओं को विघ्न शान्ति के लिये धर्म में दृढ रहने का उपदेश दिया । देवाधिदेव वृषभनाथ की अमृत वाणी से सन्तुष्ट होकर भरत महाराज ने विघ्न शान्ति के लिये उनकी पूजा की स्तुति की , और अन्तमें नमस्कार कर अयोध्यापुरी की ओर प्रस्थान किया ।

भरत के मरीचि , अर्ककीर्ति आदि पुत्र उत्पन्न हुए थे । ग्रन्थ विस्तार के भय से उन सबका यहां उपाख्यान नहीं किया जाता है । एक दिन मेघेश्वर जयकुमार जो कि भरत चक्रवर्ती का सेनापति था उसने संसार के विरक्त होकर जिन दीक्षा ले ली और तपकी विशुद्धि से मनःपर्यय ज्ञान प्राप्त करके जिनेन्द्र वृषभदेव का गणधर बन गया । केवलज्ञान से शोभायमान त्रिभुवन जिनेन्द्र धर्म- क्षेत्रों में धर्म का बीज बोकर और उपदेशामृतकी वृष्टि से उसे सींचकर पौष मास के पूर्णमांसी के दिन चिरपरिचित कैलाश पर्वतपर पहुंचे । वहां उन्होंने योगनिरोध किया , समवसरण में बैठना छोड़ दिया, उपदेश देना बन्द कर दिया । सिर्फ मेरु की तरह अचल होकर आत्म-ध्याममें लीन हो गये । जिस दिन वृषभदेवने योग निरोध किया था उसी दिन भरतने - स्वप्नमे लोक के अन्त तक लम्बायमान मन्दराचल देखा । युवराजने , भवरोग, नष्ट करने के बाद महौषधिको स्वर्ग जानेके लिये उद्यत देखा गृहपतिने नर समुह को मनवांछित फल देकर स्वर्ग जाने के लिये तैयार हुए कल्य वृक्षको देखा । प्रधान मन्त्रीने याचको के लिये अनेक रत्न देकर आगे जाते हुए रत्नद्वीप को देखा, और सुभद्रा देवीने महादेवी, यशस्वती और सुनन्दा के साथ शोक करती हुई इन्द्राणी को देखा । जब भरतने पुरोहित से स्वप्नों का फल पूछा तब उसने - कहा ये सब स्वप्न देवाधिदेव वृषभनाथ के निर्वाण-प्रस्थान को बतला रहे है । इतनेमें ही आज्ञाकारी आनन्द ने आकर भरतसे भगवान् के योग-निरोध का सब समाचार कह सुनाया । चक्रवर्ती भरत उसी समय समस्त परिवारके साथ कैलाश गिरिपर पहुंचे और चौदह दिन तक त्रिलोकीनाथ की पूजा करते रहे । त्रिलोकीनाथ धीरे-धीरे अपने मनको वाहा जगतसे हटाकर अन्तरात्मामें लगाते जाते थे । उस समय में कैलाश के शिखरपर पूर्व दिशा की ओर पल्यंकासनसे - बैठे हुए थे । उनके शरीर में एक रोमांच भी हिलता हुआ नजर नहीं आता था । सब देव विद्याधर मनुष्य वगैरह हाथ जोड़े हुए चुपचाप बैठे थे । वह दृश्य न जाने कितना शान्तिमय होगा ? योग - निरोध किये हुए जब तेरह दिन समाप्त हो गये और माघ कृष्णा चतुर्दशी का मंजुल प्रभात आया, प्राची दिशामें लालिमा फैल गई तब उन्होंने शुक्लध्यान रूप खड्गके प्रथम प्रहारसे बहत्तर कर्म-शत्रुओं को धराशायी बना दिया । अब आप तेरहवें गणस्थान से चौदहवें गुणस्थानमें पहुंच

गये । वहां पहुंचकर वे अयोग केवली कहलाने लगे । उस समय उनके वचन योग था, न मनोयोग था । उनके इ आन्तरिक परिवर्तन का वाहा लोगोंको क्या पता लगता ? वे तो उन्हें पूर्वकी भांति ही ध्यानारूढ देखते रहे । चौदहवें गुणस्थान में पहुंचे हुए उन्हें बहुत ही थोडाँ अ इ उ ऋ लृ इन पांच लघु अक्षरों के उच्चारण में जितना समय लगता है उतना समय हुआ था कि उन्होंने शुक्ल ध्यान रूपी तीक्ष्ण तलवार के दूसरे प्रहार से बाकी बचे हुए तेरह कर्म-शत्रुओं को भी धराशायी बना दिया । अब आप सर्वदा के लिये सर्वथा स्वतन्त्र हो गये । उनकी आत्मा तत्क्षण में लोक शिखर पर पहुंच गई और शरीर देखते देखते विलीन हो गया । सिर्फ नख और केश बाकी बचे थे । उसी समय जयध्वनि करते हुए आकाश से समस्त देव आये । उन्होंने मायासे भगवान का दूसरा शरीर निर्माण कर उसे चन्दन , कपूर , लवंग , घृत आदि से बने हुए कुण्ड में विराजमान किया , फिर अग्निकुमार देवने अपने मुकुट के - स्पर्शसे उस में अग्निज्वाला प्रज्वलित की । उसी समय कुछ गणधर और सामान्य केवली भी मोक्ष पधारें थे सो देवोंने भगवत्कुण्ड से दक्षिण की ओर गणधर कुण्ड और केवली कुण्ड बनाकर उनमें उनका अग्नि -संस्कार किया था । आज पवित्र आत्माएं संसार बन्धन से मुक्त हो गई । यह सुनकर किस मुमुक्षु प्राणी को अनन्त अनन्त न हुआ होगा ? अग्नि शान्त होने पर समस्त देवोंने तीनों कुण्डों से भस्म निकाल कर अपने ललाट, कण्ठ, भुज शिखर हृदयमें लगा ली । उस समय समस्त देव आनन्द से उन्मत्त हो रहे थे । उन्होंने गा बजाकर मधुर संगीत में मुक्त आत्माओं की स्तुति की , इन्द्रने आनन्दसे आनन्द नाटक किया और सुरगुरु बृहस्पति ने संसार का स्वरूप बतलाया । इस तरह भगवान का निर्वाण महोत्सव मनाकर देव लोग अपनी अपनी जगह पर चले गये । पिताके वियोगसे भरतको दुःखी देखकर वृषभसेन गणधर ने उन्हें अपने उपदेशामृत से शान्त किया जिससे भरतजी शोकरहित हो गणधर महाराज को नमस्कार कर अयोध्यापुरी लौट आये ।

नाभिराज , मरुदेवी , यशस्वती, ब्राह्मी ,सुन्दरी आदिके जीव अपनी अपनी तपस्या के अनुसार स्वर्ग में देव हुए । पिताके निर्वाण के बाद चक्रवर्ती भरत कुछ समय तक राज्य शासन करते तो अवश्य रहे , पर भीतरसे बिलकुल उदास रहते थे । भगवान वृषभदेव की निर्वाणभूमि होनेके कारण कैलाशगिरि उस दिनसे सिद्धक्षेत्र नाम से प्रसिद्ध हो गया । भरतने - वहांपर चौबीस तीर्थकरों के सुन्दर मन्दिर बनवा कर उनमें मणिमयी प्रतिमाएं विराजमान करायी थी ।

एक दिन वे दर्पण में मुंह देख रहे थे कि उनकी दृष्टि सफेद बालों पर पड़ी । दृष्टि पडतें ही उनके हृदय में वैराग्य सागर लहरा पडा । उन्होंने तपको ही सच्चे कल्याण का मार्ग समझकर अर्ककीर्ति के लिये राज्य दे दिया और स्वयं गणीन्द्र वृषभसेन के पास जाकर दीक्षा ले ली । भरत का हृदय इतना आधिक निर्मल था कि उन्हें दीक्षा लेनेके कुछ समय बाद ही केवलज्ञान प्राप्त हो गया । केवली भरतने भी जगह जगह घुमकर धर्मका प्रचार किया और अन्तमें कर्म-शत्रुओं को नष्टकर आत्म स्वातन्त्र्य मोक्ष प्राप्त किया । वृषभसेन, अनन्त विजय, अनन्ततीर्थ, अच्युत, वीर, वरवीर, श्रेयांस , जयकुमार

आदि गणधरोंने भी काल क्रम से मोक्ष लाभ किया । इस तरह प्रथम तीर्थकर भगवान् वृषभनाथ का पवित्र चरित्र पूर्ण हुआ । इनके बैलका चिन्ह था ।

भगवान् अजितनाथ

स ब्रह्मनिष्ठः सममित्र शत्रुर्विद्याविनिर्वान्तकषायदोषः ।

लब्धात्मलक्ष्मीरजितोजितात्माजिनःश्रियंमेभगवानविधत्ताम् ॥

वे आत्मस्वरूपमें लीन, शत्रु और मित्रों को समान रूपसे देखने वाले, सम्यकज्ञान से कषायरूपी शत्रुओं को हटाने वाले, आत्मीय विभूति को प्राप्त हुए और अजित हैं आत्माजिनकी ऐसे भगवान् अजितजिनेन्द्रमुझे कैवल्यलक्ष्मीसे युक्त करें ।

१- पूर्वभवपरिचय

इसी जम्बूद्वीपके पूर्वविदेहक्षेत्रमें सीतानदीके दक्षिणकिनारे पर एक मत्स्यनामका देश है । उसमें धनधान्यसे सम्पन्न एक सुसीमानगर है । वहाँ किसी समय विमलवाहन नामका राजा राज्य करता था । राजा विमलवाहन समस्त गुणोंसे विभूषित था । वह उत्साह, मन्त्र और प्रभाव इन तीन शाक्तियोंसे हमेशा न्यायपूर्वक प्रजाका पालन करता था । राज्यकार्य करते हुए भी वह कभी आत्मधर्म-संयम, सामायिक वगैरहको नहीं भूलता था । वह बहुत ही मन्द-कषायी था । एक दिन राजा विमलको कुछ कारण पाकर वैराग उत्पन्न हो गया । विरक्त होकर वह सोचने लगा - संसारके भीतर कोई भी पदार्थ स्थिर नहीं है । यह मेरी आत्मा भी एक दिन इस शरीरको छोड़कर चली जावेगी, क्योंकि आत्मा और शरीरका सम्बन्ध तभीतक रहता है जबतक कि आयु शेष रहती है । यह आयु भी धीरे धीरे घटती जा रही है इसलिए आयु पूर्ण होनेके पहले ही आत्मकल्याणकी ओर प्रवृत्ति करनी चाहिये । इस प्रकार विचार कर वनमें गया और वहाँ किन्हीं दिग्म्बरयतिके पास दीक्षित हो गया । उसके साथ और भी बहुतसे राजा दीक्षित हुए थे । गुरुके चरणोंके समीप रहकर उसने खूब विद्याध्ययन किया जिससे उसे ग्यारह अंगका ज्ञान हो गया था । उसी समय उसने दर्शनविशुद्धिआदि सोलह भावनाओंका चिन्तवन भी किया था जिससे उनके तीर्थकर नामक महापुण्यप्रकृतिका बन्ध हो गया था । विमलवाहन आयुके अन्तमें संन्यासपूर्वक मरकर विजयविमानमें अहमिन्द्रहुआ । वहाँ उसकी आयु तेतीस सागरकी थी । उसका जैसा शरीर शुक्ल था वैसा हृदय भी शुक्ल था । उसे वहाँ संकल्पमात्रसे ही सब पदार्थ प्राप्त हो जाते थे । पहलेकी वासनासे वहाँभी उसका चित्त विषयोंसे उदासीन रहता था । वह यहाँ विषयानन्दको छोड़कर आत्मानन्दमें ही लीन रहता था । तेतीस हजार वर्ष बीत जानेपर उसे एक बार आहारकी इच्छा होती थी । अहमिन्द्रविमलवाहनके विजयविमानमें पहुँचते ही अवधिज्ञान हो गया था । जिससे वह त्रसनाडीके भीतरके परोक्षपदार्थोंको प्रत्यक्षकी तरह स्पष्ट जान लेता था । यही अहमिन्द्र आगे चलकर भगवान् अजितनाथ होंगे ।

## (2) वर्तमान परिचय

इसी भारत वसुन्धरा पर अत्यन्त शोभायमान एक साकेतपुरी ( अयोध्यापुरी ) है उसमें किसी समय इक्ष्वाकु वंशीय काश्यप गोत्री राजा जितशत्रु राज्या करते थे उनकी महारानी का नाम विजयसेना था ऊपर जिस अहमिन्द्र का कथन कर आये हैं उसकी आयु जब वहां पर छः माह बाकी रह गई तब यहां रोज जितशत्रु के घरपर प्रतिदिन तीन-तीन बार साढ़े तीन करोड रत्नों की वर्षा होने लगी वे रत्न इंद्र की आज्ञा पाकर कुबेर बरसाता था यह अतिशय देखकर जितशत्रु बहुती ही आनन्दित होते थे इसके बाद जेठ महीने की अमावस केदि पिछलेभाग में जब कि रोहिणी नक्षत्र का उदय था, ब्रम्ह मुहूर्त केकुछ समय पहले महारानी विजयसेनाने ऐरावत आदि सोलह स्वप्न देखे और उनके बाद अपने मुंह में एक मत्त हस्तीकोप्रवेश करते हुए देखा सवेरा होते ही महारानी स्वप्नों का फल जितशत्रुसे पूछा सो उन्होंनेदेशविदेश - रूप लोचनसे देखकर कहा कि हे देवी ! तुम्हारे कोई तीर्थकार पुत्र होगा उसीकेपुण्य बलके कारण छह माह पहले से ये प्रतिदिन रत्न वरस रहे हैं और आज अपने सोलह स्वप्न देखें हैं स्वप्नों का फल सुनकर विजयसेना आनन्द से फूली न समाती थी जिस समय इसने-स्वप्नमें मुंह में प्रवेश करते हुए गन्ध हस्तीको देखा था उसी समय अहमिन्द्र विमलवाहन का जीव विजय विमान से चयकर उसके गर्भ में अवतीर्ण हुआ उस दिन देवोंने आकर साकेतपुरी में खूब उत्सव किया था धीरे-धीरे गर्भ पुष्ट होत गया, महाराज जितशत्रु के घर वह रत्नोंकी धारा गर्भकेदिनों में भी पहले तरह वरसती रहती थी भावी पुत्र केअनुपम अतिशय का ख्याल कर महाराज को बहुती आनन्द होता था जब गर्भका समय व्यतीत हो गया तब माघ शुक्ल दशमी केदिन महारानी विजयसेना ने पुत्र रत्नका प्रवस किया वह पुत्र जन्मसे ही मति, श्रुति, और अवधि, इन तीन ज्ञानोंसे शोभायमान था उसकी उत्पत्ती केसमय अनेक शुभ शकुन हुऐ थे उसी समय देवोंने सुमेरु पर्वत पर ले जाकर उसका जन्माभिषेक किया और अजित नाम रखा भगवान अजितनाथ धीरे-धीरे बढ़ने लगे वे अपनी बाल सुलभ चेष्टाओंसे माता-पिता तथा बन्धु वर्ग आदिका मन प्रमुदित करते थे आपस के खेल-कूदमें भी जब इनके भाई इनसे पराजित होते जाते थे तब वे इनका अजित नाम सार्थक समझने लगते थे भगवान आदिनाथ को मुक्त हुए पचास लाख कारोंड सागर बीत जानेपर इनका जन्म हुआ था उक्त अन्तरालमें लोगों केहृदय में धर्म केप्रति जो कुछ शिथिलता - सी हो गयी थी इन्होंने-उसे दूर कर फिरसे धर्म का प्रद्योत किया था इनकेशरीर रंग तपे हुए सुवर्णकी नाई था ये बहुती ही वीर और क्रीडा-चतुर पुरुष थे अनेक तरह क्रीडा करते हुए जब इनके अठराह लाख पूर्व बीत गये तब इन्होंने युवावस्था में पदार्पण किया उस समय उनके शरीर का शोभा बड़ी ही विचित्र हो गई थी महाराज जितशत्रु ने अनेक सुन्दरी कन्याओं के साथ विवाह कर दिया और किसी शूभमुहूर्त में उन्हें राज्य देकर आप धर्म सेवन करते हुए सद्गति को प्राप्त हुए भगवान् अजितनाथ ने राज्य पाकर प्रजा इस तरह शासन किया कि उनके गुणोंसे-मुग्ध होकर वह महाराज

जितशत्रु का स्मरण भी भूल गईं इन्होंने समयोपयगी अनेक सुधार करते हुए त्रेपन लाख पूर्व तक राज्य-लक्ष्मी का भोग किया अर्थात् राज्य किया एक दिन भगवान् अजितनाथ महल की छतपर बैठे हुए थे की उन्होंने अचानक चमकती हुई बिजली को नष्ट होते देखा उसे देखकर उनका हृदय विषायों से विरक्त हो गया वे सोचने लगे कि संसार के हर एक पदार्थ इसी बिजलीकी तरह क्षणभंगूर है मेरा यह सुन्दर शरीर और यह मनुष्य पर्याय भी एक दिन इसी तरह नष्ट हो जावेगी जिस लिए मेरा जन्म हुआ था उसके लिए तो मैंने अभी तक कुछ भी नहीं किया खेद है की मैंने सामान्य अज्ञ मनुष्यों की तरह अपनी आयु का बहुभाग व्यर्थ ही खो दिया अब आजसे मैं सर्वथा विरक्त होकर दिगम्बर मुद्रों को धारण कर बन में रहूंगा क्योंकि इन रंग-बिरंगे महलों में रहने से चित्त को शान्ति नहीं मिल सकती इधर इनके चित्तमें ऐसा विचार हो रहा था उधर लौकान्तिक देवों के आसन कांपने लगे थे आसन कांपने से उन्हें निश्चय हो गया था की भगवान् अजितनाथ का चित्त वैराग्यकी ओर बढ़ रहा है निश्चयानुसार वे शीघ्र ही इनके पास आये और तरह तरहके सुभाषितों से इनकी वैराग्या-धाराको अत्याधिक प्रवर्द्धित कर अपने - अपने स्थान पर चले गये उसी समय तपःकल्याण उत्सव मनाने के लिये वहां समस्त देव आ उपस्थित हुए सबसे पहले भगवान् ने अभिषेक पूर्वक अजितसेन नामके पुत्र के लिये राज्य का भार सौंपा और फिर अनाकुल हो वन में जाने के लिये तैयार हो गये देवोंने उनकाभी तीर्थजल से अभिषेक किया और तरह तरहके मनोहर आभूषण पहिनाये अवश्य पर उनकी उस रागवर्द्धक क्रिया में भगवान् को कुछ भी आनन्द नहीं मिला वे सुप्रभा नामक पालकी पर सवार हो गये पालकीको मनुष्य, विद्याधर और देवलोग क्रम क्रमसे अयोध्या के सहेतुक बन में ले गये वहां वे सप्तपर्ण वृक्ष के नीचे एक सुन्दर शिलापर पालकीसे उतरे जिस शिलापर वे उतरे थे उसपर देवांगनाओंने रत्नों के चूर्णसे कई तरहके चौक पूरे थे सप्तपर्ण वृक्ष के नीचे विराजमान द्वितीय जिनेन्द्र अजितनाथ ने पहले सबकी ओर विरक्त दृष्टिसे देखकर दीक्षित होनेके लिये सम्मति ली फिर पूर्वकी ओर मुंह कर नमः सिध्देभ्यः कहते हुए वस्त्राभूषण उतार कर फेंक दिये और पंच मुष्टियों से कश उखाड डाले इन्द्रने केशोंको उठाकर रत्नों के पिटारमें रख लिया और उत्सव समाप्त होने के बाद क्षीरसागरमें क्षेपण कर आया दिक्षा लेते समय उन्होंने षष्ठोपवास धारण किया था जिस दिन भगवान् अजितनाथ ने दीक्षा धारण की थी उस दिन माघ मासके शुक्ल पक्षकी नवमी थी और रोहिणी नक्षत्र का उदय था दिक्षा सायंकाल के समय ली थी उनके साथमें एक हजार राजाओं ने दीक्षा धारण की थी उस समय भगवान् अजित की विशुद्धता इतनी अधिक बढ़ गई थी कि उन्हें दिक्षा लेते समय ही मनःपर्यय ज्ञान प्राप्त हो गया था जब प्रथमयोग समाप्त हुआ तब वे आहार के लिये अयोध्यापुरी में आये वहां ब्रम्हा नामक श्रेष्ठीने- उन्हें उत्तम आहार दिया जिससे उसके घर पर देवोंन पंचाश्चर्य प्रकट किये अजितनाथ जी आहार लेकर चुपाचाप वन को चले गये और वहां आत्म-ध्यानमें लीन हो गये योग पूरा होने पर वे आहारके लिये नगरों में जाते और आहार लेकर पुनः वनमें लौट आते थे योग पूरा होने पर वर्ष तक उन्होंने कठिन तपस्याएं की, जिन के फलस्वरूप उन्हें पौष मास



के शुक्ल पक्ष की एकादशी के दिन सायंकाल के समय रोहिणी नक्षत्र के उदय में केवलज्ञान प्राप्त हो गया अब भगवान् अजित अपने दिव्य ज्ञान ( केवलज्ञानसे ) से तीनों के सब चराचर पदार्थों को एक साथ जानने लगे देवों आकर ज्ञान-कल्याणक उत्सव मनाया इन्द्र की आज्ञा पाकर धनपति कुबेरने विशाल सम वसरण की रचना की उस में गन्धकुटी के मध्य भाग में अजित भगवान् विराजमान हुए जब वह सभा देव मनुष्य तिर्यच आदिसे खचाखच भर गई तब उन्होंने अपनी दिव्य ध्वनिके द्वारा सबको धर्मोपदेश दिया, जिससे प्रभावित होकर लोग आत्मधर्म में पुनः दृढ़ हो गये अजित केवली ने देश-विदेश में घुमकर धर्मका खूब प्रचार किया था उनके सिंहासेन आदि नब्बे गणधर थे, तीन हजार सात सौ पचास पूर्वधारी, इक्कीस हजार छह सौ शिक्षक, नौ हजार चार सौ अवधिज्ञानी, बीस हजार केवलज्ञानी, बीस हजार चारसौ विक्रिया ऋद्धिवाले, बारह हजार चार सौ पचास मनःपर्यय ज्ञानी और बारह हजार चार सौ अनुत्तर वादी थे इस तरह सब मिलाकर एक लाख तपस्वी थे प्रकुब्जा आदि तीन लाख बीस हजार आर्यिकाएं तीन लाख श्रावक, पांच लाख श्राविकाएं और असंख्य देव-देवियां थीं और असंख्यात तिर्यच थे समवसरण भूमि में वेहमेश आठ प्रातिहार्योंसे युक्त रहते थे अन्त में उनकी आयु एक महिने की शेष रह गयी तब वे श्रीसम्मद शिखर पर पहुंचे और वहां एक माहका योग धारणकर मौन पूर्वक खड़े हो गये उस समय उन्होंने प्रति समय शुक्लध्यान के प्रतापसे कर्मोंकी असंख्यात गुणी निर्जरा की, दण्ड, प्रतर आदि समुद्घातसे अन्य कर्मों की स्थिति बराबर की और फिर अन्तिम व्युपरत, क्रिया -निवर्ति शुक्लध्यान से समस्त अघतिया कर्मोंका क्षयकर चैत्र शुक्ल पंचमी के दिन रोहिणी नक्षत्र के उदय में प्रातःकाल के समय मुक्ति -धाम को प्राप्त किया वे हमेशा केलिये सुखी स्वतंत्र, हो गये भगवान् अजितनाथ की कुल आयु ७२ बहत्तर लाख पूर्व की थी और शरीरकी ऊंचाई चार सौ पचास धनुषकी थी इनके समयमें सगर नाम का द्वितीय चक्रवर्ती हुआ था उसने भी आदि चक्रधर भरत की तरह भरत क्षेत्र के छह खण्डों का विजय किया था। अप्रासंगिक होने से - यहां उसका विशेष चरित्र नहीं लिखा गया है भगवान् अजितनाथ के हाथी का चिन्ह था

भगवान् शंभुनाथ

त्वं शंभुः संभवतर्षरोगैः संतप्यमानस्य जनस्य लोके

आसी रिहा कार्स्मिक एव वैद्यो वैद्यो यथा नाथ ! रुजां प्रशान्त्यै

स्वामी समन्दभद्र

हे नाथ ! जिस तरह रोगोंकी शान्ति केलिये कोई वैद्य होता है उसी तरह आप शंभुनाथ भी उत्पन्न हुए

तृष्णा रोगसे दुखी होने वाले मुनष्य की रोग शान्ति केलिये अकस्मात् प्राप्त हुए वैद्य थे

(१) पूर्वभव परिचय

जम्बू द्विप के पूर्व विदेह क्षेत्र में सीता नदी के उत्तर तटपर एक कच्छ नामका देश है उस में एक क्षेमपूर नामका नगर है क्षेमपुरा का नाम जैसा था उसमें वैसे ही गुण थे अर्थात् उसमें - हमेशा क्षेम-मंगलों का ही निवास रहता था वहांके राजा नाम विमलवाहन था विमलवाहन ने अपने बाहुबल से

समस्त विरोधी राजाओं को वश में कर लिया था शरद ऋतुके इन्दुकी तरह उसकी निर्मल किर्ती सब ओर फैली हुई थी वह जो भी कार्य करता था वह मन्त्रियों की सलाह से ही करता था इसलिये उसके समस्त कार्य सुदृढ़ हुआ करते थे

एक दिन राजा विमलवाहन कि सी कारणवश संसार से विरक्त हो गये जिससे उसे पांचों इन्द्रियों के विषय भोग काले भुजङ्गकी तरह दुखदायी मालूम होने लगे वह सोचने लगा कि यमराज किसी छोटे बड़े का लिहाज नहीं करता अच्छेसे अच्छे और दीन से दीन मनुष्य इसकी कराल दंष्ट्रातल के नीचे दले जाते हैं जब ऐसा है तब क्या मुझे छोड़ देगा ? इसलिये जब तक मृत्यु निकट नहीं आती तबतक तपस्या आदि से आत्म-हित कि ओर प्रवृत्ति करनी चाहिये ऐसा विचारकर वह विमलकीर्ती नामक औरस-पुत्र के लिये राज्य देकर स्वयंप्रभा जिनेन्द्र के पास दीक्षित हो गया उनके समीपमें रहकर उसने कठिन कठिन तपस्याओंसे आत्म शुद्धि की और निरन्तर शास्त्रों का अध्ययन करते करते ग्यारह अङ्कतक का ज्ञान प्राप्त कर लिया मुनिराज विमलवाहन यही सोचा करते थे कि इन दुखी प्राणियों का संसार-सागरसे कैसे उध्दार हो सकेगा ? यदि मैं इनकेहित-साधन में कृतकार्य हो सका तो अपनेको धन्य समझूंगा इसी समय उन्होंने दर्शन विशुद्ध आदि सोलह भावनाओं का चिन्तवन किया जिससे उन्हें तीर्थकार नामक पुण्य प्रकृति का बन्ध हो गया अन्त में समाधि पूर्वक शरीर त्याग कर पहले ग्रैवेयक के सुदर्शन नामक विमान में अहमिन्द्र हुए वहा उनकी आयु तेईस सागर प्रमाण थी, शरीर की ऊंचाई साठ अंगुल थी, और रंग धवल था वे वहां तेईस पक्ष में श्वास लेते थे और तेईस हजार वर्ष बाद मानसिक आहार करते थे वे स्त्री संसर्ग से सदा रहित थे उनकेजन्मसे ही अवधिनज्ञान था, और शरीर में अनेक तरह की ऋद्धियां थीं इस तरह वे वहां आनन्द से समय बिताने लगे यही अहमिन्द्र आगे चलकर भगवान शंभवनाथ होंगे

## ( २ ) वर्तमान परिचय

जम्बू द्वीप केभरत क्षेत्र में एक श्रावस्ती नामकी नगरी है उस नगरी की रचना बहुत ही मनोहर थी, वहां गगनचुम्बी भवन थे, जिनपर अनेक रङ्गोकी पताकाएं फहरा थीं जगह जगह पर अने सुन्दर वापिकाएं थीं उन वीपिकाओं केतटोंपर मराल बाल-क्रीडा किया करते थे उनकेचारो ओर अगाध जलसे भरी हुई परिखा थी और उसकेबाद ऊंची शिखरों से मेघोंको छूनेवाला प्राकार कोट था जिस समय की यह कथा है उस समय दृढरथ नाम केराजा राज्य करते थे वे अत्यन्त प्रतापी, धर्मात्मा, सौम्य और साधु स्वभाव वाले व्यक्ति थे उनका जन्म इत्वाकु वंश और काश्यप गोत्र में हुआ था उनकी महाराणी का नाम सुषेणा था उस समय वहां महारानी सुषेणाके समान सुन्दर स्त्री दूसरी नहीं थी वह अपने रू पसे देवाङ्गनाओ को भी तिरस्कृत करती थी तब नर, देवियों की बात ही क्या थी ? दोनों दम्पति सुख पूर्वक अपना समय बिताते थे उन्हें किसी प्रकार की चिन्ता नहीं थी ऊपर जिस अहमिन्द्र का कथन कर आये हैं उसकी वहां की आयु जब सिर्फ छह माह की बाकी रह गई तबसे राजा के घरपर प्रतिदिन असंख्य रत्नों की वर्षा होने लगी रत्न वर्षाकेसिवाय और भी अनेक शुभ शकुन प्रकट होने लगे थे जिससे राजदम्पति आनन्द से फूले न समाते थे एक दिन रात्रि केपिछले पहरमें महारानी सुषेणा ने सोते समय ऐरावत हाथी

को आदि लेकर सोलह स्वप्न देखे और स्वप्न देखने बाद मुंह में प्रवेश करते हुए एक गन्ध-सिन्दुर मस्त हाथी को देखा सवेरा होते ही उसने पतिदेव से पुछा राजा दृढरथ ने अविधज्ञान से- विचार कर कहा है कि आज तुम्हारे गर्भ में तीर्थकर पुत्रने अवतार लिया है पृथिवीतल में तीर्थकर के जैसा पुण्य किसका नहीं होता है देखो न ! वह तुम्हारे गर्भ में आया भी नहीं था कि छह माह पहलेसे प्रतिदिन असंख्य रत्नराशि बरस रही है कुबेर ने इस नगरीको कितना सुन्दर बना दिया है यहाँ की प्रत्येक वस्तु कितनी मोहक हो गई है कि उसे देखते - जी नहीं अघाता यहाँ राजा, रानीको स्वप्नों का फल बतला रहे थे वहाँ भावी पुत्रके पुण्य प्रताप से देवोंके अचल आसन भी हिल गये जिसेस समस्त देव तीर्थकर का गर्भावतार समज कर उत्सव मनानेके लिये श्रावस्ती आये और क्रम-क्रमसे राजा मन्दिर में पहुँचकर उन्होंने राजा-रानी की खूब स्तुती कि तथा उन्हें स्वर्गीय वस्त्राभूषणोंसे खूब सत्कृत किया गर्भावतार का उत्सव मनाकर देव अपने अपने स्थानोंपर वापिस चले गये और कुछ देवियोंको जिनमाताकी सेवा वहीपर छोड़ गये देवियोंने गर्भ-शुद्धी को आदि लेकर अनेक तरहसे महारानी सुषेणा की सुश्रुषा करनी प्रारम्भ कर दी राजदम्पति भावी पुत्र के उत्कर्ष का ख्याल कर मन ही मन हर्षित होते थे जिस दिन अहमिन्द्र ( भगवान शंभवनाथ के जीव ) ने सुषेणा के गर्भ में अवतार लिया था वह दिन फाल्गुन कुष्ण अष्टमीका दिन था , मृगशिर नक्षत्र का उदय था और प्राची दिशा में बाल सुर्य कुम्कुम रंग वरषा रहा था देव-कुमारियों की सुश्रुषा और विनोद भरी वार्ताओंसे जब रानीके गर्भ के दिन सुखसे बीत गये उन्हें गर्भ सम्बन्धी कोई कष्ट नहीं हुआ तब कार्तिक शुक्ल पौर्णमासी के दिन मृगशिर नक्षत्रमें पुत्र-रत्न उत्पन्न हुआ पुत्र उत्पन्न होते ही आकाश से असंख्य देवसेनाएं-श्रावस्ती नगरीके महाराज दृढरथ के घर पर आईं इन्द्रने इन्द्राणी को भेजकर प्रसूति-ग्रहसे जिनबालक को मंगवाया पुत्र-रत्न की स्वाभाविक सुन्दरता देखकर इन्द्र आनन्दसे फुला न समाता था आई हुई देव-सेनाओंने पहलेके दो तीर्थकरों की तरह मेरु पर्वत पर ले जाकर इनका भी जन्माभिषेक किया और वहाँसे वापिस आकर पुत्र को माता-पिता के लिये सौंप दिया बालक को देखने मात्र से ही शम् अर्थात् सुख शान्ति प्राप्त होती थी इसलिए इन्द्रने उनका शंभवनाथ नाम रखा था शंभवनाथ अपने दिव्य गुणोस संसार में भगवान कहलाते लगे देव और देवेन्द्र जन्म समय के समस्त उत्सव मनाकर अपने अपने स्थानोंपर चले गये भगवान शंभवनाथ दोग्यकी चन्द्रमा की तरह धीरे-धीरे बढ़ने लगे वे अपनी बालसुलभ अनर्गल लीलाओंसे माता,पिता,बन्धु, बान्धवोंको हमेशा हर्षित किया करते थे उनके शरीर का रंग सुवर्णके समान पीला था भगवान अजितनाथ तीस करोड़ वर्ष बाद उनका जन्म हुआ था इस अन्तराल के समय धर्म के विषय में जो कुछ शिथिलता आ गई थी वह इनके उत्पन्न होते ही धीरे-धीरे विनष्ट हो गई इनकी पूर्ण आयु साठ लाख पूर्वकी थी और शरीर की ऊंचाई चार सौ धनुष प्रमाण थी जन्मसे पन्द्रह लाख पूर्व बीत जानेपर इन्हें राज्य-विभूति प्राप्त हुई थी इन्होंने राज्य पाकर अनेक सामायिक सुधार किये थे समयकी प्रगति देखते हुए आपने-राजनीति को पहलेसे बहुत कुछ परिवर्तित औ परिवर्धित किया पिता दृढरथ ने योग्य कुलीने कन्याओं के साथ इनका विवाह

किया था इसलिये वे अनुरुप भार्याओं के साथ सांसारिक सुख भोगते हुए चवालीस पूर्व और चार पूर्व तक राज्य करते रहे एक दिन महल की छत पर बैठे हुए प्रकृति की सुन्दर शोभा देख रहे थे कि उनकी दृष्टी एक सफेद मेघपर पड़ी क्षण एकमें हवाके वेग से वह मेघ विलीन हो गया... कहींका चला गया उसी समय भगवान शंभवनाथ के चरित्र मोहनीयके बन्धन ढीले हो गये थे जिससे वे संसार के विषय भोगों से सहसा विरक्त हो गये वे सोचने लगे संसारकी की सभी वस्तुएं इस मेघ खण्डकी नाई क्षणभंगूर हैं एक दिन मेरा यह दिव्य शरीर नष्ट हो जायेगा मैं जिस स्त्री पुत्रों के मोहमें उलझा हुआ आत्महित की ओ प्रवृत्ती नहीं हो रहा हूं वे एक मेरे साथ न जावेंगे इस तरह भगवान शंभवनाथ उदासीन होकर वस्तु का स्वरूप विचार ही रहे थे कि इतनेमें लौकान्तिक देवोंने आकर उनके विचार का खूब समर्थन किया बारह भावनाओं केद्वारा उनकी वैराग्य -

धारा खूब बढ़ा दिया अपना कार्य समाप्तकर लौकान्तिक देव ब्रह्मालोक को वापिस चले-गये इधर भगवान जिन पुत्र को राज्य देकर बनमें जानेके लिये तैयार हो गये देव और देवेन्द्रोंने आकर इनके तपःकल्याण का उत्सव मनाया तदनन्तर वे सिध्दार्थ नाम की पालकी पर सवार होकर श्रावस्तीके समीपवर्ती सहेतुक बनमें गये वहां उन्होंने माता पिता आदि इष्ट जनोंसे सम्मति लेकर मार्गशीर्ष शुक्ला पौर्णमासी के दिन शालवृक्ष के नीचे एक हजार राजाओंके साथ जिन-दिक्षा ले ली वस्त्रभूषण उतार कर फेंक दिये पंच-मुष्टियोंसे. केश उखाड़ - डाले और उपवास प्रतिज्ञा ले पूर्व की ओर मुंह कर ध्यान धारण कर लिया उस समय का दृश्य बड़ा ही प्रभावक था देखने वाले प्रत्येक प्राणीके हृदय पर वैराग्य की छाप लगती जाती थी उन्हें जो दीक्षा के समय ही मनःपर्यय ज्ञान हो गया था वही उनकी आत्म-विशुद्धि को प्रत्यक्ष करने केलिये प्रबल प्रमाण था

दूसरे दिन उन्होंने आहार केलिये श्रावस्ती नगरी प्रवेश किया उन्होंने देखते ही राजा सुरेन्द्रदत्त ने पड़गाह कर विधि पूर्वक आहार दिया आहार दान से प्रभावित होकर देवोंने सुरेन्द्रदत्त के घर पंचाश्चर्य प्रकट किये थे भगवान शंभवनाथ आहार लेकर ईर्या समितिसे विहार करते हुए पुनः बनको वापिस चले गये और जब तक छद्मस्थ रहे तब तक मौन धारण कर तपस्या करते रहे यद्यपि वे मौन होकर ही उस समय सब जगह विहार करते थे तथापि उनकी सौम्य मूर्तिको देखने के मात्र से ही अनेक भव्य जीव प्रतिबुद्ध हो जाते थे इस तरह चौदह वर्ष तक तपस्या करने केबाद उन्हें कार्तिक कृष्ण चतुर्दशी के दिन मगूशिर नक्षत्र के उदयमें- संध्याके समय केवल ज्ञान प्राप्त हो गया था भवनावासी, व्यन्तर, ज्योतिषी और कल्पवासी इन चारो प्रकार के देवोंने आकर उनके ज्ञान कल्याण का उत्सव किया इन्द्रकी आज्ञासे कुबेरने- समवसरण की रचना की जिसके माध्यम से देव सिंहासन पर अन्तरीक्ष विराजमान होकर उन्होंने- अपनी सुललित दिव्य भाषा में सब को धर्मोपदेश दिया वस्तु का वास्तविक रूप समझाया, संसार स्वरूप बतलाया , चारों गतियोंके दुःख प्रकट किये और उनसे छुटकर पानेके उपाय बताए

उनके उपदेश प्रभावित होकर असंख्य नर नारियोंन व्रत-अनुष्ठान धारण किये थे<sup>६</sup> क्रम-क्रमसे-उन्होंने समस्त आर्य क्षेत्रों में विहार कर सार्व-धर्मका प्रचार किया था<sup>६</sup>

उनके समवसरण में चारु षेण आदि एक सौ पांच गणधर थे, दो हजार एक सौ पचास द्वादशांग के वेत्ता थे, एक लाख उन्तीस हजार तीन सौ शिक्षक थे<sup>६</sup> नौ हजार छह सौ अवधिज्ञानी थे, पन्द्रह हजार केवली थे, बारह हजार एक सौ चार मनःपर्यय ज्ञानी थे, उन्तीस हजार आठ सौ विक्रिया ऋद्धि के धारी थे और बाहर हजार वादी थे<sup>६</sup> जिनसे भरा हुआ समवसरण बहुतही भला मालुम होता था<sup>६</sup> धमार्या आदि तीन लाख बीस हजार आर्यिकाये थी तीन लाख श्रावक, पांच लाख श्राविकाएं, असंख्या देव देवियां और असंख्यात तिर्यच उनके समवसरण की शोभा बढ़ाती थीं<sup>६</sup> भगवान् शंभवनाथ अपने दिव्य उपदेश से इन समस्त प्राणियों- को हित का मार्ग बतलाते थे<sup>६</sup>

अन्त में जब आयु का एक महीना बाकी रह गया तब वे विहार बन्द कर सम्मेद शैल की किसी शिखर पर जा विराजमान हुए और हजार मुनियोंके साथ प्रतिमा योग धारण कर- आत्म-धान्य में लीन हो गये<sup>६</sup> अन्तमें शुक्लध्यान के प्रताप से बाकी बचे हुए चार अघातिया कर्मा का नाश कर चैत्र शुक्ला षष्ठीके दिन सांयकाल के समय मृगशिर नक्षत्र के उदय में- सिद्धिसदन-मोक्ष को प्राप्त हुए<sup>६</sup> देवोंने आकर उनका निर्वाण महोत्सव मनाया<sup>६</sup>

भगवान अभिनन्दननाथ

गुणाभिनन्दादभिनन्दनो भवान दयावधूं शान्ति सखी मशिश्चियत<sup>६</sup>

समाधि तन्त्रस्तदुपोपपत्तये द्वयेन नैर्ग्रन्थ्य गुणेन चायुजत<sup>६</sup>

हे जिनेन्द्र ! सम्यग्दर्शन आदि गुणों का आभिनन्दन करने से अभिनन्दन कहलाने वाले- आपने शान्तिसखी से युक्त दया -रू पी स्त्रीका आश्रय किया था और फिर उस कि सत्कृति केलिये ध्यानैकमान होते हुए आप द्विविध अन्तरंग वहिरंग रूप निष्परिग्रहतासे युक्त हुए थे<sup>६</sup>

( १ ) पूर्वभव परिचय

जम्बू द्वीप के पूर्व विदेह क्षेत्र में सीता नदीके दक्षिण तट पर एक मंगलावती नामक देश है<sup>६</sup> उसमें रत्नसंचय नाम का एक महा मनोहर नगर है<sup>६</sup> उसमें किसी समय महाबल नामका राजा राज्या करता था<sup>६</sup> वह बहुती सम्पत्तिशाली था<sup>६</sup> उसके राज्य में सभी प्रजा सुखी थी, चारों वर्णों के मनुष्य अपने अपने कर्तव्यों का पालन करते थे । महाबल दरअसल में महाबल ही था<sup>६</sup> उसने अपने बाहूबल से समस्त विरोधी राजाओं के दांत खट्टे कर दिये थे<sup>६</sup> वह सन्धि विग्रह, यान, संस्थान आसन और द्वैधीभावानइन छह गुणोंसे विभूषित था<sup>६</sup> उसके साम, दाम, दण्ड और भेद ये चार उपाय कभी निष्फल नहीं होते थे<sup>६</sup> वह उत्साह मन्त्र और प्रभाव इन तीन शक्तियों से युक्त था, जिससे वह हरएक सिद्धियों का पात्र बना हुआ था<sup>६</sup> कहने का मतलब यह है कि उस समय वहां राजा महाबल की बराबरी करने वाला कोई दूसरा राजा नहीं था<sup>६</sup>

अपनी कान्तिसे देवांगनाओं को भी पराजित करने वाली अनेक नर देवियोंके साथ तरह तरहके सुख भोगते हुए महाबल का बहुतसा समय व्यतीत हो गया ।

एक दिन कारण पाकर उसका चित्त विषय वासनाओं से हट गया जिस से वह अपने- धनपाल नामक पुत्र को राज्य देकर विमलवाहन गुरु के पास दीक्षित हो गया अब मुनिराज महाबल के पास रंच मात्र भी परिग्रह नहीं रहा था । वे शरदी, गर्मी वर्षा, क्षुधा, आदि के दुःख समता भावोंसे सहने लगे संसार और शरीर के स्वरूप का विचार कर निरन्तर संवेग और वैराग्य गुणकी वृद्धि करने लगे आचार्य विमलवाहन के पास रहकर उन्होंने ग्यारह अंगों का अध्ययन किया तथा दर्शन विशुद्धि आदि सोलह भावनाओंका विशुद्ध हृदय से चिन्तवन किया जिस से उन्हें तीर्थकार नामक महापुण्य प्रकृति का बन्ध हो गया आयुके अन्तमें वे समाधि पूर्वक शरीर छोड़ कर विजय नाम के पहले अनुत्तर में महा ऋद्धिधारी अहमिन्द्र हुए वहां उनकी तेतीस सागर प्रामण आयु थी , एक हाथ बराबर सपेद शरीर था, वे तेतीस हजार वर्ष केबाद मानसिक आहार लेते और तेतीस पक्ष में एक बार श्वासोच्छ्वास लेते थे वहां वे इच्छा मात्र से प्राप्त हुई उत्तम द्रव्योंसे जिनेन्द्र देव की अर्चा करते और स्वेच्छासे मिले हुए देवों के साथ तत्त्व चर्चा करकेमन बहलाते थे यही अहमिन्द्र आगे चल कर भगवान अभिनन्दननाथ होंगे

## ( २ ) वर्तमान परिचय

जम्बू द्वीप के भरतक्षेत्र में अयोध्या नामकी नगरी है जो विश्वबन्धु तीर्थकारों के जन्म से महा पवित्र है जिस समय की यह वार्ता है उस समय वहां स्वयम्बर राजा राज्य करते थे उनकी महारानी का नाम सिध्दार्था था स्वयंबर महाराज वीर लक्ष्मी के स्वयंबर पति थे वे बहुत ही विद्वान और पराक्रमी राजा थे कठिनसे कठिन कार्योंका वे अपनी बुद्धिबलसे अनायास ही कर डालते थे, जिस से देखने वालों को दांतो तले अंगुली दबानी पड़ती थी राज दम्पति तरह तरहके सुख भोगते हुए दिन बिताते थे

ऊपर जिस अहमिन्द्र का कथन कर आये उसकी आयु जब बिजय विमान में छह माह की बाकी रह गई तबसे राजा स्वयंबर के घर के आंगन में प्रतिदिन रत्नों की वर्षा होने- लगी साथमें और भी अनेक शुभ शकुन प्रकट हुए जिन्हें देखकर भावी शुभ की प्रतीक्षा करते हुए राजदम्पति बहुत ही हर्षित होते थे इसके अनन्तर महारानी सिध्दार्था ने वैशाख शुक्ल षष्ठीके दिन पुनर्वसु नामक नक्षत्र में रात्रिके पिछले प्रहर में सुर कुंजर आदि सोलह स्पृन् देखे और अन्तमें अपने मुख में एक श्वेत वर्ण वाले हाथीको प्रवेश करते हुए देखा सवेरे स्वयंबर महाराज ने उनका फल कहा-प्रिये ! आज तुम्हारे गर्भ में स्वर्ग से चयकर किसी पुण्यात्माने अवतार लिया है नौ माह बाद तुम्हारे तीर्थकार पुत्र होगा जिसके बल, विद्या, वैभव आदिके सामने देव देवेन्द्र अपना माथा धुनेंगे पतिके मुंह से भावी पुत्र का माहत्म्य सुनकर सिध्दार्थ के हर्ष का पारावार नहीं रहा उस समय उसने अपनेआप को समस्त स्त्रियों में सारभूत समझा था गर्भमें स्थित तीर्थकार बालक के पुण्य प्रतापसे देव कुमारियां आ आकर महाराणी की शुश्रूषा करने लगी और चतुर्णिकाय के देवोंने आकर स्वर्गीय वस्त्रभूषणों से खूब सत्कार किया, खूब उत्सव मनाया, खूब भक्ति

प्रदर्शित की धीरे-धीरे जब गर्भ के दिन पूर्ण हो गये तब रानी सिध्दार्थाने माघ शुक्ल द्वादशी के दिन आदित्य योग और पुनर्वसु नक्षत्र में उत्तम पुत्र उत्पन्न किया देवोंने मेरु पर्वत पर ले जाकर रमणीय सलिल से उनका अभिषेक किया इन्द्राणीने तरह तरहके आभूषण पहिनाये फिर मेरु पर्वतसे वापिस आकर अयोध्यापुरी में अनेक उत्सव मनाये राजान याचकों के लिये मनचाहा दान दिया । इन्द्रने राज-बन्धुओं की सलाह से बालक का अभिनन्दन नाम रक्खा । बालक अभिनन्दन अपनी बाल चेष्टाओं से सबके मनको आनन्दित करता था इसलिये- उसका अभिनन्दन नाम सार्थक ही था । जन्मकल्याण का महोत्सव मनाकर इन्द्र वगैरह अपने अपने- स्थानों पर वापिस चले गये पर इन्द्रकी आज्ञासे बहुत से देव बालक अभिनन्दन कुमार के मनोविनोद के लिये वहीं पर रह गये शंभुनाथ के बाद दश लाख करोड़ बीत चुकने पर भगवान् अभिनन्दननाथ हुए थे उनकी आयु पचास लाख पूर्व की थी, शरीर की ऊंचाई तीन सौ पचास धनुष की थी और रंग सुवर्ण की तरह पीला था, उनके शरीर से सूर्य के समान तेज निकलात था वे मूर्तिधारी पुण्य के समान मालूम होते थे जब इनकी आयु रे साढे बारह लाख वर्ष बीत गये तब महाराज स्वयंबर ने इन्हें राज्य देकर दीक्षा धारण कर ली अभिनन्दन स्वामी ने भी राज्य सिंहासन पर विराजमान होकर साढे छत्तीस लाख पूर्व और आठ पूवार्ग तक राज्य किया एक दिन वे मकान की छत पर बैठ कर आकाश की शोभा देख रहे थे देखते देखते उनकी दृष्टी एक बादलों के समूह पर पड़ी उस समय वह बादलों का समूह आकाश के मध्य भाग में स्थित था । उसका आकार किसी मनोहर नगर के समान था भगवान् अनिमेष दृष्टीसे उसके सौन्दर्य को देख रहे थे पर इतनेमें वायुके प्रबल वेगसे वह बादलों का समूह नष्ट हो गया-कहीं का कहीं चला गया । बस, इसी घटना से उन्हें आत्मज्ञान प्रकट हो गया जिससे उन्होंने राज्यकार्य से मोह छोड़ कर दीक्षा लेने का दृढ़ विचार कर लिया । उसी समय लौकान्तिक देवोंने भी आकर उनके विचारों का समर्थन किया चारों निकायोंके देवोंने आकार दीक्षा-कल्याण का उत्सव किया अभिनन्दन स्वामी राज्याका भार पुत्रके लिये सौंपकर देव-निर्मित हस्तचित्रा पालकी पर सवार हुए देव उस पालकी को उठाकर उग्र नामक उद्यान में ले गये वहां उन्होंने माघ शुक्ला द्वादशी के दिन का पुनर्वसु नक्षत्रके उदय में शाम के समय जगद्वन्ध सिध्द परमेष्ठी का नमस्कार कर दीक्षा धारण ली -बाह्य-आभ्यन्तर परिग्रह को छोड़ दिये -और केश उखाड़ कर फेंक दिये उनके साथ में और भी हजार राजाओंने दीक्षा धारण की थी उन सब से घिर हुए भगवान् अभिनन्दन बहुत शौभायमान होते थे उन्होंने दीक्षा लेते समय बेला अर्थात् दो दीन का उपवास धारण किया था जब तिसरा दिन आया तब वे मध्याह्नसे कुछ समय पहले आहार लेने के लिये अयोध्यापुरी में गये उस समय वे आगे की चार हाथ जमिन देखकर चलते थे, किसी से कुछ नहीं कहते, उनकी आकृती सौम्य थी दर्शनीय थी वे उस समय ऐसे मालूम होते थे मानों चचाल चित्रं किलका ज्वनाद्रि-मेरु पर्वत ही चल रहा हो । महाराज इन्द्रदत्तने पडगाह कर उन्हें विधिपूर्वक भोजन दिये जिसे से उनके घर देवोंने पंचाश्चर्य प्रकट लिये वहांसे लौट कर अभिनन्दन स्वामी बनमें जा विराजे और कठिन तपस्या करने लगे इस तरह अठारह वर्ष तक



छद्मस्थ अवस्था में रहकर विहार किया । एक दिन बेला उपवास धारण कर वे शाल वृक्ष के नीचे विराजमान थे उसी समय उन्होंने शुक्लध्यान के अवलम्बन से क्षपक श्रेणी मांड क्रम-क्रम से आगे बढ़कर दशवें गुणस्थान के अन्तमें मोहनीय कर्म का सर्वथा क्षय कर दिया फिर बढ़ती हुई विशुद्धि से बारहवें गुणस्थानमें पहुंचे । वहां अन्दमर्दुत ठहर कर शुक्ल ध्यान के प्रताप से अवशिष्ट तीन घातिया कर्मोंका नाश किया जिससे उन्हें पौष शुक्ल चतुर्दशीक शामके समय पुनर्वसु नक्षत्र में अनन्त चतुष्टय, अनन्त ज्ञान, दर्शन, सुख और वीर्य प्राप्त हो गये उस समय सब इन्द्रोंने आकर उनकी पुजा की , ज्ञान कल्याणक का उत्सव किया धनपतिने समवसरण की रचना की जिस के मध्य में सिंहासन पर अधर विराजमान होकर पूर्ण ज्ञानी भगवान् अभिनन्दननाथ ने दिव्य ध्वनि के द्वारा सब को - हित का उपदेश दिया । जीव, अजीव आस्रव, बन्ध, संवर निरर्ज, और मोक्ष इन सात तत्वों का विशद व्याख्यान किया । संसार के दुखों का वर्णन कर उससे छूटनेके उपाय बतलाये । उनके उपदेश से प्रभावित होकर अनेक प्राणी धर्म में दीक्षित हो गये थे वे जो कुछ करते थे वह विशुद्ध हृदय से कहते थे इसलिये लौंगोंक हृदयों पर उसका अच्छा असर पड़ता था आर्य क्षेत्र में जगह जगह घूम कर उन्होंने सर्व-धर्मा का प्रचार किया और संसार-सिन्धु में पड़े हुए प्राणियों को हस्तावलंबन दिया । उनके समवसरण में वज्रनाभि को आदि लेकर एक सौ तीन गणधर थे, दो हजार पांच सौ द्वादशांग से पाठी थे, दो लाख तीस हजार पचास शिक्षक थे, नौ हजार आठ सौ अवधिज्ञानी थे, सोलह हजार केवलज्ञानी थे , और ग्यारह हजार वाद -विवाद करने वाले थे, इस तरह सब मिलाकर तीन लाख मुनिराज थे इनके सिवाय मेरुषेणा को आदि लेकर तीन लाख तीस हजार छह सौ आर्यिकाएं थी, तीन लाख श्रावक थे, पांच लाख श्राविकाएं थीं असंख्यात देव देवियां और थे असंख्यात तिर्यञ्च । अनेक जगह विहार करने के बाद वे आयु के अन्तिम समयमें सम्मोद शिखरपर पहुंचे । वहां से प्रतिमायोग धारण का अचल हौ बैठा गये । उस समय उनका दिव्य ध्वनी वगैरह बाह्य वैभव लुप्त हो गया था । वे हर एक तरह के आत्म ध्यान में लिन हो गये थे । धीरे-धीरे उन्होंने योगी की प्रवृत्ती को भी रोक लिया था जिससे उनके नविन कर्मों का आस्रव बिलकुल बन्द हो गया और शुक्लध्यान के प्रताप से सत्ता में स्थित अघाति चतुष्क की पचासी प्रकृतियां धीरे-धीरे -नष्ट हो गई । जिससे वे वैसाख शुक्ल षष्ठी के दिन पुनर्वसु नक्षत्र में प्रातःकाल के समय मुक्ति मन्दिर में जा पधारे । देवोंन आकर उनके निर्वाण कल्याणक का महोत्सव किया । आचार्य गुणभद्र लिखते हैं कि जा पहले विदेह क्षेत्रके रत्नसंचय नगर में महाबल नामके राजा हुए वे अभिन्दन स्वामी तुम सबकी रक्षा करें ।

भगवान सुमतिनाथ

रिपुनृप यम दण्ड : पुण्डरीकिण्यधीशोहरिरिव रतिषेणी वैजयन्ते S हमिन्द्र : ।

सुमित रमित लक्ष्मीस्तीर्थ कृद्यः कृतार्थ सकलगुणसमृद्धो वः स सिद्धी विदध्यात् ॥

- आचार्य गुणभद्र

जो शत्रुरूप राजाओं केलिये यमराज केदण्ड केसमान अथवा हरि ( इन्द्र ) केसमान पुण्डरीकिणी नगरी केराजा रतिषेण हुए, फिर वैजयन्त विमान में अहमिन्द्र हुए वे अपार लक्ष्मीकेधारक, कृतकृत्य, सब गुणोंसे सम्पन्न भगवान् सुमतीनाथ तीर्थकार तुम सब की सिध्दी करें तुम्हारे मनोरथ पूर्ण करें ।

( १ ) पूर्वभय परिचय

दूसरे धातकी खण्ड द्वीप में पूर्वमेरु से पूर्वकी ओर विदेह क्षेत्रमें सीता नदी के उत्तर तटपर पुष्कलावती नामक देश है । उसमें पुण्डरीकिणी नगरी है जो अपनी शोभासे पुरन्दपुरी अमरावती को भी जीतती है । किसी समय उसमें रतिषेण नामक राजा राज्य करते थे । महाराज रतिषेणने अपने अतुलकाय बल से जिस तरह बड़े बड़े शत्रुओं को जीत लिया था उसी तरह अनुपम मनोबलसे काम , क्रोध , लोभ , मद , मात्सर्य और मोह इन छह अन्तरंग शत्रुओंको भी जीत लिया था । वे बड़े ही यशस्वी थे दयालु थे धर्मात्मा थे और थे सच्चे नीतिज्ञ<sup>१</sup> अनेक तरह के विषय भोगते हुए जब उनकी आयु का बहुभाग व्यतीत हो गया तब उन्हें एक दिन किसी कारण वश संसार से उदासीनता हो गई । ज्योंही उन्होंने विवेकरूपी नेत्र से अपनी ओर देखा त्योंही उन्हें बीते हुए जीवन पर बहुत सन्ताप हुआ । वे सोचने लगे -हाय मैंन अपनी विशाल आयु इन विषय सुखोंके भोगने में ही बिता पर दी पर विषय सुख भोगने से क्या सुख मिला है ? इसका कोई उत्तर नहीं है<sup>२</sup> मैं आजतक भ्रम वा दुः खके कारणों को ही सुखका कारण मानता रहा हूं । ओह ! इत्यादि विचारकर वे अतिरथ पुत्रके लिये राज्य दे बनमें जाकर कठिन तपस्याएं करने लगे उन्होंने- अर्हन्नन्दन गुरु के पास रहकर ग्यारह अंगो का विधि पूर्वक अध्यन किया तथा दर्शन विशुद्धी अदि सोलह भावनाओं का शुद्ध हृदयसे चिन्तवन किया जिससे उन्हें तीर्थकार नामक महापुण्य प्रकृति का बन्ध हो गया । मुनिराज रतिषेण आयु के अन्त में सन्यास पूर्वक मर कर वैजन्त विमान में- अहमिन्द्र हुए । वहां उनकी आयु तेतीस सागर वर्षकी थी, शरीर एक हाथ उँचा और रंग सफेद था<sup>३</sup> वे तेतीस हजार बाद एक बार मानसिक आहार लेते और तेतीस पक्षमें सुरभित श्वास लेते थे । इस तरह वहां जिन अर्चा और तत्व चर्चाओं से अहमिन्द्र रतिषेण के दिन सुखसे बीतने लगे । यही अहमिन्द्र आगेके भव में कथानायक भगवान् सुमति होंगे<sup>४</sup> अब कुछ वहां का वर्णन सुनिये जहां आगे चलकर उक्त अहमिन्द्र जन्म धारण करेंगे<sup>५</sup>

( २ ) वर्तमान परिचय

पाठकगण जम्बूद्वीप भरत क्षेत्र की जिस अयोध्या से परिचित होते आ रहे है उसीमें किसी समय मेघरथ नाम केराजा राज्य करते थे उनकी महारानी की नाम सुमंगला था । सुमंगला सचमुच मंगला ही थी । महाराज मेघरथ के सर्व मंगल सुमंगलाके ही आधीन थे । ऊपर जिस अहमिन्द्र का कथन कर आये हैं उस की वहां की आयु जब छह माह की बाकी रह गई थी तभीसे महाराज मेघरथ के घरपर देवोंने रत्नों की वर्षा करनी शुरू कर दी थी । श्रावण शुक्ला द्वितीया के दिन मघा नक्षत्र में सुमंगल देवीने पिछले भागमें ऐरावत आदि सोलह स्वप्न देखे और फिर मुंहमे प्रवेश करता हुआ एक हाथी देखा । सवेरा होते

ही उसने प्राणनाथ से स्वप्नों का फल पूछा तब उन्होंने अवधिज्ञान से जानकर कहा कि आज तुम्हारे गर्भ में तीर्थकर बालकने अवतार लिया है -सोलह स्वप्न उसीकी विभूति के पिचायक हैं । पतिके मुख से स्वप्नों का फल सुनकर और भावी पुत्र के सुविशाल वैभव का स्मरण कर के वह बहुत ही सुखी होती थी । उसी दिन देवोंने आकर राजा रानी का खूब यश गाया, खूब उत्सव मनाये । इन्द्रकी आज्ञा से सुरकुमारियां महादेवी सुमंगला की तरह तरह की शुश्रूषा करती थी और प्रमोदमयी वचनों से उसका मन बहलाये रहती थी ।

नौ महीना बाद चैत्र शुक्ल एकादशी के दिन मघा नक्षत्र में महारानीने पुत्र उत्पन्न किया । पुत्र उत्पन्न होते ही तीनों लोंकों में आनन्द छा गया । सबके हृदय आनन्द से उल्लसित हो उठे, एक क्षण के लिये नारकी भी मार काट का दुःख भूल गये, भवनावासी देवोंके भवनों में अपने आप शंख बज उठे, व्यन्तरोंके मन्दिरों में भेरी की आवाज गूंजने लगी, ज्योतिषियोंके विमानोंमें सिंहनाद हुआ तथा कल्पवासी देवों के विमानों में घन्टा की आवाज फैल गई । मनुष्य लोक में भी दिशाएं निर्मल हो गई आकाश निर्मल हो गया , दक्षिण की शीतल और सुगन्धित वायु धीरे-धीरे बहने लगी, नदी, तालब आदि का पानी स्वच्छ हो गया ।

अथान्तर तीर्थकार के पुण्यसे प्रेरे हुए देव लोग बालक तीर्थकार को सुमंरु पर्वत पर ले गये । वहां उन्होंने क्षीर-सागर के जलसे उनका अभिषेक किया । अभिषेक के बाद इन्द्राणी ने शरीर पोंछ कर उन्हें बालोचित उत्तम उत्तम आभूषण पहिनाये और इन्द्रने स्तुति की । फिर जय जय शब्द से समस्त आकाश को व्याप्त करते हुए अयोध्या आये और बालक को माता पिताके लिये सौप कर उन्होंने बड़े ठाट वाट से जन्मोत्सव मनाया । उसी समय इन्द्रने आनन्द नाम का नाटक किया था । पुत्र का अनुपम माहात्म्य देख कर पिता हर्षा से फूले न समाते थे । इन्द्रने महाराज मेघरथ की सम्मति से बालक का नाम सुमति रक्खा । उत्सव समाप्त कर देवलोग अपने अपने स्वर्ग चले गये । बालक सुमतिनाथ दूज के चन्द्रमा की तरह धीरे-धीरे बढ़ाता गया । वह बाल-चन्द्र ज्यों ज्यों बढ़ाता जाता था त्यों त्यों अपनी कलाओं से माता पिता के हर्ष-सागर को बढ़ता जाता था । भगवान् सुमतिनाथ, अभिनन्दन स्वामी के बाद नौ लाख करोड़ सागर बीत जाने पर हुए थे । उनकी आयु चालीस लाख पूर्व की थी जो उसी अन्तारालमें शामिल है । शरीर की ऊंचाई तीन सौ धनुष और कान्ति तपे हुए स्वर्ण की तरह थी । उनका शरीर बहुती सुन्दर था- उनके अंग प्रत्यग्दसे लावण्य फूट फूट कर निकल रहा था । धीरे धीरे जब उनके कुमारकाल के दश लाख पूर्व व्यतीत हो गये तब महाराज मेघराज उन्हें राज्या-भार सौप कर दीक्षित हो गये । भगवान् सुमतिनाथ ने राज्य पाकर उसे इतना व्यवस्थित बनाया था कि जिस से उनका कोई भी शत्रु नहीं रहा था । समस्त राजा लोग उनकी आज्ञाओं को मालाओं की तरह मस्तक पर धारण करते थे । उनके राज्यमें हिंसी, झूठ , चोरी व्याभिचार आदि पाप देखने को न मिलते थे । उन्हें हमेशा प्रजा के हित का ख्याल रहता था इसलिये वे कभी ऐसे नियम नहीं बनाते थे जिनसे प्रजा दुखी हो । महाराज

मेघराज दीक्षित होने के पहले ही उनका योग्य कुलीन कन्याओं के साथ पाणिग्रहण ( विवाह ) करा गये थे । सुमतिनाथ उन नर-देवियों के साथ अनेक सुख भोगते हुए अपना समय व्यतीत करते थे । इस तरह राज्य करते हुए जब उनके उन्नीस लाख पूर्व और बारह पूर्वागंड बीत चुके तब किसी दिन कारण पाकर उनका चित्त विषय वासनाओं से विरक्त हो गया जिस से उन्हें संसार के भोग नीरस और दुःख प्रद मालूम होने लगे । ज्योंही उन्होंने अपने अतीत जीवन पर दृष्टि डाली त्योंही उनके शरीर में रोमांच खड़े हो गये । उन्होंने सोचा हाय मैंने एक मूर्ख की तरह इतनी विशाल आयु व्यर्थ गंवा दी हित का मार्ग बतलाऊं, उनका भला करूं -यह जो मैं बचपन में सोचा करता था वह सब इस यौवन और राज्य सुख के प्रवाह में प्रवाहित हो गया । जैसे सैकड़ों नदियों का पान करते हुए भी समुद्र की तृप्ति नहीं होती वैसे इन विषय सुखों को भागेत हुए भी प्राणियों को तृप्ति नहीं होती । ये विषयाभिलाषाएं मनुष्य को आत्म हित की कदम नहीं बढ़ाने देती । इसलिये अब मैं इन विषय वासनाओं को जलांजलि देकर आत्म हित की ओर प्रवृत्ति करता हूं ।

इधर भगवान् सुमतिनाथ विरक्त हृदय से विचार कर रहे थे उधर आसन कांपने से लौकान्तिक देवोंको इनके वैराग्य का ज्ञान हो गया था जिस से वे शीघ्र ही इनके पास आये और अपनी विरक्त वाणी से इनके वैराग्य को बढ़ाने लगे । जब लौकान्तिक देवोंने देखा कि अब इनका हृदय पूर्ण रूप से विरक्त हो चुका है तब वे अपनी अपनी जगह पर वापिस चले गये और उनके स्थान पर असंख्य देव लोग आ गये । उन्होंने आकर वैराग्य महोत्सव मनाना प्रारम्भ कर दिया । पहिले जिन देवीकी संगीत, नृत्य तथा अन्य चेष्टाएं राग बढ़ाने वाली होती थी आज उन्हीं देवियों की समस्त चेष्टाएं वैराग्य बढ़ा रही थी ।

भगवान् सुमतिनाथ पुत्र के लिये राज्य देकर देव -निर्मित अभया पालकी पर बैठ गये । देव लोग अभया को अयोध्याके समीपवर्ती सहेतुक नामक बव में ले गये वहां उन्होंने नरसुर की साक्षी में जगद्वन्द्य सिद्ध परमेष्ठी को नमस्कार कर बैसाख शुक्ला नवमी के दिन मध्यान्ह के समय मघा नक्षत्र में एक हजार राजाओं के साथ दिगम्बरी दीक्षा धारण कर । दीक्षा धारण करते समय हो वे तेल-तीन दिन के उपवास की प्रतिज्ञा कर चुके थे इसलिये लगातार तीन दिन तक एक आसन से ध्यानमग्न होकर बैठे रहे । ध्यानके प्रताप से उनकी विशुद्धता उत्तरोत्तर बढ़ती जाती थी इसलिये उन्हें दीक्षा लेने के बाद ही चौथा मनःपर्यय ज्ञान प्राप्त हो गया था । जब तीन दिन समाप्त हुए तब वे मध्यान के आहार के लिये सौमनस नगर में गये । वहां उन्हें घ्युम्न द्युति ड राजने पडगाह कर योग्य ( समयानुकूल ) आहार दिया । पात्रदान के प्रभाव से राजा द्युम्नद्युति के घर देवोंने पंचाश्चर्य प्रकट किये । भगवान् सुमतिनाथ आहार लेकर बनको वापिस लौट आये फिर आत्म-ध्यानमें लीन हो गये ।

इस तरह कुछ कुछ दिनोंके अन्तराल से आहार ले कठिन तपश्चर्या करते हुए जब बीस वर्ष बीत गये तब उन्हें प्रियंगु वृक्षके नीचे शुक्लध्यान के प्रतापसे घातिया कर्मोंका नाश हो जाने पर चैत्र सुदी एकादशी के दिन मघा नक्षत्रमें सायंकाल के समय लोक-अलोक का प्रकाशित करने वाला केवलज्ञान

प्राप्त हुआ । देव, देवेन्द्रोंवे आकर भगवान् के ज्ञानकल्याण का उत्सव मनाया<sup>१</sup> अलकाधिपति कुवेरने इन्द्र की आज्ञा पाते ही समवसरण की रचना की<sup>२</sup> उसके मध्य में सिंहासन पर अचल रूपसे विराजमान होकर-केवली सुमतिनाथ ने दिव्य ध्वनि के द्वारा उपस्थित जनसमूह को धर्म, अधर्म का स्वरूप बतलाया जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल इन छह द्रव्योंके स्वरूपका व्याख्यान किया । भगवान के मुखरविन्द से वस्तु का स्वरूप समझकर वहां बैठी हुई जनता के मुह उस तरह हर्षित हो रहे थे जिस तरह कि सूर्यकी किरणों के स्पर्श कमल हर्षित हो जाते हैं । व्याख्यान समाप्त होते ही इन्द्रने मधुर शब्दोंमें उनकी स्तुति की और आर्यक्षेत्रों में विहार करनेकी प्रार्थना कि । उन्हेंने आवश्यकता नुसार आर्य क्षेत्रों में विहार समीचीन धर्म का खूब प्रचार किया ।

भगवानका विहार उनकी इच्छा पूर्वकी नहीं होता था । क्योंकि मोहनीय कर्म का अभाव होने से उनकी हर एक प्रकार की इच्छाओंका अभाव हो गया था । जिस तरफ भव्य जीवोंकी विशेष पुण्य का उदय होता था उस तरफ मेघोंकी तरह उनका स्वाभाविक विहार हो जाता था । उनके उपदेश से प्रभावित होकर अनेक नर-नारी उनकी शिष्य दीक्षामें दिक्षीत हो जाते थे । आचार्य गुणभद्राजीने लिखा है कि उनके समवसरण में अमर आदि एक सौ सोलह गणधर थे , दो लाख चौअन हजार तीन सौ पचास शिक्षक थे , ग्यारह हजार अवधिज्ञानी थे , ग्याहर हजार अवधिज्ञानी थे, तेरह हजार केवलज्ञानी थे , दश हजार चार सौ मनःपर्यय ज्ञानी थे, अठारह हजार चार सौ विक्रिया ऋद्धि के धारक थे, दस हजार चार पचास वादी थे । इस तरह सब मिलाकर तीन लाख बीस हजार मुनि थे । अनन्तमती आदि तीन लाख तीस हजार आर्यिकाएं थीं , तीन लाख श्रावक और पांच लाख श्राविकाएं थीं । इनके सिवाय असंख्यात देव देवियां और संख्यात तिर्यच थे ।

जब उनकी आयु एक माह की बाकी रह गई तब वे सम्मेद शैल पर आये और वहीं योग निरोध कर विराजमान हो गये । वहां उन्होंने शुक्ल ध्यान के द्वारा अधाति चतुष्टय का क्षय कर चैत्र सुदी एकादशी के दिन मघा नक्षत्रमें शामके समय मुक्ति-मन्दिर में प्रवेश किया । देवोंने सिद्ध क्षेत्र सम्मेदशिखर पर आकर उनकी पूजा की और मोक्ष कल्याणक की उत्सव किया ।

भगवान पद्मप्रभ

किंसेव्यं क्रम युग्म मब्जविजया दस्यैव लक्ष्मास्पदं

किंश्रव्यं सकल प्रतीति जनना दस्यैव सत्यं वचः ।

किंधयेयं गुणसंतितश्च्युत मलस्यास्यैव काष्ठाश्रया

दित्युक्त स्तुति गोचरःस भगवानपद्मप्रभ : पातुवः ॥

सेवा किसकी करनी चाहिये ? कमलको जीत लेनेसे लक्ष्मी के स्थानभूत भगवान्के चरण युबल की । सुनना क्या चाहिये ? सबको विश्वास उत्पन्न करनेसे इन्हीं प्रद्मप्रभ भगवान् के सत्य वचन । ध्यान

किसका करना चाहिये ? अन्तरहित होनेके कारण, निर्दोष इन्हीं पद्मप्रभ महाराज के गुण समूह । इस प्रकारकी स्तुतिकेविषयभूत भगवान् पद्मप्रभ तुम सबकी रक्षा करे ।

#### (१) पूर्वभव परिचय

दूसरे धातकी खण्डव्दीप केपूर्व विदेह क्षेत्रमें सीता नदीकेदाहिने किनारेपर एक वत्स नाम का देश है । उसके सुसीमा नगर में किसी समय अपराजित नामका राजा राज्य करता थां सचमुच में राजाका जैसा नाम था वैसा ही उसका बल था । वह कभी शत्रुओंसे पराजित नहीं हुआ । उसकी भुजाओंमें अप्रतिम बल था जिस से उसके सामने रणक्षेत्र में कोई खड़ा भी न हो पाता था । उसके पास जो असंख्य सेना थी वह सिर्फ प्रदर्शन के लिए ही थी । क्योंकि शत्रु लोग उसका प्रताप न सहकर दूसरे ही भाग जाते थे । वह हमेशा अपनी प्रजाकी भलाई में संलग्न रहता था । राजा अपराजित ने दान दे दे कर दरिद्रोंको लखपति बना दिया था । उसकी स्त्रियां अपने अनुपम रूप से सुर सुन्दरियों को भी पराजित करने वाली थीं । उन सबके साथ संसारिक सुख भोगता हुआ वह चिरकाल तक पृथिवीका पालन करता रहा ।

एक दिन किसी कारण से उसका चित्त विषय वासनाओं से हट गया था इसलिये वह सुमित्रा नामक पुत्रके लिये राज्य दे बनमें जाकर विहितारत्रव आचार्य के पास दीक्षित हो गया । उसने आचार्य के पास रहकर खूब अध्ययन किया औ कठिन तपस्याओंसे अपनी आत्मा को बहुत कुछ निर्मल बना लिया । उन्हीं के पास में रहते हुए उसने दर्शन विशुद्धि, विनय सम्पन्नता आदि सोलह भावनाओंका चिन्तन कर तीर्थकर नामक पुण्य प्रकृति का बन्ध कर लिया था । जब उसकी आयु समाप्त होने को आई तब वह समस्त वाह्य पदार्थोंसे मोह हटाकर शुद्ध आत्मा के ध्यान में लीन हो गया । जिस में मरकर नवमें ग्रैवेयक के प्रीतिकर विमान में ऋद्धिधारी अहमिन्द्र हुआ । वहां पर उसकी आयु इकतीस सागर की थी, शरीर दो हाथ ऊंचा था, लेश्या शरीरका रंग सफेद था । वह इकतीस हजार वर्ष बाद मानसिक आहार लेता था और इकतीस पक्ष में वह एक बार सुगन्धित श्वास ग्रहण करता था । उसे जन्मसे ही अवधिज्ञान प्राप्त था जिससे वह यही अहमिन्द्र ग्रैवेयक के सुक बोगकर भरतक्षेत्र में पद्मप्रभ नाम का तीर्थकर होगा । ग्रैवेयक से चयकर वह जहां उत्पन्न होगा अब वहांका हाल सुनिये ।

#### (२) वर्तमान परिचय

इस जम्बूव्दीप के भरतक्षेत्र की कौशाम्बी नगरीमें बहुत समय से इक्ष्वाकु वंशीय राजाओं का राज्य चला आ रहा था । कालक्रमसे उस समय वहां धारणराजा राज्य करते थे । उनकी स्त्रीका नाम सुसीमा था । सुसीमा सब गुणोंकी अन्तिम सीमा- (अवधि) था । उसमें सभी गुण प्रकर्षता को प्राप्त थे ।

जब उक्त अहमिन्द्र की आयु वहांपर सिर्फ छह माहकी बाकी रह गई थी तभी से महाराजा धारण के घरपर प्रतिदिन आकाशसे करोंडों रत्न वरसने लगे । रत्नोंकी वर्षा देखकर कुछ भला होनेवाला है यह सोचकर राजा अपने मनमें अत्यन्त हर्षित होते थे । महारानी सुसीमाने माघ कृष्णा षष्ठी के दिन चित्र नक्षत्र में स्वप्न देखने के बाद अपने मुंहमें प्रवेश करते हुए एक हाथी को देखा । पूछनेपर राजाने रानी के

लिये स्वप्नों का फल बतलाते हुए कहा कि च आज रात्रि के पिछले पहरमें तुम्हारे गर्भ में तीर्थकर बालक ने प्रवेश किया है । ये स्वप्न उसी के अभ्युदय के सूचक है छ । पति के मुख से भावी मुख का प्रभाव सुनकर महारानी बहुत ही प्रसन्न हुई । उसी दिन सवेरा होते ही देवोंने आकर महाराज और महारानीका खूब सत्कार किया तथा भगवान् पद्मप्रभ के गर्भ कल्याणक का उत्सव किया

नौ माह बाद कार्तिक कृष्णा त्रयोदशीके दिन मघा नक्षत्रमें माता सुसीमाने बालक उत्पन्न किया उसी समय देवोंने बालकको मेरु पर्वत पर ले जाकर क्षीर-सागर के जल से उसका महाभिषेक किया और अनेक तरहसे स्तुति कर माता पिता को सौंप गये । इन्द्रने महाराज के घर पर आनन्द नाटक किया तथा अनेक कौतुहलोंको उत्पन्न करनेवाले ताण्डव नृत्य से सब दर्शकों के मन को हर्षित किया ।

बालक के शरीर की प्रभा (कान्ति) पद्म (कमल) के समान थी, इसलिये इन्द्रने उसका नाम पद्मप्रभ रक्खा था । भगवान् पद्मप्रभ बाल इन्दु के समान प्रतिदिन बढ़ने लगे । उनकी बाल लीलाएं देख देख कर माता सुसीमा का हृदय मारे आनन्दसे फूल उठता था । उन्हें मति श्रुति और अवधि, ये तीन ज्ञान तो जन्मसे ही थे, पर वे जैसे बढ़ते जाते थे, वैसे वैसे उनमें अनेक गुण अपना निवास करतें जाते थे ।

सुमतिनाथ के मोक्ष जानेके बाद नब्बे हजार करोड़ सागर बीत जाने पर इनका जन्म हुआ था । इनकी आयु भी इसी अन्तराल में शामिल है । इनकी कुल आयु तीस लाख पूर्व की थी, दो सौ पचास धनुष ऊंचा शरीर था । जब आयुका चौथाई भाग अर्थात् साढ़े सात लाख पूर्व वर्ष बीत गये, तब महाराज धारण उन्हें राज्य देकर आत्म-कल्याण की ओर प्रवृत्त हो गये । भगवान् पद्मप्रभ भी राज्य पाकर नीतिपूर्वक उसका पालन करने लगे । उनके राज्य में प्रजा को ईति - भीतिका भय नहीं था । ब्राह्मण आदि वर्ण अपने अपने कार्यों में संलग्न रहते थे, इसलिये उस समय लोगों में परस्पर झगड़ा नहीं हातो था । उन्होंने अपने गुणों से प्रजाको इतना प्रसन्न कर दिया था ,जिससे वह धीरे धीरे महाराज धारण को भी भूल गई थी । सुन्दरी सुशीला कन्याओं के साथ उनकी शादी हुई थी इनके साथ मनोरम स्थानों में तरह तरह क्रीडाएं करते हुए वे यौवनके रसीले समय को आनन्दसे बिताते थे । वे धर्म अर्थ और काम का समान रूपसे पालन करते थे । इस तरह इन्द्रकी तरह विशाल राज्य का उपभोग करते हुए जब उनकी आयु का बहु भाग व्यतीत हो गया और सोलह पूर्वाङ्क कम एक लाख पूर्व की बाकी रह गई, तब वह एक दिन दरवाजे पर बंधे हुए हाथीके पूर्व भाव सुनकर प्रतिबुद्ध हो गये । उसी समय उन्हें पूर्व भवों का ज्ञान हो गया, जिससे उनके अन्तरंग नेत्र खुल गये । उन्होंने सोचा कि मैं जिन पदार्थोंको अपना समझ उनमें अनुराग कर रहा हूँ वे किसी भी तरह मेरे नहीं हो सकते, क्योंकि मैं सचेतन जीव द्रव्य हूँ और ये पर पदार्थ अचेतन ( जड़ ) पदगल रूप है । एक द्रव्य का दूसरे रूप परिणमन त्रिकाल भी नहीं हो सकता । खेद है कि मैंने इतनी विशाल आयु इन्हीं भोग विलासोंमें बिता दी, आत्म कल्याण की कुछ भी चिन्ता नहीं की । इसी तरह ये संसार के समस्त प्राणी विषयभिलाषा रूप दावानल में झुलस रहे हैं । उनकी

इच्छाएं निरन्तर विषयों की और बढ़ रही हैं और इच्छानुसार विषयों की प्राप्ति नहीं होने से व्याकुल होते हैं । ओह रे ! सब चाहते तो सुख हैं पर दुःख के कारणोंका संचय करते हैं । अब जैसे भी बनें वैसे आत्महित कर इनको भी हित का मार्ग बतलाना चाहिए - इधर भगवान् पद्मप्रभ हृदय में ऐसा चिन्तवन कर रहे थे उधर लौकान्तिक देव आकाश से उतर कर उनके पास आये और बारह भावनाओंका वर्णन तथा अन्य समयोपयोगी सुभाषितों से उनका वैराग्य बढ़ाने लगे । जब भगवान् का वैराग्य पराकाष्ठा पर पहुंच गया तब लौकान्तिक देव अपना कर्तव्य पूर्ण हुआ समझकर अपने अपने स्थानों पर चले गये । उसी समय दूसरे देवोंने आकर तपःकल्याणक का उत्सव मनाना शुरू कर दिया ।

भगवान् पद्मप्रभ पुत्र केलिये राज्य सौंपकर निर्वृति नामक पालकीपर चढ़ मनोहर नाम केबन में गये । वहां उन्होंने देव, मनुष्य और आत्मा की साक्षी पूर्वक कार्तिक कृष्ण त्रयोदशीके दिन शामके समय चित्र नक्षत्र में एक हजार राजाओंके साथ जैनेश्वरी दीक्षा धारण कर ली । उन्हें दीक्षा के समय ही मनःपर्यय ज्ञान हो गया था । दो दिनोंकेबाद वे आहार लेने केलिये वर्धमानपुर नाम केनगर में गये सो वहां महाराज सोमदत्त ने पड़गाहकर उन्हें भक्तिपूर्वक आहार दिया । पात्रदान के प्रभाव से देवोंने सोमदत्तके घर पर पंचाश्चर्य प्रकट किये थे । सो ठीक है - जो पात्रदान स्वर्ग मौक्ष का कारण है उससे पंचाश्चर्यों केप्रकट होने में क्या आश्चर्य है ।

भगवान् पद्मप्रभ आहार लेकर पुनः बनमें लौट आये और आत्मध्यानमें लीन हो गये । इस तरह, दिन दो दिन, चार दिनकेअन्तरसे भोजन सेकर तपस्याएं करते हुए उन्होंने छद्मस्थ अवस्था के छः माह मौनपूर्वक बिताये ।

फिर क्षपक श्रेणी चढ़कर शुक्ल ध्यानसे धातिया कर्मों का नाश किया, जिससे उन्हें चैत्रा शुक्ला पौर्णमासी के दिन दोपहर के समय चित्रा नक्षत्र में केवलज्ञान प्राप्त हुआ । इन्द्रोंने आकर ज्ञान-कल्याणक का उत्सव मनाया । कुवेरने पूर्व की तरह समवसरण धर्म सभाकी रचना की उसके मध्यमें विराजमान होकर उन्होंने अपने दिव्य उपदेशसे सबको संतुष्ट किया । जब वे बोलते- थे, तब ऐसा मालूम होता था मानो कानों में अमृतकी वर्षा हो रही है । जीव अजीव आदि तत्वोंका वर्णन करते हुए जब उन्होंने संसार के दुःखों का वर्णन किया तब प्रत्येक श्रोताके शरीर में रोंगटे खड़े हो गये थे । उस समय कितने ही मनुष्य गृह परित्याग कर मुनि हो गये थे- और कितने ही श्रावकों केव्रतों में दीक्षित हुए थे ।

इन्द्रकी प्रार्थनासुनकर उन्होंने प्रायः समस्त आर्य क्षेत्रों में विहार किया जिससे सब जगह जैन धर्मा का प्रचार खूब बढ़ गया था । वे जहां भी जाते थे वहीपर अनेक मनुष्य दीक्षित होकर उनके संघमें मिलते जाते थे, इसलिए अन्तमें उनके समवसरण में धर्मात्माओंकी संख्या बहुत बढ़ गई थी । आचार्य गुणभद्रने लिखा है कि उनके समवसरण में बज्र, चामर अदि एक सौ दश गणधर ते, दो हजार तीन सौ व्दादशांगकेवेत्ता थे, दो लाख उनहत्तर उपाध्याय शिक्षित थे, दश हजार अवधीज्ञानी थे ,बारह हजार केवल ज्ञानी थे दश हजार तीन सौ मनःपर्यय ज्ञानी थे, सोलह हजार आठ सौ विक्रिया ऋद्धि केधारी थे और नौ



हजार छः सौ उत्तरवादी थे । इस तरह सब मिलाकर तीन लाख तीस हजार मुनिराज थें रतिषेणाको आदि लेकर चार लाख वीस हजार अर्यिकाएं थी ।, तीन लाख श्रावक थे, पांच लाख श्राविकाएं थीं, असंख्य देव देवियां और असंख्यात तिर्यच थे । भगवान् पद्मप्रभ अन्तमें सम्मंद शिखरपर पहुंचे . वहां उन्होंने एक हजार मुनियोंके साथ प्रतिमा योग धारण किया ओर समस्त योंगों की प्रवृत्ति को रोककर शुध्द आत्मा के स्वरूप का ध्यान किया । उस समय दिव्य ध्वनि विहार वगैरह सब बन्द हो गया था । इस तरह एक महिने तक प्रतिमा योग धारण करनेके बाद वे फाल्गुन कृष्ण चतुर्थीके दिन चित्रा नक्षत्र में शाम के समय शुक्ल ध्यानके प्रताप से अघातिया कर्मोंका क्षय कर मोक्ष स्थान को प्राप्त हुए । देवोंने आकर उनके निर्वाण स्थानकी पूजा की । भगवान् पद्मप्रभ के कमल का चिन्ह था ।

भगवान् सुपार्श्वनाथ

स्वास्थ्यं यदात्यन्तिक मेषपुंसां स्वार्थो न भागः परिगुरात्मा ।

तृषोनुषंगान्नच ताप शान्ति रितीद्माख्यद् भगवान् सुपार्श्व : ।।

आत्मा का स्वास्थ्य वही है जिसका फिर अन्त न हो, विनाश न हो । पंचेन्द्रियों का भाग आत्मा का स्वार्थ नहीं है, क्योंकि वह भंगुर है, नश्वर है और तृष्णा का अनुषंग संसर्ग होनेका कारण उस से सन्ताप की शान्ति नहीं होती, ऐसा भगवान् सुपार्श्वनाथ ने कहा है ।

(१) पूर्वभव परिचय

धातकी खण्ड द्वीप के पूर्व विदेह क्षेत्र में सीता नदी के उत्तर किनारे पर सुकच्छ देश है . उसके क्षेमपुर नगर में किसी समय नन्दिषेण राजा राज्य करता थां । वह राजा बहुत ही विद्वान एवं चतुर था । उसने अपनी चतुराई से अजय शत्रुओंको भी वश में कर लिया था । उसका बाहुबल भी अपार था । वह रणक्षेत्र में निःशंक होकर गरज ताथा कि देव, दानव विद्याधर नरवीर जिस में शक्ति हो वह मेरे सामने आवे । इसकी स्त्रियां अपनी रूप राशि से स्वर्गीय सुन्दरियों को भी लज्जित करती थीं । वह उनके साथ अनेक तरह के श्रृङ्गार सुख भोगता हुआ अपने यौवन को सफल बनाया करता था । यह सब होते हुए भी वह धर्म कार्यों में हमेशा सुदृढ़ चित्त रहता था, इसलिये उस के कोई भी कार्य ऐसे नहीं होते ते जो धार्मिक नियमों के विरुद्ध हों । कहने का मतलब यह है कि वह राजा - धर्म अर्थ और काम का समान रूपसे पालन करता था । राज्य करते करते जब बहुत समय निकल गया तब एक दिन उसे सहसा वैराग्य उत्पन्न हो गया जिससे उसे समस्त भोग काले भुजंग की तरह मालूम होने लगे । उसने अपने विशाल राज्य को विस्तृत कारागार समझा । उसी समय उसका स्त्री - पुत्र आदिसे ममत्व छूट गया । उसने सोचा कि यह जीव अरहटकी घड़ी के समान हमेशा ही चारों गतियोंमें घूमता रहता है । जो आज देव है वह कल तिर्यच हो सकता है । जो आज राज्य - सिंहासन पर बैठकर मनुष्यों पर शासन कर रह है वही कल मुट्ठी भर अन्न केलिये घर घर भटक सकता है । औह ! यह सब होते हुए भी मैंने अभी तक इस संसार से छुटकारा पाने केलिये कोई सदृढ़ कार्य नहीं किया । अब मैं शीघ्र मोक्ष प्राप्तीके लिये प्रयत्न

करूँ गा । इत्यादि विचार कर उसने धनपति नामक पुत्र को राज्य सिंहासन पर बैठा दिया और स्वयं बनमें जाकर अर्हन्नन्दन मुनिराज के पास जिन-दीक्षा ले ली । दीक्षित होने के बाद उसके पास कुछ भी परिग्रह नहीं रहा गया था । दिशाएं ही उसके वस्त्र थे, आकाश मकान था, पथरीली पृथ्वी शय्या थी, जंगलके हरिण आदि जन्तु उसके बन्धु थे, रातमें असंख्य तारे और चन्द्रमा ही उसके दीपक थे । वह सरदी, गरमी, और वर्षाके दुःख बड़ी शान्तिसे सह लेता था । क्षुधा, तृषा आदि परीषहोंका सहना अब उसके लिये कोई बड़ी बात नहीं थी । उसने आचार्य अर्हन्नन्दन के पास रहकर अंगोंका अध्ययन किया तथा दर्शन विशुद्धि आदि सोलह कारण भावनाओं का चिन्तन किया, जिस से उसके जगतमें धार्मिक क्रान्ति मचा देनेवाली तीर्थकर नामक महापुण्य प्रकृतिका बन्ध हो गया । इस तरह उसने बहुत दिनों तक तपस्या कर खोटे कर्मों का आना (आस्त्रव) बन्द कर दिया और शुभ कर्मों का आना प्रारम्भ कराया । आयुके अन्त में वह समाधिपूर्वक शरीर छोड़कर वह मध्यम ग्रैवेयक के सुभद्र विमानमें जाकर अहमिन्द्र हुआ । वहां उसकी आयु सत्ताईस सागर प्रमाण थी, शरीर की उंचाई दो हाथ की थी, लेश्या शुक्ल थी । वह सत्ताईस हजार वर्ष बीत जाने पर एक बार मानसिक आहार ग्रहण करता था । और सत्ताईस पक्ष बाद एक बार सुगन्धित श्वास लेता था । वहां वह इच्छा मात्रसे प्राप्त हुई उत्तम द्रव्योंसे जिनेन्द्र देवकी प्रतिमाओंकी पूजा करता और स्वयं मिले हुए देवोंसे जिनेन्द्र देवकी प्रतिमाओंकी पूजा करता और स्वयं मिले हुए देवोंके साथ तरह तरह ही तत्व चर्चाएं करता था । जो कहा जाता है कि सुखमें जाता हुआ काल मालूम नहीं होता वह बिलकुल सत्य है । अहमिन्द्र को अपनी बीतती हुई आयु का पता नहीं चला । जब सिर्फ छह माह की आयु बाकी रह गई तब उसे मणिमाला आदि वस्तुओं पर कुछ फीकापन दिखा । जिससे निश्चय कर लिया कि अब मुझे यहां से बहुत जल्दी कूचकर नरलोकमें जाना होगा । उसे उतनी विशाल आयु बीत जाने पर आश्चर्य हुआ . उसने सोचा कि मैंने अपना समस्त जीवन यों ही बिता दिया आत्म-कल्याण की और कुछ भी प्रयत्न नहीं किया, इत्यादि विचार कर उसने अधिक रूप से जिन अर्चा आदि कार्य करना शुरू कर दिये । यह अहमिन्द्र ही अग्रिम भवमें भगवान् सुपार्श्वनाथ होगा । अब जहां उत्पन्न होगा वहां का हाल सुनिये ।

## ( २ ) वर्तमान परिचय

जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्रमें एक काशी देश है । उसमें गंगा के तटपर एका वाराणसी (बनारस) नाम की नगरी है । उस समय उस में सुप्रतिष्ठीत नामक महाराजा राज्य करते थे । उनकी महारानी का नाम पृथ्वीसेना था । दोनों दम्पति सुखसे रहते थे । उनके शरीरमें न कोई रोग था, न किसी प्रतिबन्धि की चिन्ता ही थी पाठक उपर जिस अहमिन्द्रसे परिचित हो आये हैं, उसकी आयु जब वहां सिर्फ छः माहकी बाकी रह गई थी तभीसे यहां महाराज सुप्रतिष्ठित के घर पर देवोंने रत्नोकी वर्षा करनी शुरू कर दी थी । कुछ समय बाद भादों सुदी छठके दिन विशाखा नक्षत्र में महारानी पृथ्वीसेना ने रात्रि के पिछले भागमें हाथी वृषभ आदि सोलह स्वप्न देखे तथा अन्तमें मुंह में प्रवेश करता हुआ एक सुरम्य हाथी देखा ।

अर्थात् उसी समय वह अहमिन्द्र देव पर्याय छोड़कर माता पृथ्वीसेना के गर्भ में आया। सुबह होते ही जब महारानी ने- पतिदेवने स्वप्नों का फल पूछा. तब उन्होंने हर्ष से पुलकित बदन होत हुए कहाकि प्रिये आज तुम्हारा स्त्री जीवन सफल हुआ और मेरा भी गृहस्थ जीवन निष्फल नहीं गया। आज तुम्हारे गर्भ में तीर्थकर पुत्रने अवतार लिया है। यह कहकर उन्होंने रानी के लिये तीर्थकर के अगण्य पुण्यकी महिमा बतलाई। पतिदेव के मुंहसे अपने भावी पुत्रकी महिमा सुनकर महारानीके हर्षका पार नहीं रहा। उस समय देव-देवियोंने आकर सुप्रतिष्ठित महाराज और पृथ्वीसेना महारानी का खूब सत्कार किया। स्वर्ग से साथ में लाये हुए वस्त्राभूषणों से उन्हें अलंकृत किया तथा अनेक इन्द्रकी आज्ञासे अनेक देव कुमारियां माता की सेवा. करती थी। जब क्रम-क्रमसे गर्भ - कालके दिन पूर्ण हो गये तब पृथ्वीसेनाने ज्येष्ठ शुक्ला द्वादशीके दिन अहमिन्द्र नामके शुभ योगमें पुत्र रत्न उत्पन्न किया। पुत्रकी कांतिसे समस्त प्रसूति - गृह प्रकाशित हो गया था। इसलिए देवियोंने - जो दीपमाला जला रखी थी, उसका सिर्फ मंगल शुभाचार मात्र ही प्रयोजन रह गया था। जन्म होते ही समस्त देव असंख्य देव परिवारके साथ बनारस आये और वहांसे बाल तीर्थकरको लेकर मेरु पर्वत पर गये। वहां उन्होंने पाण्डुक बनमें पाण्डुक-शिला पर विराजमान कर जिन बालकका क्षीर-सागरके जलसे महाभिषेक किया। वहीं गद्य पद्यमयी भाषासे उनकी स्तुति की। अनन्तर वहांसे वापिस आकर उन्होंने जिन बालकको माताकी गोदमें दे दिया। बालकका मुखचन्द्र देखकर माता पृथ्वीसेना का आनन्द-सागर लहराने लगा। महाराज सुप्रतिष्ठितकी सलाहसे- इन्द्रने बालक का नाम सुपार्श्व रक्खा। उसी समय इन्द्रने अपने ताण्डव नृत्यसे उपस्थित जनता को अत्यन्त आनन्दित किया था। जन्मोत्सवके उपलक्ष्यमें बाराणसी पुरी की जो सजावट की गई थी उसके समने पुरन्दरपुरी (अमरावती) बहुत फीकी मालूम होती थी। उत्सव मनाकर देव लोग अपने अपने स्थानों पर वापिस चले गये। पर इन्द्रकी आज्ञासे कुद देव बालक का रूप धारणकर हमेशा भगवान् सुपार्श्वनाथके पास रहते थे. जो कि उन्हें तरह तरहकी चेष्टाओंसे अनन्दित करते रहते थे। महाराज सुप्रतिष्ठितके घर बालक सुपार्श्वनाथके लालन पालनमें कोई कमी नहीं थी, फिर भी इन्द्र स्वर्गसे मनो-विनोदके लिये कल्पवृक्षके फूलों की मालाएं मनोहर आभूषण और अनोखे खिलौने आदि भेजा करता था। बालक सुपार्श्वनाथ भी दुजके चन्द्रमाकी तरह बढ़ने लगे। मुंह पर हमेशा मन्द मुसकान रहती थी। धीरे धीरे समय बीतता गया। भगवान् सुपार्श्वनाथ बाल्य अवस्था पार कर कुमार अवस्थामें पहुंचे और फिर कुमार अवस्था भी पार कर यौवन अवस्थामें पहुंचे। छठवें तीर्थकर भगवान पद्मप्रभके मोक्ष जानेके बाद नौ हजार करोड़ सागर बीत जाने पर श्री सुपार्श्वनाथ हुए थे। उनकी आयु बीस लाख पूर्व की थी और शरीरकी उंचाई दो सौ धनुष की थी। वे अपनी कान्तिसे चन्द्रमाको भी लज्जित करते थे। जनमसे पांच लाख पूर्व बीत जाने पर उन्हें राज्य मिला। राज्य पाकर उन्होंने प्रजाका पालन किया। वे हमेशा सज्जनोंके अनुग्रह और दुर्जनोंके निग्रहका ख्याल रखते थे। उनका शासन अत्यन्त लोकप्रिय था इसलिये उन्हें जीवनमें-किसी शत्रुका सामना नहीं करना पड़ा था। सुप्रतिष्ठित महाराजने आर्य कन्याओंके साथ

इनका विवाह किया था । भगवान सुपार्श्वनाथ अपनी मनोरम चेष्टाओंसे उन आर्य महिलाओंको हमेशा हर्षित रखते थे । बीच बीचमें इन्द्र, नृत्य गोष्ठी, वाद्य गोष्ठी संगीत गोष्ठी आदिसे विनोद कराक भगवानको प्रसन्न करता रहता था । उस समय सुपार्श्वनाथ जो सुख बोगते थे, शतांश भी किसी दूसरे को प्राप्त नहीं था । भोग बोगते हुए भी वे उनमें तन्मय नहीं होते थे, इसलिये उनके बोगीय भोग नूतन प्रकार से कर्म-बन्धके कारण नहीं होते थे । इस तरह सुख पूर्वक राज्य करते हुए जब उनकी आयु बीस पूर्वाङ्क. कम एक लाख पूर्वकी रह गई तब उन्हें किसी कारणवश संसारके बढ़ानेवाले विषय भोगोंसे विरक्ति हो गई । उन्होंने अपनी पिछली आयुके व्यर्थ बीत जानेपर घोर पश्चात्ताप किया और राज्य कार्य, गृहस्थी, पुत्र मित्र आदि सबसे मोह छोड़कर बनमें जा तप करनेका दृढ़ निश्चय कर लिया । लौकान्तिक देवोंने भी आकर उनके विचारों का समर्थन किया । देव देवियोंने वैराग्य वर्द्धक चेष्टाओंसे तपःकल्याणकका उत्सव मनाना प्रारम्भ किया । भगवान् सुपार्श्वनाथ राज्यका भार पुत्रको सौंपकर देवनिर्मित मनोगति नामकी पालकीपर सवार हुए । देव उस पालकीको बनारसके समीपवर्ती सहेतुक बनमें ले गये । पालकीसे उतर कर उन्होंने गुरु जनोंकी सम्मति पूर्वक ज्येष्ठ शुक्ला व्दादशीके दिन विशाखा नक्षत्रमें शामके समय ऋ ऑनमःसिध्देभ्यःछ कहते हुए दिगम्बर दीक्षा धारण कर ली । उनके साथमें एक हजार राजा और भी दीक्षित हुये ।

मुनिराज सुपार्श्वनाथने दीक्षित होते ही इतना एकाग्र ध्यान किया था । जिससे उन्हें उसी समय अनेक ऋद्धियां और मनः पर्यय ज्ञान प्राप्त हो गया था । दो दिनोंके उपवासके बाद वे आहार लेनेके लिये सौंमखेट नामके नगरमें गये । वहां राजा महेन्द्र दत्तने पड़गाह कर नवधा भक्तिपूर्व आहार दिया । पात्रदान के प्रभाव से राजा महेन्द्रदत्त के घरपर देवोंने पंचारश्चर्य प्रकट किये । भगवान सुपार्श्वनाथ आहार लेकर बन लौट आये । तदनन्तर वर्षोतक उन्होंने छद्मस्थ अवस्था में मौनपूर्वक तपश्चरण किया । एक दिन उसी सहेतुक बनमें दोनों दिनों के उपवास का नियम लेकर शिरीष वृक्षके नीचे विराजमान हुए । वहीं पर उन्होंने क्षपक श्रेणी चढ़कर क्रमसे अधःकरण अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण रूप भावों से मोहनीय कर्मका क्षय कर बारवां क्षीणमोह गुणस्थान प्राप्त किया । और उसके अन्तमें ज्ञानावरणी, दर्शनावरणी और अन्तराय इन तीन घातिया कर्मोंका क्षय कर केवलज्ञान प्राप्त कर लिया । अब तीनों लोक और तीनों कालके अनन्त पदार् उनके सामने हस्तामलवकवत् झकलने लगे । देवोंने आकर कैवल्य प्रप्ति का उत्सव किया । इन्द्रकी आज्ञा पाकर कुबेरने विस्तृत समवसरण बनाया । उसके बीचमें स्थित होकर पूर्णज्ञानी योगी भगवान् सुपार्श्वनाथने अपनी मौन मुद्रा भंग की-दिव्य उपदेश दिया । सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान सम्यक्चरित्र, उत्तम क्षमा आदि आत्म धर्मोंका स्वरूप समझाया । चतुर्गति रूप संसार के दुःखोंका वर्णन किया, जिसके भयसे श्रोताओंके शरीर में रोमांच हो आये । कितने ही आसन्न भव नरनारियोंने मुनि आर्यिकाओंके ब्रत ग्रहण किये । और कितने पुरुष, स्त्रियोंने श्रावक-श्राविकाओंके ब्रत

धारण किये । उपदेशके बाद इन्द्रने उनके अन्य क्षेत्रोंमें विहार करने के लिये प्रार्थना की थी अवश्य, पर वह प्रार्थना नियोगकी पूर्तिमात्र ही थी, क्योंकि उनका विहार स्वयं होता है ।

अनेक देशों मे घूम कर उन्होंने धर्म का खूब प्रचार किया । असंख्य जीव राशि को संसार के दुःकोसे छुड़ाकर मोक्ष के अनन्त प्राप्त कराये । अनेक जगह करने से उनकी शिष्य परम्परा भी बहुत अधिक हो गई थी । कितनी ? सुनिये - उनके समवसरणमे बल आदि पंचानवे गणधर थे, दो हजार तीस, ग्यारह अंग ओर चौदह पूर्वोके ज्ञाता थे, दो लाख चवालीस हजार नौ सौ बीस शिक्षक थे, नौ हजार अवधिज्ञानी थे, ग्यारह हजार केवलज्ञानी थे, पन्द्रह हजार तीन सौ विक्रिया ऋद्धिके धारण थे, नौ हजार एक सौ पचास मनःपर्यय ज्ञानी थे और आठ हजार छहसो वादी थे । इस तरह सब मिलकर तीन लाख मुनिराज थे । इनके सिवाय मीनार्याको आदि लेकर तीन लाख हजार आर्यिकाएं थीं । तीन लाख श्रावक, पांच लाख श्राविकाएं असंख्यात देव देवियां तिर्यच थे । विहार करते कते जब उनकी आयु सिर्फ एक माह बाकी रह गई, तब वे सम्मेद शिखर पर पहुंचे और वहां योग निराध कर प्रतिमा योग से विराजमान हो गये । वहींसे उन्होंने शुक्ल ध्यान के अन्तिम बेद सुक्ष्म -

क्रिया प्रतिपाती और व्युपरत क्रिया निवृत्ति केद्वारा अघातिया चतुष्क का नाश कर फाल्गुन शुक्ला सप्तमी के दिन विशाखा नक्षत्रमें सूर्योदय के समय एक हजार मुनियोंके साथ मोक्ष प्राप्त कर लिया । देवोंने आकर उनके निर्वाण क्षेत्र की पूजा की ।

भगवान चन्द्रप्रभ

सम्पूर्ण : किमयं शरच्छशधरः किं वार्पितो दर्पणः

सर्वार्थावगते : किमेष विलसप्तीयूषपिण्डः पृथुः ।

किंपुण्याणुमयश्चयोय मिति यद्वक्त्राम्बुजं शंक्यते : ।

सोयंचन्द्र जिनस्तपो व्यपहरन्नं हो भयाद्रक्षतात् ॥ आचार्य गुणभद्र

क्या यह शरद ऋतु का पूर्ण चन्द्रमा है अथवा सब पदार्थों को जानने के लिये रक्खा हुआ दर्पण है ? क्या यह शोभायमान अमृत का विशाल पिण्ड है ? या पुण्य परमाणुओं का बना हुआ पिण्ड है ? इस तरह जिन के मुख-कमलको देखकर शंका होती हैं, वे श्रीचन्द्रप्रभ महाराज अज्ञानतम को नष्ट करते हुए पापरो पी भयसे हम सबकी रक्षा करें .

( १ ) पूर्वभव परिचय

असंख्यात द्वीप समुद्रो से घिरे हुए मध्य लोकमें एक पुष्कर द्वीप है । उसके बीच में चूड़ी के आकार वाला मुनषोत्तर पर्वत पड़ा हुआ है, जिससे उसके दो भेद हो गये हैं । उनमें से पूर्वार्ध भाग तक ही मनुष्यों का सद्भाव पाया जाता है । पुष्करार्ध द्वाप में क्षेत्र वगैरह की रचना घातकी खण्ड की तरह है अर्थात् जम्बूद्वीप से दूनी है । उनमें पूर्व और पश्चिम दिशा में दो मंदर-मेरु पर्वत हैं । पूर्व दिशा के मेरु से पश्चिम की ओर एक बड़ा भारी विदेह क्षेत्र है । उनमें सीता नदी के उत्तर तटपर एक सुगन्धि

नाम का देश है । जो हर एक तरह से सम्पन्न है । उस में श्रीपुर नाम का नगर था, जिस में किसी समय श्रीषेय नामका राजा राज्य करता था । वह राजा बहुत ही बलवान था, दयालु था, धर्मात्मा था और नीतिज्ञ था । वह हमेशा सोच विचारकर कार्य करता जिस से उसे कार्य कर पश्चाताप नहीं करना पड़ता था । उसकी महारानी का नाम क्षीकान्ता था । श्रीकान्ताने अपने दिव्य सौन्दर्य से काम-कामिनी रति को भी पराजित कर दिया था । दोनों दम्पतियोंका परस्पर अटूट प्रेम था, इसलिये वे अपने को सबसे सुखी समझते हुए समय बिताते थे । धीरे-धीरे श्रीकान्ता का यौवन व्यक्तीत होनेको आया पर कोई संतान नहीं हुई इसलिये वह हमेशा दुखी रहती थी । एक दिन रानी श्रीकान्ता कुछ सहेलियों के साथ मकान की छतपर बैठ नगरकी शोभा निहार रही थी उसकी दृष्टी गेंद खेलते हुए सेठके लड़कोंपर पड़ी लड़कोंको देखते ही उसे पुत्र न होनेकी चिन्ताने धर दबाया । उसका प्रसन्न फूल - सा मुक मुरझा गया, मुखसे दीर्घ और गर्म गर्म श्वासें निकलने लगीं आंखोंसे आंसुओं की धारा बह निकली । उसने भग्न हृदय सो सोचा-जिसके ये पुत्र हैं उसी स्त्रीका जन्म सफल है । सचमुच, फलरहित लता के समान वन्ध्या (फल रहित) स्त्रीकी कोई शोभा नहीं होती है । सच कहा है कि पुत्र केबिना संसार शुन्य दिखता है । इत्यादि विचारकर वह छतसे नीचे उतर आई और खिन्न चित्त होकर शयनागार में पड़ी रही । जब सहेलियों व्दारा राजा को उसकेखिन्न होने का समाचार मिला तब वह शीघ्र ही उस केपास पहुंचा ।

और कोमल शब्दों में दुःखका कारण पूछने लगा । बहुत बार पूछने पर भी जब श्रीकान्ता ने कोई जवाब नहीं दिया तब उसकी एक सहेलीने जो कि हृदय की बात जानती थी, राजा को छत परका समस्त वृत्तान्त कह सुनाया । सुनकर उसे भी दुःख हुआ पर कर क्या सकता था ? आखिर धैर्य धारणकर रानी को मीठे शब्दों में समझाने लगा कि जो वस्तु मनुष्य को पुरु षार्थ से सिध्द नहीं हो सकती, उसकी चिन्ता नहीं करनी चाहिये । कर्मोंकेऊपर किसका वश है ? तुम्ही कहो, किसी तीव्र पापका उदय ही पुत्र-प्राप्ति होने का बाधक कारण है इसलिये पात्र दान, जिनपूजन, व्रत, उपवास आदि शुभ कार्य करो जिससे अशुभ करामोका बल नष्ट होकर शुभ कर्मोंका बल बढ़े ।

प्राणनाथ का उपदेश सुनकर श्रीकान्ताने बहुत कुछ अंशों में पुत्र न होने को शोक छेंड दिया और पहले की अपेक्षा बहुत अधिक पात्रदान आदि शुभ क्रियाएं करने लगी । एक दिन राजा श्रीषेय महारानी श्रीकान्ता के साथ बनमें घूम रहा था वहांपर उसकी दृष्टि एक मुनिराज केऊपर पड़ी उसने रानी के साथ साथ उन्हें नमस्कार किया और धर्मश्रवण करने की इच्छासे उनके पास बैठे गया । मुनिराजने सारगग्भित शब्दोंमे धर्म काव्याख्यान दिया, जिससे राजा का मन बहुत ही हर्षित हुआ । धर्मश्रवण करने केबाद उसने मुनिराज से पूछा-नाथ ! मैं इस तरह कबतक गृह जंजाल में फंसा रहूंगा ? क्या कभी मुझे दिगम्बर मुद्रा धारण करने का सौभाग्य प्राप्त होगा ? उत्तर में मुनिराजने कहा राजन ! तुम्हारे हृदयमें हमेशा पुत्र की इच्छा बनी रहती है सो जबतक तुम्हारे पुत्र न होगा तबतक वह इच्छा तुम्हारा पिंड न छोड़ेगी । बस, पुत्र की इच्छाही तुम्हारे मुनि बनने में वाधक कारण है । आपकी इस हृदयवल्लभा

श्रीकान्ताने पूर्वभव में गर्भभार से पीड़ित एक नूतन युवति को देखकर निदान किया था कि मेरे कभी यौवन अवस्था में सन्तान न हो । इस निदानके कारण ही अबतक इसके पुत्र नहीं हुआ हैं । पर अब निदान बन्ध के कारण बंधे हुए दुष्कर्मोंका फल दूर होने वाला है, इसलिये शीघ्र ही इस के पुत्र होगा । पुत्र को राज्य देकर आप भी दीक्षित हो जावेंगे । यह कहकर उन्होंने माहत्म्य बतलाकर राजा रानी के लिये लिये अष्टान्हि का व्रत दिया । राजदम्पति मुनिराज के द्वारा दिये हुए व्रतको हृदयसे स्वीकार कर घर को वापिस लौट आये । जब अष्टान्हिक पर्व आया तब दोनोंने अबिषेक पूर्वक सिध्द यन्त्र की पूजा की और आठ दिनतक यथाशक्ति उपवास किये जिनसे उन्हें असीम पुण्य कर्मका बन्ध हुआ । कुछ दिनों बाद रानी श्रीकान्ताने रात्रिके पिछले भागमें हाथी, सिंह, चन्द्रमा और लक्ष्मीका अबिषेक ये चार स्वप्न देखे । उसी समय गर्भाधान हो गया । धीरे धीरे उसके शरीर में गर्भके चिन्ह प्रकट हो गये, शरीर पाण्डु वर्ण हो गया, आंखों में कुछ हरापण दीखने लगा, स्तन स्तूप और कृष्ण मुक हो गये । उदर भारी हो गया और जिम्हाई आने लगी । प्रियतमा के शरीर में गर्भ के चिन्ह प्रकट हुए देखकर राज श्रीषेण बहुत ही हर्षित होता था । नव माह बाद उस के पुत्र उत्पन्न हुआ । राजा ने पुत्र के उत्पत्ति का खूब उत्सव किया याचकों को मनचाहा दान दिया, जिन पूजन आदि पुण्य कर्म कराये । ढलती अवस्था में पुत्र पाकर श्रीकान्ता को कितना आनंद हुआ होगा यह तुच्छ लेखनी से नहीं लिखा जा सकता ।

राजाने बन्धु बान्धकों की सलाह से पुत्र का नाम श्रीवर्मा रक्खा । श्रीवर्मा धीरे धीरे बढ़ने लगा । जैसे जैसे उस की अवस्था बढ़ती जाती थी वैसे वैसे ही उसके गुणोंका विकाश होता जाता था । जब कुमार राज्य कार्य संभालने के योग्य हो गया तब राजा उसपर राज्य का भार छोड़कर अभिलषित भोग भोगने लगा । एक दिन वहां के शिवंकर नामक उपवन में श्रीप्रभ नामक मुनिराज आये । बनमाली ने राजा के लिए मुनि आगमन का समाचार सुनाया । राजा श्रीषेणभी हर्षित चित्त होकर मुनिवन्दना के लिये गया । वहां मुनिराज के मुंह से धर्म का स्वरूप और संसारका दुःख सुनकर उसके हृदय में वैराग्य उत्पन्न हो गया जिससे उसने श्रीवर्माको-राज्य देकर शीघ्र ही जिन दीक्षा धारण कर ली । श्रीवर्मा राज्य पाकर बहुत प्रसन्न नहीं हुआ क्योंकि वह हमेशा उदासीन रहता था । उसकी यही इच्छा बनी रहती थी कि मैं कब साधुवृत्ति धारण करूं . पर परिस्थिति देखकर उसे राज्य स्वीकार करना पड़ा था । श्रीवर्मा बहुत ही चतुर पुरुष था । उसने जिस तरह वाह्य शत्रुओं को जीता था उसी तरह काम, क्रोध आदि अन्तरदू. शत्रुओंको-भी जीत लिया था । एक दिन श्रीवर्मा परिवार के कुछ लोगोंके साथ मकान की छतपर बैठकर प्रकृतिकी अनूठी शोभा देख रहा था । कि इतनेमें आकाश से उल्कापात हुआ ।

उसे देखकर उसका चित्त सहसा विरक्त हो गया । उसने उल्का की तरह संसारके सब पदार्थोंकी अस्थिरता को विचार कर दीक्षा धारण करनेका दृढ़ निश्चय कर लिया ओर दूसरे दिन श्रीकान्त नाम के बड़े पुत्र के लिये राज्य देकर श्रीप्रभ आचार्य के पास दिगम्बर दीक्षा ले ली । अन्तमें वह श्रीप्रभ नामक पर्वत पर सन्यास पूर्वक शरीर छोड़कर पहले स्वर्ग के श्रीप्रभ विमान में श्रीधर नाम का देव हुआ । वहां उसकी दो सागर की आयु थी, सात हाथ का दिव्य वैक्रियिक शरीर था, पीत लेश्या थी, वह दो हजार वर्ष बाद मानसिक आहार लेता और दो पक्ष बाद श्वासोच्छ्वास करता । उसे जन्म से ही अवधि ज्ञान था, अणिता

महिमा आदि ऋद्धियां प्राप्त थीं । वहां वह अनेक देवाङ्गनाओंके साथ इच्छानुसार क्रीड़ा करता हुआ सुखसे समय बिताने लगा । दातकी खण्ड द्वीप में दक्षिण की ओर इष्वाकार पर्वत है ।



उसके पूर्व भरतक्षेत्र के अलका नामक देश में एक अयोध्या नाम की नगरी है । उस में किसी समय अजितमय नाम का राजा राज्य करता था । उसकी स्त्रीका नाम अजितसेना था । एक दिन रातमें अजितसेनाने हाथी, बैल, सिंह, चन्द्रमा, सूर्य पद्म सरोवर, शंख और जल से भरा हुआ घट ये आठ स्वप्न देखे । सबेरा होते पतिदेव महाराज अजितंजय से स्वप्नों का फल पूछा । तब उन्होंने कहा-कि आज तुम्हारे गर्भमें किसी पुण्यात्मा जीवने अवतरण किया है । ये स्वप्न उसीके गुणोंका सुयश वर्णन करते हैं । वह हाथीके देखने से गम्भीर, बैल और सिंह के देखने से अत्यन्त बलवान, चन्द्रमा को देखनेसे सबको प्रसन्न करने वाला, सूर्य के देखने से तेजस्वी, पद्म-सरोवर के देखने से निधियों का स्वामी होगा । स्वप्नोंका फल सुनकर रानी अजितसेना को अपार हर्ष हुआ । पाठक यह जानने-केलिये उत्सुक होंगे कि अजितसेना के गर्भ में किस पुण्यात्माने अवतरण लिया है । उसका उत्तर यह है कि उपर पहले स्वर्ग के श्रीप्रभ विमान में जिस श्रीधर देव का कथन कर आये है, वही वहां की आयु पूर्णकर महारानी अजितसेना के गर्भ में आया हैं गभकाल व्यतीत होने पर रानीने शुभ मुहूर्त में पुत्ररत्न पैदा किया, जो बड़ा ही पुण्यशाली था । राजाने उसका नाम अजितसेन रखा । अजितसेन बड़े प्यार से पाला गया जब उसकी अवस्था योग्य हो गई तब राज अजितंजय ने उसे युवराज बना दिया और तरह तरह की राजनिति का उपदेश दिया ।

एक दिन महाराज अजितंजय युवराज के साथ राजसभा में बैठे हुए थे इतने में वहां से एक चन्द्ररू चि नाम का असुर निकला । ज्योंहि उसकी दृष्टि युवराज पर पड़ी त्योंही उसे अपने पूर्वभव के बैर का स्मरण हो आया । वह क्रोध से कांपने लगा, उसकी आंखे लाल हो गई और भौंहे टेढ़ी । बदला चुकाने के लिये यही समय योग्य है ऐसा सोचकर उसने समस्त सभाके लोगोंको माया से मूर्छित कर दिया और युवराज को उठाकर आकाशमें ले गया । इधर जब माया-मूर्छा दूर हुई तब राजा अजितंजय पास में पुत्र को न पाकर बहुत दुखी हुए । उन्होंने उस समय हृदय को पानी पानी कर देनेवाले शब्दोंमें विलाप किया पर कोई कर ही क्या सकता था । चारों ओर वेगशाली घुड़सवार छोड़े गये, पर कहीं उसका पता न चला । उसी दिन जब राजपुत्र के विरह में रू दन कर रहा था तब आकाशसे कोई तपोभूषण नाम के मुनिराज राजसभा में आये । राजाने उनका योग्य सत्कार किया । मुनिराजके आगमनसे उसे इतना अधिक हर्ष हुआ था कि वह समय पुत्रके हरे जानेका भी दुख भूल गया था । उसने नम्र वाणीमें मुनिराज ती स्तुति की । धर्मवृद्धिरस्तु कहते हुए मुनिराजने कहा राजन् ! छ मैं अवधिज्ञान रू पी लोचनसे तुम्हें व्याकुल देखकर संसारका स्वरूप बतलानेके लिये आया हूं । संसार वही है जहां पर इष्ट वियोग और अनिष्ट संयोग हुआ करते हैं । अशुभ कर्मके उदयसे प्रायः समस्तप्राणियों को इष्टका वियोग ओर अनिष्टका संयोग हुआ करता है । आप विद्वान हैं । इसलिये आपको पुत्र वियोग का दुःख नहीं करना चाहिये । विश्वास रखिये आपका पुत्र कुछ दिनोंमें बड़ें वैभवके साथ आप के पास आ जायेगा

छ । इतना कहकर मुनिराज तपोभूषण आकाश मार्गसे बिहार और राज भी शोक ( आश्चर्य ) पूर्वक समय बिताने लगे । अब सुनिये युवराज का हाल चन्द्ररूचि असुर युवराज को सभा क्षेत्रसे उठाकर आकाश में ले गया और वहां उसके मारने केलिये उपसुक्त स्थान की तलाश करने लगा । अन्त में उसने बहुत जगह तलाश करने के बाद युवराज को मगरमच्छ आदिसे भरे हुये एक मनोरम नाम के तालाब में आकाश से पटक दिया और आप निच्छिंत होकर अपने घर पर चला गया । युवराज को उसने बहुत ऊंचेसे पटका अवश्य था पर पुण्यके उदय से उसे कोई चोट नहीं लगी । अपनी बुजाओं से तैरकर शीघ्र ही तटपर आ गया । तालाब से निकलते ही उसे चारों ओर भयानक जंगल दिखलाई पड़ा ।

उस मे वृक्ष इतने घने थे कि दिन में भी वहां सूर्यका प्रकाश नहीं फैल पाता था । जगह जगह पर सिंह व्याघ्र, आदि दुष्ट जीव गरज रहे थे । इतना सब होने पर भी अल्पवयस्क युवराज ने धैर्य नहीं छोडा । वह एग संकीर्ण मार्गसे उस भयानक अटवीमें - घुसा । कुछ दूर जाने पर उसे एक पर्वत मिला । अटवी की अन्त जानने केलिये ज्योंही वह पर्वत पर चढ़ा त्यों ही वहां वर्षातके मेघ के समान एक काल पुरुष उसके सामने आया और क्रोधसे गरजकर करने लगा के छ कौन है तू जो मरने की इच्छासे मेरे स्थानपर आया है ?

जहां सूर्य और चन्द्रमा भी पादचार किरणों का फैलव नहीं कर सकते वहां तेरा आगमन कैसा ?

मैं दैत्य हूं इसी समय तुझे यमलोक पहुंचाये देता हूं । उसके वचन सुनकर युवराज ने हंसते हुए कहा कि आप बड़े योद्धा मालूम होते है । इस भीषण अटवी पर आपका क्या अधिकार है ? यहांका राजा कोई तो मृगराज होना चाहिये । पर कुमार के शांती मय वार्तालाप का उस पर कुछ भी असर नहीं पड़ा । वहां पहले की तरह ही यद्वा तद्वा बोलता रहा । तब कुमार को भी क्रोध आ गया । दोनों में डटकर मल्ल युद्ध हुआ । बन देवियां झाडियोंसे छिपकर दोनों की युद्ध लीलाएं देख रही थीं । कुछसमय बाद कुमारने उसे भपूर पछाडने के लिए उठाया और आकाश में घुमाकर पछाडना ही चाहते थे कि उसने अपना मायावी वेष छोड़ दिया और असली रूपसे प्रकट होकर कहने लगा - च बस, कुमार ! मैं समझ गया कि आप बहुत ही बलवान पुरुष है । उस मा का धन्य है जिसने आप जैसा पुत्र उत्पन्न किया । मैं हिरण्य नामका देव हूं । अकृत्रिम चैत्यालयों की बन्दना केलिए गया था । वहांसे लौटकर यहां आया था और कृत्रिम वेष से यहां मैंने आपकी परीक्षा की । आप परीक्षा पास हो गये । आप धीर हों, वीर हो, गम्भीर हों । मैं आप के गुणों से उत्पन्न प्रसन्न हूं । अब आप कुछ भी चिन्ता न किजिये,

आप विशाल वैभवके साथ कुछ दिनोंमे ही अपने माता पिता के पास पहुंचे जायेंगे अब सुनिये मैं आपके जन्मान्तरकी कथा कहता हूं छ - इस भवसे पूर्व तीसरे भव में आप सुगन्धि देश का राजा थे, आपकी राजधानी श्रीपुरी थी । वहां आप श्रीवर्मा नाम से प्रसिद्ध थे । उसी नगर में शशी और सूर्य नाम के दो किसान रहते थे । एक दिन शशीने घरमें सन्धि कर सूर्यका धन हर लिया तब सूर्यने -आपसे निवेदन किया तब आपने पता चलाकर शशी को खूब पिटवाया ओर सूर्य का धन वापिस दिलवा दिया ।

पिटते पिटते शशी मर गया जिससे वह चन्द्ररुचि नामका असुर हुआ है और सूर्य मर कर मैं हिरण्य नामका देव हुआ हूं । पूर्वभवकेबैरसे ही चन्द्ररुचिने हरण कर आपकेलिये कष्ट दिया है और मैं उपकारसे कृतज्ञ होकर आपका मित्र हुआ हूं । इतना कहकर वह देव अन्तर्हित हो गया । वहांसे कुमार थोड़ा ही चला था कि वह विशाल अटवी जिसकेकी अन्तं का पता नहीं चलता था समाप्त हो गई । युवराज ने वह सब उस देवका ही प्रभाव समझा । अटवी से निकल कर यह पास के किसी देश में पहुंचा । वहां उसने देखा कि समीपवर्ती नगर से बहुतसे पौरजन घबड़ाये हुए भागे जा रहे हैं । जानने की इच्छासे उसने किसी मनुष्यसे भागने का कारण पूछा । उत्तर में मनुष्यने कहा-क्या आकाशसे पड़ रहे हो जो अपरिचित से बनकर पूछते हो । तब युवराज ने कहा - भाई ! मैं परदेशी आदमी हूं मूझे यहांका कुछ भी हाल मालूम नहीं है । अनुचित न हो तो बतलाने का कष्ट कीजिये छ । युवराजकी नम्र और मधुर वाणीसे प्रसन्न होकर मनुष्य ने कहा तो सुनिये , यह अरिंजय नामका देश है, यह सामनेका नगर इसकी राजधानी है , इसका विपुल है । यहां जयवर्मा राजा राज्य करते हैं उनकी स्त्री का नाम जयश्री हैं । इन दोनोंके एक शशिप्रभा नाम की लड़की है जो सौन्दर्य सागर में तैरती हुई -सी जान पड़ती है । किसी देश के महेन्द्र नामके राजाने महाराज जयवर्मा से शशिप्रभा की याचना की । जयवर्मा उस को साथ शशिप्रभा की शादी करने के लिये तैयार हो गये पर एक निमित्तज्ञानीने महेन्द्र अल्पायु हैं कहकर उन्हें वैसा करनेसे रोक दिया । महेन्द्र को यह बात सह्य नहीं हुई इसलिये वह बड़ी भारी सेनाको लेकर महाराज जयवर्मासे लड़कर जबरदस्ती शशिप्रभा को हरने के लिये आया है । उसकी सेनाने विपुलपुर को चारों ओरसे घेर लिया है । जयवर्माके पास उतनी सेना नहीं है जिससे वह महेन्द्रका सामना कर सके । उसके सैनिक नगरमें उधम मचा रहे हैं इसलिये समस्त पुरवासी डर कर भाहर भागे जा रहे हैं । अब बस मुझे बहुत दूर जाना है । इतना कहकर वह मनुष्य भाग गया । युवराज जब कुतुहल पूर्वक विशाल पुरकी सीमा पर पहुंचे और उसके भीतर जाने लगे तब राजा महेन्द्र के सैनिकोंने उन्हें भीतर जानेसे रोका जिससे उन्हें क्रोध आ गया । युवराजने वहीं पर किसी एक के हाथ से धनुषवाण छीनकर राजा महेन्द्रलिंहसे युध्द करना प्रारम्भ कर दिया और थोड़ी देरमें उसे धराशाली बना दिया । शत्रुकी मृत्यु सुनकर जयवर्मा बहुत ही प्रसन्न हुये । वे कुमारको बड़े आदर सत्कार से अपने घर लिवाले गये वहाँ-शशिप्रभा युवराज पर आसक्त हो गई । राजा जयवर्मा को जब इस बातका पता चला तब उसने हर्षपूर्वक युवराजके साथ शशिप्रभा का विवाह करना स्वीकार कर लिया ।

युवराज कुछ दिनो तक वहीं रहे आये । विजयाधर्द गिरिकी दक्षिण श्रेणीमें एक आदित्य नामका नगर है जो अपनी शोभ से आदित्य-विमान ( सूर्य-विमान ) को भी जीतता है । उस में धरणी-ध्वज नाम का विद्याधर राज्य करता था । धरणीध्वजने अपने पौरु ष से समस्त विद्याधरों को अपने आधीन बना लिया था । एक दिन वह राजसभामें बैठा हुआ था कि वहां पर एक क्षुल्लकजी आये । राजाने उनका खड़े होकर स्वागत किया और उन्हें ऊंचे आसन पर बैठाआ । बातचीत होते होते क्षुल्लकजी ने कहा कि

अरिंजय देशके विपुल नगरके राजा जयवर्मा के एक शशिप्रभा नामकी कन्या है जिसके सात उसका विवाह होगा । वह तुम्हे मारकर भरतक्षेत्र का पालन करेगा क्षुल्लक के वचन सुनकर राजा धरणीध्वजको बहुत दुःख हुआ । जब क्षुल्लकजी चले गये तब उसने कुछ मन्त्रियों की सलाह से विद्याधरों की बड़ी भारी सेना के साथ जाकर विपुल नगर को घेर लिया और वहां के राजा जयवर्मा के पास दूत भेजकर संदेशा कहलाया की तुमने जो एक विदेशी लडके के साथ शशिप्रभा की शादी करना स्वीकार कर लिया है वह ठीक नहीं है क्योंकि जिसके कुल, बल, पौरुष वगैरहका कुछ भी पता नहीं है उसके साथ लडकी की शादी कर देनेसे सिवाय अपयश के कुछ भी हाथ नहीं लगता, इसलिये तुम शीघ्र ही शशिप्रभा का विवाह मेरे साथ कर दो जयवर्मा ने चाहे कुलीन हो या अकुलीन दी हुई कन्या फिर किसी दूसरे को नहीं दी जा सकती, कह कर इनको वापिस कर दिया और लडाईकी तैयारी करनी शुरू कर दी । जयवर्मा को युद्ध केलिये चिन्तित देख कर युवराज अजितसेन ने कहा कि आप मेरे रहते हुए जरा भी चिन्ता न किजियेगा । मैं इन गीदड़ो-को अभी मार कर भगाये देता हूं, ऐसा कहकर युवराज ने हिरण्यक देव का, जिसका पहले अटवीमें वर्णन कर चुके हैं स्मरण किया । स्मरण करते ही वह दिव्य अस्त्र शस्त्रों से भरा हुआ के रथ लेकर युवराज के पास आ गया । समस्त नगरवासियों को आश्चर्य करते हुए युवराज अजितसेन उस रथ पर सवार हुए । हिरण्यक देव चतुराई पूर्वक रथको चलाने लगां विद्याधरेन्द्र धरणी-ध्वज और कुमार अजितसेनकी जमकर लडाई हुई । अन्तमें कुमारने उसे मार दिया जिससे उसकी समस्त सेना भाग खड़ी हुई । कार्य हो चुकने पर युवराजने सम्मान पूर्वक हिरण्यक देवको विदा किया और धूम धामसे नगर में प्रवेश किया । कुमारकी अनुपम वीरता देखकर समस्त पुरु वासी हर्षसे पूले न समाते थे । राजा जयवर्माने किसी दिन शुभमुहूर्तमें युवराजके साथ शशिप्रभाका विवाह कर दिया । विवाह के बाद युवराज कुछ दिन तक वहीं रहे आये और शशिप्रभा के साथ अनेक काम कौतूहल करते रहे फिर कुछ दिनों बाद अयोध्यापुरु वापिस आ गये । पिता अजितंजयने बधू सहित आये हुए पुत्रका बड़े उत्सवके साथ नगर में प्रवेश कराया । पुत्रकी वीर चेष्टाएं सुन सुनकर माता पिता बहुत ही हर्षित होते थे । किसी एक दिन अशोक नामके बनमें स्वयंप्रभ तीर्थकर का समवसरण आया । बनमाली से जब राजा को इस बातका पता चला तब वे शीघ्र ही तीर्थेश्वर की बन्दना केलिये गये । वहां जाकर उन्होंने आठ प्रातिहार्योंसे शोभित स्वयंप्रभ जिनेन्द्रको नमस्कार किया और नमस्कार कर मनुष्यों के कोठे में बैठ गये । जिनेन्द्र के मुखसे संसार का स्वरूप सुनकर वे इतने प्रभावित हुए कि वहीं पर गणधर मगाराजसे दीक्षा लेकर तप करने लगे । युवराज अजितसेन को पिता के वियोगसे बहुत दुःख हुआ पर संसारकी रीतिका विचार कर वे कुछ दिनों बाद शान्त हो गये । मंत्रिमण्डल ने युवराज का राज्याभिषेक किया । उधर महाराज अजितंजय को केवलज्ञान प्राप्त हुआ और इधर अजितसेन की आयुधशाला में चक्रत्न प्रकट हुआ । पहले धर्म कार्य ही करना चाहिये ऐसा सोचकर अजितसेन पहले अजितंजय महाराजके कैवल्य महोत्सव में सामिल हुए । फिर वहांसे आकर दिग्विजय केलिये गये उस समय उनकी विशाल सेना एक लहराते हुए समुद्र की तरह

मालूम होती थी । सब सेना के आगे चक्रवर्त्तन चल रहा था । क्रम क्रम से उन्होंने समस्त भरतक्षेत्र की यात्रा कर उसे अपने आधीन कर लिया । जब चक्रवर्त्तन अजितसेन दिग्विजयी होकर वापिस लौटे तब हजारों मुकुटबद्ध राजाओं ने उनका स्वागत किया । राजधानी आयोध्या में आकर अजितसेन महाराज न्यायपूर्वक प्रजाका करने लगे ।

इनके राज्यमें कभी कोई खाने पीने के लिये दुःखी नहीं होता था । एक दिन इन्होंने मासोपवासी अरिदम महाराज के लिये आहार दान दिया जिससे देवों ने इनके घर पंचाश्चर्य प्रकट किये थे । सच है पात्र दानसे क्या नहीं होता ? किसी दिन राजा अजितसेन वहांके मनोहर नामक उद्यानमें गुणप्रभ तीर्थकर की बन्दना करनेके लिये गये थे । वहां पर उन्होंने तीर्थकर के मुख से धर्म का स्वरूप सुना, अपने भवान्तर पूछे, चारों गतियों के दुःख सुने जिससे उनका हृदय बहुत ही विरक्त हो गया । निदान उन्होंने जितशत्रु पुत्र को राज्य देकर अनेक राजाओंके साथ जिन-दीक्षा धारण कर ली । उन्होंने अतिचार रहित तपश्चरण किया और आयु के अन्त में नमस्तिलक नामक पर्वतपर समाधिपूर्वक शरीर छोड़कर सोलहवें अच्युत स्वर्गके शांतिकार विमान में इन्द्र पद प्राप्त किया । वहा उनकी आयु बाईस सागर की थी, तीन हाथका शरीर था, शुक्ल लेश्या थी, वे बाईस हजार वर्ष बीत जाने पर एक बार मानसिक आहार ग्रहण करते और बाईस पक्ष बाद एक बार श्वास लेते थे । उन्हें जन्म से ही अवधिज्ञान था, वे तीनों लोकों में इच्छानुसार घूम सकते थे । इस तरह वहां चिरकाल तर स्वर्गीय सुख भोगते रहे । धीरे धीरे उनकी बाईस सागर प्रमाण आयु समाप्त, हो गई पर उन्हें कुछ पता नहीं चला । ठीक कहा है - साता उदै न लख परै कैता बीता काल । वहांसे चयकर वह पूर्व घातकी खण्डमें सीता नदी के दखिण तटपर स्थित मंगलावती देश के रत्न संचयपुर नगरमें राजा कनकप्रभ और रानी कनकमालाके पद्मनाभ नामका पुत्र हुआ पद्मनाभ बड़ा ही तार्किक न्यायशास्त्रका वेत्ता था । उसके बल-पौरुष की सब ओर प्रशंसा छाई हुई थी । एक दिन कनकप्रभ महाराज मकानकी छतपर बैठकर नगलकी शोभा देख रहे थे कि उनकी दृष्टि सहसा एक पल्लव-स्वल्पजलासय पर पड़ी । नगर के बहुतसे बैल उसमें पानी पी पी कर बाहर निकलते जाते थे उसीमे एक बूढ़ा बैल भी पानी पीनेके लिये गया पर वह पानी के पास पहुंचने के पहले ही कीचड़में फंस गया । असमर्थ होने के कारण वह कीचड़से बाहर नहीं निकल सका जिससे वह प्यासा बैल वही तड़फड़ाने लगा । उसकी बेचैनी देखकर कनकप्रभ महाराज का हृदय विषय-भोगोंसे अत्यन्त विरक्त हो गया जिससे वे पद्मप्रभ को राज्य देकर श्रीधर मुनिराज के पास दीक्षा ले तपस्या करने लगे । इधर पद्मनाभने नीतिपूर्वक राज्य करना प्रारम्भ कर दिया । उसकी अनेक राजकुमारियों के साथ शादी हुई थी जिनमें सोमप्रभा मुख्य थी । कालक्रम से सोमप्रभा के सुवर्णनाभि नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ । उन सबसे पद्मप्रभ का गार्हस्थ जीवन बहुत ही सुखमय हो गया था ।

एक दिन राजा पद्मनाभ सभा में बैठे हुए कि बनमालीने आकर उन्हें मनोहर नामक उद्यान में श्रीधर मुनिराज के आगमन का शुभ समाचार सुनाया । राजाने प्रसन्न होकर बनमाली को बहुत कुछ

पारितोषिक दिया और सिंहासन से उतरकर जिस ओर मुनिराज विराजमान थे उस ओर सात कदम आगे जाकर उन्हें नमस्कार किया । उसी समय मुनि बन्दनाको चलनेकेलिये नगरमें भेरी बजवाई गई । जब समस्त पुरवासी उत्तम उत्तम वस्त्र आबूषण पहिनकर हाथोंमें पूजाकी सामग्री लिये हुए राजद्वार पर जमा हो गये तब सबको साथ लेकर वे उस उद्यान में गये जहां मुनिराज श्रीधर विराजमान थे । राजाने दूरसे ही राज्यचिन्ह छोड़कर विनीत भावसे बन में प्रवेश किया और मुनिराज के पास पहुंचकर उन्हें अष्टाङ्ग नमस्कार किया । मुनिराजने धर्म वृद्धिरस्तु, कहकर सबके नमस्कार ग्रहण किये । जब जय जयका कोलाहल शान्त हो गया तब राजा पद्मनाभ ने मुनिराज से अनेक दर्शन विषयक प्रश्न किये । मुनिराज के मुखसे समुचित उत्तर पाकर वे बहुत ही हर्षित हुए । बादमें-उसने मुनिराज से अपने पूर्वभव पूछे सो मुनिराजने उनके अनेक पूर्वभवों का वर्ण किया । बनसे लौटकर पद्मनाथ राज भवनमें वापिस आ गये । और वहां कुछ दिनोंतक राज्य शासन करते रहे । अन्तमें उनका चित्त किसी कारण वश विषय वासनाओंसे विरक्त हो गया जिससे उन्होंने सुवर्णनाभि पुत्र को राज्य देकर किन्हीं महामुनिके पास जिनदीक्षा ले ली । उनके साथमें और भी अनेक राजाओंने दीक्षा ली थी । मुनिराज पद्मनाभ ने गुरु के पास रहकर खूब अध्ययन किया जिस से उन्हें ग्यारह अंगो तक का ज्ञान हो गया । उसी समय उन्होंने दर्शन विशुद्धि आदि सोलह कारण भावनाओंका चिन्तवन कर तीर्थकर नामक पुण्य प्रकृति का बन्ध कर लिया और आयुके अनन्तमें सन्यास पूर्वक शरीर छोड़कर जयन्त नामक अनुत्तर विमान में अहमिन्द्र पद प्राप्त किया ।

वहां उनकी आयु तेतीस सागर की थी, एक हात ऊंचा सफेद रंगका शरीर था । वे तेतीस हजार वर्ष आहार और तेतीस पक्ष बाद श्वासोत्थवास ग्रहण करते थे । उन्हें जन्मसे ही अवधिज्ञान था । यह अहमिन्द्र ही आगेके भवमें अष्टम तीर्थेश्वर भगवान् चन्द्रप्रभ होगा ।

हुए बिना नहीं रह सकता । विकृत होने की क्या बात? नष्ट हो जाता है । इस शरीर में राग रहनेसे सम्बन्ध रखने वाले और भी अनेक पदार्थोंसे राग करना पडता है । अब मैं ऐसा काम करूंगा जिससे आगे के भवमें यह शरीर प्राप्त ही न हो । उस समय देवर्षि लौकान्तिक देवोंने भी आकर उनके विचारों का समर्थन का समर्थन किया । भगवान् चन्द्रप्रभ अपने वर चन्द्रपुत्र के लिये राज्य देकर देवनिर्मित विमला पालकीपर सवार हो सर्वर्तुक नामके बनमें पहुंचे और वहां सिद्ध परमेंष्टीको नमस्कार कर पौष कृष्ण एकादशीके दिन अनुराधा नक्षत्रमें एक हजार राजाओं के साथ निर्ग्रथ मुनि हो गये । उन्हें दिक्षाके समय ही मनःपर्याय ज्ञान प्राप्त हो गया था । वे दो दिन बाद आहार लेनेकी इच्छासे नलिनपुर नगरमें गये वहां महाराज सोमदत्तने पडगाह कर उन्हें नवधा भक्ति पूर्वक आहार दिया । पात्र दान के प्रभावसे देवोंने सोमदत्त के घर पंचाश्चर्य प्रकट कीये । मुनिराज चन्द्रप्रभ नलिनपुर से लौटकर वन में फिर ध्यानारूढ हो गये । इस तरह छद्मस्थ अवस्था में तप करते हुए उन्हें तीन माह बीत गये । फिर उसी सर्वर्तुक वनमें नाग वृक्षके नीचे दो दिनके उपवासकी प्रतिज्ञा कर विराजमान हुए । वही उन्होंने क्षपक श्रेणी मांडकर मोहनीय

कर्म का नाश किया। और शुक्ल ध्यानके प्रतापसे शेष तीन घातिया कर्मोंका भी नाश कर दिया। जिससे उन्हें फाल्गुन कृष्ण सप्तमी अनुराधा नक्षत्रमें शामके समय दिव्य ज्योति लोकालोक प्रकाशक केवल ज्ञानप्राप्त हो गया था।

देवोंने आकर ज्ञानकल्याण का उत्सव किया। इन्द्र की आज्ञा पाकर कुवेरने वहींपर समवसरण की रचना की थी जिसमें समस्त प्राणी सुखसे बैठे थे। समवसरणके मध्यमें स्थित होकर भगवान चन्द्रप्रभने अपना मौन भंग किया। अर्थात् दिव्य ध्वनिके द्वारा कल्याणकारी उपदेश दिया। उनके उपदेशसे प्रभावित होकर अनेक नर-नारियोंने मुनि, आर्यिका, श्रावक और श्राविकाओंके ब्रत धारण किये। दिव्य ध्वनि समाप्त होनेके बाद इन्द्रने विहार करनेकी प्रार्थना की जिससे उन्होंने- अनेक देशोंमें विहार किया और अनेक भव्य प्राणियों को संसार सागरसे निकाल कर मोक्ष प्राप्त कराया।

उनके समवसरण में दत्त आदि तेरानवे गणधर थे, दो हजार द्वादशांग के जानकार थे, दो लाख चार सौ शिक्षक थे, दश हजार केवली थे, चौदह हजार विक्रिया ऋद्धि वाले थे, आठ हजार मनःपर्यय ज्ञानी थे, और सात हजार छह सौ वादी थे इस तरह सब मिलाकर ढाई लाख मुनिराज थे। वरुण आदि तीन लाख अस्सी हजार आर्यिकाएं थी। तीन लाख श्रावक और पांच लाख श्राविकाएं थी। असंख्यात देव देवियां और असंख्यात तिर्यच थे। उन्होंने अनेक जगह घूम घूमकर धर्म तीर्थ की प्रवृत्ति की और अन्तमें सम्मेद शिखर पर आ विराजमान हुए। वहां उन्होंने हजार मुनियोंके साथ प्रतिमा योग धारण कीया जिससे उन्हें एक माह बाद फाल्गुन शुक्ला सप्तमी के दिन ज्येष्ठा नक्षत्र में शाम के समय मोक्ष की प्राप्ति हो गई। देवोंने आकर उनके निर्वाण क्षेत्र की पूजा की।

भगवान पुष्पदन्त

शान्तं वपूः श्रवणहरि वचश्चरित्रं, सर्वोपकारी तव देव !ततो भवन्तम् ।

संसार मारव महास्थल रुद्रसान्द्र च्छाया महीरुह मिमे सुविधिं श्रयामः ॥

हे देव ! आपका शरीर शान्त है, वचन कानोको सुख देने वाल है और चरित्र सब को- उपकार करने वाले है इसलिये हम सब, संसार रूपी विशाल मरुस्थलमें सघन छाया वाले वृक्ष स्वरूप आप सुविधिनाथ पुष्पदन्त का आश्रय लेते है।

१ पूर्वभव परिचय

पुष्करार्ध द्वीप के पूर्व मेरुसे पूर्व दिशा की और अत्यन्त प्रसिद्ध विदेह क्षेत्र है उस में सीता नदी के उत्तर तटपर पुष्कलावती देश है जो अनेक समृद्धिशाली ग्राम नगर आदिसे भरा हुआ है। उस में एक पुण्डरीकिणी नाम की नगरी है। उसमें किसी समय महापद्म नाम का राजा राज्य करता था। वह बहुत ही बलवान था, बुद्धिमान था। उसके बाहुबल के सामने अनेक अजेय राजाओंको भी आश्चर्य सागर में गोते लगाने पडते थे। उसके राज्य में खोजने पर भी दरिद्र पुरुष नहीं मिलता था। वह हमेशा विद्वानोंका समुचित आदर करता था और योग्य वृत्तियां दे देकर उन्हें नई बातोंके खोजने के लिये प्रोत्साहित किया

करता था। उसने काम, क्रोध मद, मात्यर्थ, लोभ और मोह इन छह अन्तरंग शत्रुओं को जीत लिया था। समस्त प्रजा उसकी आज्ञा को माला की भांति अपने मस्तक पर धारण करती थी। प्रजा उसकी भलाई के लिये सब कुछ न्यौछावर कर देती थी और वह भी प्रजाकी भलाई के लिये कोई बात उठा नहीं रखता था। एक दिन वहां के मनोहर नामके बनमें महामुनि भूतहित पधारे। नगरके समस्त लोग उनकी बन्दना के लिये गये। राजा महापद्म भी अपने समस्त परिवार के साथ मुनिराजके दर्शनों के लिये गया।

वह वहां पर मुनिश्वर की भव्यमूर्ति और प्रभावक उपदेश से इतना प्रभावित हुआ कि उसने उसी समय राज्य सुख, स्त्री सुख आदिसे मोह छोड़ दिया और धनद नामक पुत्र के लिये- राज्य देकर दीक्षा ले ली। महामुनि भूतहित के पास रहकर उसने कठिन तपस्याएं की और अध्ययन कर ग्यारह अंगोंका ज्ञान प्राप्त कर लिया। किसी समय उसने निर्मल हृदय से दर्शन विशुद्धि आदि सोलह कारण भावनाओं का चिन्तन किया जिससे उसे तीर्थकर नामक पुण्य प्रकृति का बन्ध हो गया। अन्तमें वह समाधिपूर्वक शरीर छोड़ कर चौदहवे आनन्त स्वर्ग में इन्द्र हुआ। वहा उनकी आयु बीस सागर की थी, तीन हाथ का शरीर था, शुक्ल लेश्या थी। वह बीस पक्ष दश माह बाद श्वास लेता था, बीस हजार वर्ष बाद मानसिक आहार लेता था, उसके मानसिक प्रवीचार था और पांचवे नरक तक की बात बतलाने वाला अवधिज्ञान था।

उसके वैत्रियिक शरीर था और उस पर भी अणिमा, गरिमा, लघिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य ईशित्व और वशित्व ये आठ ऋद्धियां थी। वह अनेक क्षेत्रों में घूम-घूमकर प्रकृतिकी सुन्दरता का निरीक्षण करता था। वह कभी उदयाचल की शिखरपर बैठकर सूर्योदय की सुन्दर शोभा देखता, कभी अस्ताचल की चोटियोंपर बैठकर सुर्यास्तकी सुषमा देखता। कभी मेरु पर्वतपर पहुंचकर नन्दन बन में क्रीडा करता, कभी समुद्रोके तटपर बैठकर उसकी लहरों का उत्ताल नर्तन देखता और कभी हरी भरी अटवियोंमें घूमकर हर्षसे नाचते हुए मयूरोंका ताण्डव देखकर खुश होता था। यह इन्द्र ही आगे चलकर पुष्पदन्त तीर्थकर होगा।

## २ वर्तमान परिचय

जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में एक काकन्दी नाम की महा मनोहर नगरी थी। उसमें इक्ष्वाकुवंशीय राजा सुग्रीव राज्य करते थे। उनकी स्त्री का नाम जयरामा था। जब इन्द्रकी आयु वहां पर सिर्फ छह माहकी बाकी रह गई तभीसे देवोंने सुग्रीव महाराज के घर रत्नोंकी वर्षा करनी शुरू कर दी। अनेक देव कुमारियां आ आकर महारानी जयरामा की सेवा करने-लगीं। फाल्गुण कृष्ण नवमी के दिन मूला नक्षत्र में पिछली रात के समय रानी जयरामाने सोलह स्वप्न देखे। उसी समय इन्द्रने स्वर्ग वसुन्धरासे मोह छोड़कर उसके गर्भ में प्रवेश किया।

सवेरा होते ही जब उसने पति देवसे स्वप्नोंका फल पूछा तब उन्होंने कहा की आज तुम्हारे गर्भमें तीर्थकर पुत्र ने अवतार लिया है। वह महा पुण्यशाली पुरुष है। देखो न ! उसके गर्भमें आनेके छह माह



पहलेसे प्रतिदिन करोडो रत्न वरस रहे है और देवकुमारियां तुम्हारी सेवा कर रही है। प्राणनाथ के मुख से स्वप्नों का फल सुनकर रानी जयरामा हर्ष से फूली न समाती थी। जब धीरे धीरे गर्भ का समय पूरा हो गया तब उसने मार्गशीर्ष शुक्ला प्रतिपदाके दिन उत्तम पुत्र उत्पन्न किया। उसी समय इन्द्रादि देवोंने आकर मेरु पर्वतपर क्षीर सागर के जलसे उस सद्य-प्रसूत बालक का जन्माभिषेक किया और पुष्पदन्त नाम रखा। उधर महाराज सुग्रीवने भी खुले दिल से पुत्रोत्पत्ति का उत्सव मनाया। बालक पुष्पदन्त बाल चन्द्र की तरह क्रम-क्रम से बढ़ने लगे। भगवान् चन्द्रप्रभ के मोक्ष जाने के बाद नब्बे करोड सागर बीत जानेपर भगवान् पुष्पदन्त हुए थे इनकी आयु भी इसी अन्तराल में शामिल है। पुष्पदन्त की आयु दो लाख पूर्व की थी शरीर की ऊंचाई सौ धनुषकी थी और लेश्या कुन्द के फुल के समान शुक्ल थी। जब उनकी कुमार अवस्था के पचास हजार पूर्व बीत गये थे तब उन्हें राज्य प्राप्त हुआ था। राज्यकी बागडोर ज्योंही भगवान पुष्पदन्त के हाथ में आई त्योंही उसकी अवस्था बिलकुल बदल गई थी। उनका राज्य क्षेत्र प्रतिदिन बढ़ता जाता था। उनक मित्र राजाओं की संख्या न थी, प्रजा हर प्रकार से सुखी थी। पुष्पदन्त का कुलीन कन्याओं के साथ विवाह हुआ था उनकी रूप-राशि और गरिमा देखकर देव- बालाएं भी । लज्जित हो जाती थी। राज्य करते हुए जब उनके पचास हजार पूर्व और अट्टाईस पूर्वाङ्क और भी व्यातीत हो गये तब किसी एक दिन उल्कापात देखने से उनका हृदय विरक्त हो- गया। वे सोचने लगे- इस संसार में कोई भी पदार्थ स्थिर नहीं है। सूर्योदय के समय जिस वस्तुको देखता हूं उसे सूर्यास्तके समय नहीं पाता हूं । जिस तरह इन्धनसे कभी अग्नि सन्तुष्ट नहीं होती उसी तरह पंचेन्द्रियोंके विषयों से मानव अभिलाषां कभी सन्तुष्ट नहीं होती-पूर्ण नहीं होती। खेद है की मैने अपनी विशाल आयु साधारण मनुष्योंकी तरह योंही बिता दी। दुर्लभ मनुष्य- पर्याय पाकर मैने उनका अभीतक सदुपयोग नहीं किया। आज मेरे अन्तरंग नेत्र खुल गये है जिससे मुझे- कल्याण का मार्ग स्पष्ट दिख रहा है वह यह है की समस्त परिवार एवं राज्य कार्य से वियुक्त हो निर्जन बनमें बैठकर आत्मध्यान करूं। लौकान्तिक देवोंने भी आकर उनके विचारों का समर्थन किया जिससे उनका वैराग्य और भी बढ़ गया। निदान सूमति नामक पुत्र के लिये राज्य का भार सौंपकर देवनिर्मित सूर्यप्रभा पालकीपर सवार हो पुष्पक बनमें - गये। वहां उन्होंने मार्गशीर्ष शुक्ला प्रतिपदा के दिन शाम के समय एक हजार रजाओंके साथ जिन दिक्षा ले ली। उसी समय उन्हें मनःपग्रय ज्ञान प्राप्त हो गया था। देव लोग तपःकल्याणक उत्सव मनाकर अपने स्थानोंपर वापिस चले गये। जब वे दो दिन बाद आहार लेनेके लिये शैलपूर नामके नगरमेंह गये तब उन्हें वहांके राजा पुष्पमित्रने विनयपूर्वक पडगाह कर नवधा भक्तिसे सुन्दर सुस्वादु आहार दिया। पात्र दानसे- प्रभावित होकर देवोंने राजा पुष्पमित्र के घरपर पंचाश्चर्य प्रकट किये। भगवान पुष्पदन्त आहार लेकर बनमें लौट आये और वहां पहलेकी तरह फिरसे आत्मध्यान में लीन हो गये। वे ध्यान पूर्ण होनेपर कभी प्रतिदिन और कभी दो तीन चार या इससे भी अधिक दिनों के अन्तरालसे पास के किसी नगर में आहार लेने के लिये जाते थे और वहांसे लौटकर पुनःबन में ध्यानैकतान हो- जाते थे। इस तरह तपश्चरण करते

हुए जब उनकी छद्मस्थ अवस्था के चार वर्ष व्यतीत हो- गये तब वे दो दिनके उपवासकी प्रतिज्ञा लेकर पुष्पक नामक दिक्षा बनमें नाग वृक्षके नीचे ध्यान लगाकर बैठ गये। वही पर उन्हें कार्तिक शुक्ला द्वितीयाके दिन मूल नक्षत्र में शामके समय घातिया कर्मोका नाश होनेसे केवलज्ञान आदि अनन्त चतुष्टय प्राप्त हो गये थे। देवोंने आकर उनके ज्ञान-कल्याणक का उत्सव मनाया। इन्द्रकी आज्ञासे राज-कुवेर ने सुन्दर और सुविशाल समवसरण की रचना की। उसके मध्य में स्थिर होकर भगवान पुष्पदन्तने अपने दिव्य उपदेश से समस्त जीवोंको सन्तुष्ट किया। फिर इन्द्रकी प्रार्थना से उन्होंने देश -विदेश में घुमकर सधर्म का प्रचार किया। उनके समवसरण में विदर्भ आदि अठासी गणधर थे, पन्द्रह सौ श्रुतकेवली द्वादशांग के चार सौ अवधिज्ञानी थे, तेरह हजार विक्रिया ऋद्धिके धारक थे, सात हजार पांच सौ मनःपर्यय ज्ञानी और छह हजार छह सौ वादी थे। इस तरह सब मिलाकर दो लाख मुनिराज थे। घोषार्या जानकार थे, एक लाख पचपन हजार पांच सौ शिक्षक थे आठ हजार को आदि लेकर तीन लाख अस्सी हजार आर्यिकाएं थी। दो लाख श्रावक थे, पांच लाख श्राविकाएं थी असंख्यात देव देवियां और संख्यात तिर्यज्ज थे।

सब देशोंमें विहार कर चुकने के बाद वे आयु के अन्तं समयमें सम्मद शिखर पर जा पहुंचे। वहां उन्होंने एक हजार मुनियों के साथ योग निरोध किया और अन्तमें शुक्ल ध्यान के द्वारा अघातिया कर्मो का नाशकर भादो सुदी अष्टमी के दिन मूला नक्षत्रमें सन्ध्याके समय मोक्ष प्राप्त किया। उसी समय इन्द्रादि देवोंने आकर उनके निर्वाण कल्याणक की पूजा की। भगवान पुष्पदन्त का ही दूसरा नाम सुविधिनाथ था।

#### भगवान शीतलनाथ

न शीतलाश्चन्दन चन्द्ररश्मयो न गांगमम्भो नचहार चष्टयः ।

यथामुनेस्तेऽनघ वाक्यरश्मयः शमाम्बुगर्माः शिशिरा विपश्चिताम् ॥

आचार्य समन्त भद्र

हे अनघ ! शान्तिरूप जल से युक्त आप की वचन रूपी किरणें विद्वानों के लिये जितनी शीतल है उतनी शीतल न चन्द्रमा की किरणें है, न चन्द्रन है , न गंगानदीका पानी है और न माणियो का हार ही है। आपके वचनोंकी शीतलता में संसार का संताप एक क्षण में दूर हो- जाता है।

#### १ पूर्वभव परिचय

पुष्कर द्वीप के पूर्वार्ध भागमें जो मन्दरगिरि है उससे पूर्व की ओर विदेह क्षेत्रमें- सीतानदी के पश्चिम किनारे पर वत्स नामका देश है। उसके सुसीमा नामक नगर में राजा पद्मगुल्म राज्य करते थे। वे हमेशा साम दाम, दण्ड और भेद इन चार उपायोंसे पृथ्वी का पालन करते- थे। सन्धि ,विग्रह आदि राजेचित गुणोंसे परिचित थे। शरद् ऋतुके चन्द्रमा की तरह उनका निर्मल यश समस्त देश में फैला हुआ

था। व अत्यन्त प्रतापी होकर भी साधु स्वभावी पुरुष थे। एक दिन महाराज पद्मगुल्म राज सभामें बैठे हुए थे कि बनमालीने आम के बैर कुन्दकुड्मल, और केशर आदिके फूल सामने रखकर कहा महाराज ! ऋतुराज वसन्त के आगमन से उद्यान की शोभा बड़ी ही विचित्र हो गई है। आमों में बोर लग गये हैं उनपर बैठी हुई कोयल मनोहर गीत गाती है, कुन्दके फूलोंसे सब दिशाएं सफेद हो रही हैं, मौलिश्रीके सुगन्धित फूलोंपर मधुप गुज्जार कर रहे हैं, तालबोमे कमल के फूल फूल रहे हैं और उनकी पीली केशरो से- तालाबो का समस्त पानी पीला हो रहा है। उद्यानकी प्रत्येक वस्तुएं आपके शुभागमन की आशंकामें लीन हो रही हैं।

बनमाली के मुखसे वसन्त की शोभा का वर्णन सुनकर महाराज पद्मगुल्म बहुत ही हर्षित हुए। उसी समय उन्होंने वनमें जाकर वसन्तोत्सव मनानेकी आज्ञा जारी कर दी जिससे नगरके- समस्त पुरुष अपने अपने परिवार के साथ वसन्तका उत्सव मनानेके लिये वनमें जा पहुंचे। राजा पद्मगुल्म भी अपनी रानियों और मित्र वर्ग के साथ वनमें पहुंचे और वही रहने लगे। उन दिनोंमें यहां नृत्य संगीत आदि बड़े बड़े उत्सव मनाये जा रहे थे इसलिये- क्रम-क्रम से वसन्त के दो माह व्यतीत हो गये पर राजाको उसका पता नहीं चला। और जब धीरे धीरे वसन्त की शोभा विदा हो गई ओर ग्रीष्मकी तप्त लू चलने लगी तब राजा का उस ओर ख्याल गया। वहां उन्होंने वसन्तकी खोज की पर उसका एक भी चिन्ह उनकी नजर में नहीं आया। यह देखकर महाराज पद्मगुल्म का हृदय विषयों से विरक्त हो गया उन्होंने -सोचा कि संसार के सब पदार्थ इसी वसन्त के समान क्षणभंगुर हैं। मैं जिसे नित्य समझकर तरह तरह की रंगरेलियां कर रहा था आज वही वसन्त यहां नजर नहीं आता। अब न आमों में बोर दिखाई पड़ रहा है ओर न कहीं उनपर कोयटक्की मीठी आवाज सुनाई दे रही है। अब मलयानिल का पता नहीं है किन्तु उसकी जगहपर ग्रीष्म की यह तप्त लू बह रही है। ओह ! अचेतन चीजों में इतना परिवर्तन ! पर मेरे हृदयमें भोग विलासोंमें कुछ भी परिवर्तन नहीं हुआ। खेद है की मैंने अपनी आयु का बहुत भाग यूंही बिता दिया पर आज मेरे अन्तरंग नेत्र खुल गये हैं, आज मेरे हृदय में दिव्य ज्योति प्रकाश डाल रही है उसके प्रकाशमें भी क्या अपना हित न खोज सकूंगा ? बस, बस खोज लिया मैंने- हितका मार्ग। वह यह है की मैं बहुत जल्दी राज्य के जंजाल से छुटकारा पाकर मुनि दीक्षा धारण करूं और किसी निर्जन वन में रहकर आत्म भाण्डार को शान्ति सुधासे भर दूं। ऐसा विचार कर महाराज पद्मगुल्म वन से घर वापिस आये- और वहां चन्दन नाम के पुत्र के लिये- राज्य देकर पुनः वनमें पहुंच गये। वहां उन्होंने - किन्हीं आनन्द नामके आचार्य के पास जिन दीक्षा ले ली।

अब मुनिराज पद्मगुल्म निर्जन वन में रहकर आत्मशुद्धि करने लगे। गुरुदेव के चरण कमलों के पास रहकर उन्होंने ग्यारह अंगों तक का ज्ञान प्राप्त किया और दर्शन विशुद्धि आदि सोलह भावनाओंका चिन्तन कर तीर्थकर नामक महापुण्य प्रकृतिका बन्ध किया। जब आयुका अन्तिम समय आया तब वे बाह्य पदार्थों से सर्वथा मोह छोडकर समाधि में स्थित हो गये जिससे- मरकर पन्द्रहवे आरण स्वर्ग में इन्द्र

हुए । वहां उनकी आयु बाईस सागर की थी, तीन हाथ का शरीर था, शुक्ल लेश्या थी, ग्यारह माह बाद सुगन्धित श्वासोच्छ्वास होता और बाईस मास बाद मानसिक आहार होता था। हजारों देवियां थी, मानसिक प्रविचार था , अणिमा आदि आठ ऋद्धियां थी और जन्मसे ही अवधिज्ञान था। वहां उनका समय सुख से- बीतने लगा। यही इन्द्र आगे भव में भगवान शीतलनाथ होंगे ।

## २ वर्तमान परिचय

जब वहां उनकी आयु सिर्फ छह माह की बाकी रह गई और वे पृथिवीपर जन्म लेने के लिये तत्पर हुए तब इसी जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र में मलय देशके भद्रपुर नगर में- इक्ष्वाकुवंशीय दृढस्थ नाम के राजा राज्य करते थे। उनकी महारानी का नाम सुनन्दा था। भगवान शीतलनाथ के गर्भ में आने के छह माह पहले से ही देवोंने दृढरथ ओर सुनन्दा के घरपर रत्नोंकी वर्षा करनी शुरू कर दी। चैत्र कृष्ण अष्टमी के दिन पूर्वाषाढा नक्षत्र में महारानी सुनन्दा ने रात्रिके पिछले समय सोलह स्वप्न देखे। उसी समय उक्त इन्द्रने स्वर्गभूमि छोडकर उसके गर्भ में प्रवेश किया। पति के मुख से स्वप्नों का फल सुनकर सुनन्दा रानी को जो हर्ष हुआ उस का वर्णन नहीं किया जा सकता। उसी दिन देवोंने आकर स्वर्गीय वस्त्रभूषणों से राजदम्पति की पूजा की और गर्भ - कल्याणक का उत्सव मनाया। माघ कृष्ण द्वादशी के दिन पूर्वाषाढ नक्षत्र में सुनन्दा के उदरसे भगवान शीतलनाथ का जन्म हुआ। देवोंने मेरु पर्वतपर ले जाकर उनका जन्माभिषेक किया और वहांसे से आकर भद्रपुर में धुमधाम से जन्मका उत्सव मनाया। इन्द्रने-बन्धु बान्धवोंकी सलाह से उनका शीतलनाथ रखा जो वास्तवमें योग्य था क्योंकि उनकी पावन मूर्ति देखनेसे प्राणी मात्रके हृदय शीतल हो जाते थे। राज परिवारमें बड़े ही दुलारसे उनका पालन हुआ था। पुष्पदन्त स्वामी के मोक्ष जानेके बाद नौकरोड सागर बीत जाने पर भगवान शीतलनाथ हुए थे। इनके जन्म लेनेके पहिले पल्यके चौथाई भाग तक धर्मका विच्छेद हो गया था। इनकी आयु एक लाख पूर्व की थी और शरीर नब्बे धनुष ऊंचा था इनका शरीर सुवर्णके समान स्निग्ध पीत वर्णका था जब आयुका चौथाई भाग कुमार अवस्था में बीत गया तब इन्हें राज्य की प्राप्त हुई थी। राज्य पाकर इन्होंने भली भांति राज्य का पालन किया और धर्म , अर्थ , काम का समान रूप से सेवन किया था। किसी एक दिन भगवान शीतलनाथ घूमने के लिये-एक बनमें गये थे। जब वे बनमें पहुंचे थे तब बनमें सब वृक्ष हिम'ओस्र से आच्छादित थे - पर थोडी देर बाद सूर्य का उदय होनेसे वह हिम'ओस्र अपने आप नष्ट हो गई थी। यह देखकर उनका हृदय विषयोंकी ओर से सर्वथा हट गया। उन्होंने संसार के सब पदार्थों का हिमके समान क्षण -भंगुर समझाकर उनसे राग भाव छोड दिया ओर बन में जाकर तप करनेका का द्ढ निश्चय कर लिया। उसी समय लौकान्तिक देवोंने आकर इनके उक्त विचारोका समर्थन किया जिससे उनकी वैराग्य -धारा और भी अधिक वेग से प्रवाहित हो उठी। निदान आप पुत्र के लिये राज्य सोंपकर देवनिर्मित शुक्रभ्रा पालकी पर सवार हो सहेतुक बनमें पहुंचे और वहां

माघ कृष्ण द्वादशीके दिन पूर्वाषाढ नक्षत्र - में शाम के समय एक हजार राजाओंके साथ दीक्षित हो गये । आप के दीक्षा लेते ही मनःपर्याय ज्ञान प्राप्त हो गया था । भगवान शीतलनाथ दो-दिन के उपवास के बाद आहार लेनेकी इच्छा से अरिष्ट नामक नगरमें गये । वहां राज पुनर्वसुने-बडी प्रसन्नतासे नवधा भक्तिपूर्वक उन्हें आहार दिया । पात्र दान के प्रभाव से राजा पुनर्वसुके घरपर देवोंने पंचाश्चर्य प्रकट किये । इस तरह तपश्चरण करते हुए उन्होंने अल्पज्ञ अवस्था में तीन वर्ष बिताये । फिर पौष कृष्ण चतुर्दशी के दिन शाम के समय पूर्वाषाढ नक्षत्र में उन्हें दिव्य - आलोक केवलज्ञान प्राप्त हुआ । उसी समय देवोंने आकर ज्ञानकल्याणक का उत्सव मनाया । इन्द्रकी आज्ञा से कुवेर ने समवसरण की रचना की । उसके मध्यमें स्थित होकर आपने सर्व धर्मका उपदेश देकर उपस्थित जनता को सन्तुष्ट कियां । इन्द्रकी प्रार्थना से उन्होंने अनेक देशो-में बिहार कर संसार और मोक्ष का स्वरूप बतलाया दार्शनिक गुत्थियां सुलझाई और सबको हितका मार्ग बतलाया था । उनके उपदेशके प्रभाव से लोगोंके हृदयोंसे धर्म-कर्म की शिथिलता उस तरह दूर हो गई थी जिस तरह की सूर्य के प्रकाश से अन्धकार दूर हो जाता है ।

उनके समवसरणमें ऋद्धियों और मनःपर्यय ज्ञानके धारक इक्यासी गणधर थे । चौदह सौ द्वादशांग के जानकार थे । उनसठ हजार दो सौ शिक्षक थे, सात हजार दो सौ अवधिज्ञानी थे, ओर पांच हजार सात सौ वादी मुनि थे । इस तरह सब मिलकर एक लाख मुनि थे । धारण आदि तीन लाख अस्सी हजार आर्यिकायें थी, दो लाख श्रावक थे, चार लाख श्राविकायें थी ,असंख्यात देव-देवियां संख्यात तिर्यञ्च थे ।

जब भगवान् शीतलनाथ की दिव्यध्वनि खिरती थी तब समस्त सभा चित्र - लिखित सी नीरव और स्तब्ध हो जाती थी । वे आयुके उन्त समयमें सम्मेद शिखरपर पहुंचे , वहां एक महीनेका योग ! निरोध कर हजार मुनियोंके साथ प्रतिमा योगसे विराजमान हो गये और आश्विन शुक्ला अष्टमीके दिन पूर्वाषाढा नक्षत्रमें शामके समय अघातिया कर्मोका नाशकर स्वतंत्र सदन मोक्ष - महलको प्राप्त हुए । देवोंने आकर निर्वाण भूमि की पूजा की और उनके शरीरकी भस्म अपने शरीरमें लगाकर आनन्दसे गाते, नाचते हुए अपने स्थानोंपर चले गये ।

इनके तीर्थके अन्त समयमें काल दोषसे वक्ता श्रोता, और धर्मात्मा लोगोंके अभाव होने-से समीचीन धर्म लुप्तप्राय हो गया था ।

भगवान् श्रेयान्सनाथ

निर्घृय यस्य निज जन्मनि सत्यमस्त , मान्द्यं चराचर मशेष मवेक्षमाणम् ।

ज्ञानंप्रतीप विरहान्निज रूप संस्थं श्रेयांन् जिनःसदिशता दशिवच्युतिंवः ॥

- आचार्य गुणभद्र

उत्पन्न होते ही समस्त अज्ञानअन्धकार को नष्ट कर के सब चर अचर पदार्थों को देखने वाला जिनका उत्तम ज्ञान बाधक कारणोंका अभाव होने से अपने स्वरूप में स्थिर हो गया था वे श्रीश्रेयान्स जिनेन्द्र तुम सबको अमंगलकी हानि करें ।

१ पूर्वभव परिचय

पुष्कर द्वीप के पूर्व मेरुसे पूर्व दिशा की ओर विदेह क्षेत्रमें एक सुकच्छ नामका देश है। उसमें सीता नदीके उत्तर तटपर एक क्षेमपुर नगर था। क्षेमपुर नगरमें रहने वाले-मनुष्यों को हमेशा क्षेम मंगल प्राप्त होते रहते थे, इसलिए उसका क्षेमपुर नाम बिलकुल सार्थक था। किसी समय उस में नलिनप्रभ नाम का राजा राज्य करता था। उसका शरीर बहुत ही सुन्दर था। उसने अनुपम बाहुबल से समस्त क्षत्रियों को जीतकर अपना राज्य निष्कण्टक बना लिया था वह उत्साह मन्त्र और प्रभाव इन तीन शक्तियोंसे । तथा इनसे प्राप्त हुई तीन सिद्धियोंसे संयुक्त था। उसकी बुद्धिका तो ठिकाना नहीं था। अच्छे अच्छे मन्त्री जिन कामोंका विचार भी नहीं कर सकते थे ओर जिन सामायिक समस्याओं को नहीं सुलझा पाते थे उन्हें यह अनायास ही सोच लेता ओर सुलझा देता था। उसका अन्तःपुर सुन्दरी और सुशीला स्त्रियों से भरा हुआ था। आज्ञाकारी पुत्र थे, निष्कण्टक राज्य था, अटूट सम्पत्ति थी और स्वयं स्वस्थ निरोग था। इस तरह वह

हर एक तरह से सुखी होंकर प्रजाका पालन करता था। एक दिन राजा नलिनप्रभ राजसभा में बैठा हुआ था उसी समय बनमाली ने आकर कहा की सहसाम्र बनमें - अनन्त नामक जिनेन्द्र आये है। उनके प्रतापसे बनकी शोभा बड़ी ही विचित्र हो गई है। वहां सब ऋतुएं एक सी अपनी शोभा प्रकट कर रही है ओर सिंह , हळस्ती, सर्प, नेवला आदि जीव अपना जातीय बैर छोडकर एक दूसरेसे हिल मिल रहे है। जिनेन्द्र का आगमन सुनकर राजाको इतना हर्ष हुआ कि उसके सारे शरीर में रोमांच निकल आये। वह बनमालीको उचित पारितोषिक देकर परिवार सहित अनन्त जिनेन्द्र की बन्दनाके लिये सहसाम्र बन में गया। वहां उनकी दिव्य मुर्ति देखते ही उसका हृदय भक्ति से गद्गद् हो गया। उसने उन्हें शिर झुकाकर प्रणाम किया। अनन्त जिनेन्द्रने प्रभावक शब्दों में तत्त्वों का व्याख्यान किया ओर अन्तमें संसार के दुःखोंका निरूपण किया । जिसे सुनकर नलिनप्रभ सहसा प्रतिबुद्ध हो गया वह एक दम संसार से भयभीत हो उठा । उस समय उसकी अवस्था ठीक स्वप्न देख कर जागे हुए मनुष्य की तरह हो रही थी। उसने उसी समय भर्राई हुई आवाज में कहा नाथ ! इन दुःखों से बचने का भी कोई उपाय है ? तब अनन्त जिनेन्द्र ने संसार के दुःख दूर करनेके लिए सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चरित्र का वर्णन किया। देशव्रत और महाव्रत का महत्व समझाया। जिससे वह विषयोसे अत्यन्त विरक्त हो गया। उसने घर जाकर पहले तो अपने सुपुत्र के लिये राज्य दिया और फिर बनमें जाकर अनेक राजाओं के साथ जिनदीक्षा ले ली। वहां ग्यारह अंगोंका अभ्यास कर सोलह भावनाओं का चिंतवन किया जिससे-उसके तीर्थकर नामक पुण्य प्रकृतिका बन्ध हो गया । आयुके अन्तमें संन्यासपूर्वक शरीर छोडकर मुनिराज

नलिनप्रभ का जीव अच्युत स्वर्गके पुष्पोत्तर नामक विमान में इन्द्र हुआ। वहां उसकी आयु बाईस सागर की थी। शरीर की ऊंचाई तीन हाथ की थी, लेश्या शुक्ल थी और जन्मसे ही अवधिज्ञान था। वहां पर अनेक सुन्दरी देवियों के साथ बाईस सागर तक तरह तरह के सुख भोगता रहा। यही इन्द्र आगे के भव में भगवान् श्रेयान्सनाथ होगा।

### १ वर्तमान परिचय

जब वहां पर उसकी आयु सिर्फ छह माह की शेष रह गई और वह पृथ्वी पर जन्म लेने के लिये सम्मुख हुआ। उस समय इसी जम्बूद्वीपके भरत क्षेत्र के सिंहपुर नगर में इक्ष्वाकुवंशीय विष्णु नाम के राजा राज्य करते थे। उनकी महादेवी का नाम सुनन्दा था ऊपर हे हुए इन्द्रने ज्येष्ठ कृष्ण षष्ठीके दिन श्रवण नक्षत्रमें रात्रि के अन्तिम भाग में स्वर्ग भूमि को छोड़कर सुनन्दा महारानी के गर्भ में प्रवेश किया। उस समय सुनन्दा ने हाथी बैल आदि सोलह स्वप्न देखे थे। सवेरा होते ही उसने प्राणनाथ विष्णु महाराज से स्वप्नों का फल सुना जिससे वह बहुत ही प्रसन्न हुई। उस समय देवोंने आकर राजदम्पति का खूब सत्कार किया और गर्भ कल्याणक का उत्सव मनाया। वह गर्भस्थ बालक का ही प्रभाव था जो उस के गर्भ में आनेके छह माह पहले से लेकर पन्द्रह माहतक महाराज विष्णुके घरपर प्रतिदिन रत्नों की वर्षा होती रही और देवकुमारियां महारानी सुनन्दा की शुश्रूषा करती रही। धीरे-धीरे गर्भ का समय व्यतीत होनेपर फल्गुन कृष्ण एकादशीके दिन श्रवण नक्षत्र में सुनन्दा देवीने पुत्र -रत्न उत्पन्न किया। उस समय अनेक शुभ शकून हुए थे। देवों ने मेरु पर्वतपर ले जाकर बालक का कलशाभिषेक किया। फिर सिंहपुर वापिस आकर कई तरहसे जन्म - महोवत्सव मनाया। इन्द्र ने महाराज विष्णुकी सलाह से बालक का श्रेयान्स नाम रखा। यह ठीक था, क्योंकि वह आगे चलकर समस्त प्रजा को श्रेयोमार्ग -मोक्ष मार्ग में प्रवृत्त करेगा। उत्सव समाप्त कर देव लोग अपनी जगहपर वापिस चले गये। पर जाते- समय इन्द्र ऐसे अनेक देव कुमारों को वहींपर छोड़ गया था जो अपनी लीलाओंसे बालक श्रेयान्सनाथ को हमेशा प्रसन्न रखा करते थे। राज्य परिवारमें बड़े प्यारसे उनका पालन होने - लगा।

इन्द्र स्वर्ग से उनके लिय अच्छे अच्छे वस्त्रआभूषण और खिलौना वगैरह भेजा करता था। शीतलनाथ स्वामी के मोक्ष जानेके बाद सौ सागर, छयासठ लाख, छब्बीस हजार वर्ष कम एक सागर बीत जानेपर भगवान् श्रेयान्सनाथ हुए थे। इनकी आयु भी इसी उन्तराल में शामिल - है इनको जन्म लेनेके पहीले भारतवर्ष में आधे पल्यतक धर्म का विच्छेद हो गया था। इनके उत्पन्न होते ही धर्म का उत्थान फिर से होने लगा था। इनकी आयु चौरासी लाख की थी, शरीर की ऊंचाई अस्सी धनुषकी थी और रंग सुवर्णके समान सिन्ध पीला था।

जब उनके कुमार काल के इक्कीस लाख बीत गये तब उन्हें राज्य प्राप्त हुआ। राज्य पाकर उन्होंने सुचारु रूप से प्रजाका पालन किया। वे अपने बलसे हमेशा दृष्टोंका निग्रह करते -और सज्जनोंपर अनुग्रह करते थे। योग्य कुलीन कन्याओं के साथ उनकी शादी हुई थी। जिससे उनका राज्य-

काल सुखसे बीतता था। देव लोग बीच बीच में तरह तरहके विनोदोंसे उन्हें प्रसन्न करते - रहते थे। इस तरह इन्होंने ब्यालीस लाख वर्षतक राज्य किया। इसके अनन्तर किसी एक दिन वसन्त ऋतु का परिवर्तन देखकर इन्हें वैराग्य उत्पन्न हो गया जिससे इन्होंने दीक्षा लेकर तप करनेका दृढ निश्चय कर लिया। उसी समय लौकान्तिक देवोंने आकर उनकी स्तुति की। चारो निकाय के- देवोंने दीक्षा - कल्याणक का उत्सव किया। भगवान श्रेयान्सनाथ श्रेयस्कर नामक पुत्र के लिये राज्य देकर देवनिर्मित विमलप्रभा पालकी पर सवार हो गये। देव लोग उस पालकी को मनोहर नाम के उद्यान में ले गये। वहां उन्होंने दो दिन के उपवास की प्रतिज्ञा कर फाल्गुन कृष्णा एकादशी के दिन श्रवण नक्षत्र में सबेरे के समय एक हजार राजाओं के साथ दिगम्बर दीक्षा ले ली दीक्षा लेते ही मनःपर्यय ज्ञान प्राप्त हो गया था। तीसरे दिन चार ज्ञान के धारण करने वाले भगवान श्रेयान्सनाथ आहार लेने की इच्छासे सिध्दार्थ नगर में गये। वहां पर नन्द राजा- ने उन्हें भक्तिपूर्वक आहार दिया। दानके प्रभाव से राजा नन्द के घरपर देवोंने - पंचाश्चर्य प्रकट किये। भगवान आहार लेकर वन में वापिस चले गये। इस तरह उन्होंने छद्मस्थ अवस्था - में मौन पूर्व दो वर्ष व्यतीत किये। इसके बाद दो दिन के उपवास की प्रतिज्ञा लेकर उसी मनोहर बन में तुम्बुर वृक्ष के नीचे - ध्यान लगाकर विराजमान हुअे। वही उन्हें माघ कृष्ण

अमावस्या के- दिन श्रवण नक्षत्र में सायंकाल के समय लोकालोक का प्रकाश करने वाला पूर्णज्ञान प्राप्त हो -गया। उसी समय देवोंने आकर उनका वैत्रल्य महोत्सव मनया। कुबेरने समवसरण की रचना की उसके मध्यमें सिंहासन पर अन्तरीक्ष विराजमान होकर उन्होंने अपना मौन भंग किया। अर्थात् दिव्य ध्वनिके द्वारा सप्त तत्त्व नव पदार्थों का वर्णन किया। जिससे प्रभावित होकर अनेक नर - नारियों ने देश व्रत और महाव्रत ग्रहण किया। प्रथम उपदेश समाप्त होनपर इन्द्रने मनोहर शब्दों में उनकी स्तुती की ओर फिर विहार करने के लिये प्रार्थना की। आवश्यकता देखते हुए उन्होंने -आर्य क्षेत्रोंमें सर्वत्र विहार कर जैन धर्म का प्रचार किया और शीतलनाथ के अन्तिम तीर्थ में जो- आधे पल्यतक धर्मका विच्छेद हो गया था उसे दूर किया।

आचार्य गुणभद्र ने लिखा है कि उनके सतहत्तर गणधर थे, तेरह सौ ग्यारह श्रुतकेवली थे, अडतालीस हजार दो सौ शिक्षक थे, छह हजार अविधज्ञानी थे, छह हजार पांच सौ केवल ज्ञानी थे, ग्यारह हजार विक्रिया ऋद्धि के धारक थे, छह हजार मनःपर्यय ज्ञानी थे, और पांच हजार वादी थे।

वे आयुके अन्त में सम्मेद शिखरपर पहुंचे और वहां एक महीने तक योग निरोध कर हजार राजाओं के साथ प्रतिमा योग से विराजमान हो गये। वहींपर उन्होंने - शुक्लध्यान के द्वारा अघातिया कर्मों की पचासी प्रकृतियों का क्षय कर श्रावण शुक्ला पूर्णमासी के दिन धनिष्ठा नक्षत्र में शाम के समय मुक्तिमन्दिर मोक्षमहल में प्रवेश किया। देवों ने आकर उनके निर्वाण - क्षेत्र की पूजा की।



भगवान वासुपूज्य

शिवासु पूज्योऽभ्युदय क्रियासु त्वं वासुपूज्य स्त्रिदशेन्द्र पूज्यः ।

मयापि पूज्योऽल्पधिया मुनीन्द्रः दीपार्चिषा किंतपनो न पूज्यः ॥- समन्तभद्र.

हे मुनिराज ! आप वासुपूज्य, मंगलमयी अभ्युदय क्रियाओं में देवराज के द्वारा पूजनीय हैं-पूजा करने के योग्य हैं । इसलिये मुझ अल्पबुद्धि के द्वारा भी पूजनीय हैं । क्या दीपक की ज्योति से सुर्य पूजनीय नहीं होता ?

१ पूर्वभव वर्णन

पुष्करार्ध द्वीप के पूर्व मेरु की ओर सीता नदीके पूर्वीय तटपर एक वत्सकावती देश है । उसके रत्नपुर नाम के नगर मे पद्मोत्तर नाम का राजा राज्य करता था वह धर्म अर्थ काम का पालन करते समय धर्म को कभी नहीं भुलता था । ऊषा की लाली की तरह उसका दिव्य प्रताप समस्त दिशाओं में फैल रहा था । उसका यश क्षीरसागर की तरंगों के समान शूक्ल था पर उनकी तरह चंचल नहीं था । उसके एक धनमित्र नामका पुत्र था जिसे-राज्यभार सौंपकर वह सुखसे समय बिताता था ।

किसी एक दिन मनोहर नाम के पर्वतपर युगन्धर महाराज का शुभागमन हुआ । जब वनमाली ने राजा के लिये उनके आगमन की खबर दी तब वह हर्ष से पुलकित बदन हुआ । परिवार सहित उनकी बन्दना के लिये गया और भक्तिपूर्वक नमस्कार कर उचित स्थान पर बैठ गया । उस समय युगन्धर महाराज अनित्य, अशरण, संसार, एकत्व, अन्यत्व, अशुचि, आस्त्रव, संवर निर्जरा, लोक बोधि दुर्लभ और धर्म इन बारह भावनाओं का वर्णन कर रहे-थे । ज्योंही पद्मोत्तर राजा ने अनित्य आदि भावानावों का स्वरूप सुना त्योंही उसके हृदय में वैराग्यरूपी सागर हिलोरे लेने लगा । उसे संसार और शरीर के प्रति अत्यन्त घृणा पैदा हो-गई । वह सोचने - लगा कि मैंने अपना विशाल जीवन व्यर्थ ही खो दिया । जिन स्त्रियों, पुत्रों और राज्य के लिये - मैं हमेशा व्याकुल रहता हूँ जिनके लिये मैं बुरेसे बुरे कार्य करने में नहीं हिचकिचाता वे एक भी मेरे साथ नहीं जावेंगे ।

मैं अकेला ही दुर्गतियों में पडकर दुःख की चक्कियों में पीसा जाऊंगा । ओह ! कितना था मेरा अज्ञान ? अभी तक मैं जिन भोगोंको सबसे अच्छा मानता था आज वे ही भोग काले सर्पो की तरह भयानक मालूम होते हैं । धन्य है महाराज युगंधर को ! जिन के दिव्य उपदेश से पथ - भ्रान्त पथिक ठीक रास्तेपर पहुंच जाते हैं । इन्हींने मेरे हृदयमें दिव्य ज्योति का प्रकाश फैल था है । जिससे मैं आज अच्छे और बुरेका विचार कर सकने के लिये समर्थ हुआ हूँ । अब जबतक मैं समस्त परिग्रह छोडकर निर्ग्रन्थ न हो जाऊंगा, इन निर्जन वनके विशुद्ध वायुमण्डल में निवास नहीं करुंगा तब तक मुझे चैन नहीं पड सकती, इत्यादि विचार कर वह घर गया और युवराज धनमित्र के लिये राज्य देकर निःशल्य हो अनेक राजाओं के साथ वनमें-जाकर दीक्षित हो गया । दीक्षित होने के बाद राजा नहीं मुनिराज पद्मोत्तर

ने खूब तपश्चरण किया । निरन्तर शास्त्रों का अध्ययन कर ग्यारह अंगो का ज्ञान प्राप्त किया और दर्शन विशुद्ध आदि सोलह भावनाओं का चिन्तनकर तीर्थकर नामा नाम कर्मकी पुण्य प्रकृति का बन्ध किया ।

तदनन्तर आयु के अन्त में सन्यासपूर्वक शरीर छोडकर महाशुक्र स्वर्ग में महाशुक्र नामका इन्द्र हुआ । वहां उसकी सोलह सागर की आयु थी । चार हाथ का शरीर था । पद्मलेश्या थी । वह आठ महीने - के बाद श्वासोच्छ्वास लेता और सोलह हजार वर्ष बाद में आहार ग्रहण करता था । अणिमा, महिमा आदि ऋद्धियों का स्वामी था । उसे जन्म से ही अवधिज्ञान प्राप्त हो गया था । जिससे वह नीचे चौथे नरक तक की बात जान लेता था । वहां अनेक देवियां अपने-दिव्य रूपसे उसे लुभाती रहती थी । यही इन्द्र आगेके भवमें भगवान वासुपूज्य होगा । कहां ? किसके ? कब ? सो सुनिये ।

२ वर्तमान परिचय

इसी जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र में एक चम्पा नगर है उसमें इक्ष्वाकुवंशीय राजा वसुपूज्य राज्य करते थे । उनकी महारानी का नाम जयावती था । जब ऊपर कहे हुए इन्द्र की वहां की आयु सिर्फ छह माह की बाकी रह गई थी तभीसे कुबेरने महाराज वसुपूज्य के घर पर रत्नों की वर्षा करनी शुरु कर दी और श्री, न्ही आदि देवियां महारानी की सेवा केलिये आ गई ।

एक दिन महारानी जयावती ने रात्रि के पिछले भाग में ऐरावत आदि सोलह स्वप्न देखे । सबेरे उठ कर जब उसने प्राणनाथ से उनका फल पूछा तब उन्होंने कहा आज आषाढ कृष्णा षष्ठीके दिन शतभिषा नक्षत्र में तुम्हारे गर्भ में किसी तीर्थकर बालक ने प्रवेश किया है । ये स्वप्न उसी की विभूति के परिचायक है । याद रखिये उसी दिन उसी इन्द्र ने वसुन्धरा छोडकर रानी जयावती के गर्भ में प्रवेश किया था । चतुर्णिकाय के देवों ने आकर गर्भ कल्याणक का उत्सव मनाया और उत्तम उत्तम आभूषणों से राजा रानीका सत्कार किया ।

अनुक्रम से गर्भ के दिन पूर्ण होने पर रानी ने फाल्गुन कृष्ण चतुर्दशी के दिन पुत्र रत्न का प्रसव किया । उसी समय हर्षसे नाचते गाते हुए समस्त देव और इन्द्र चम्पा नगर आये और वहां से बाल तीर्थकर को ऐरावत हाथीपर बैठाकर मेरु पर्वत पर ले गये । वहां सौधर्म और ऐशान इन्द्रने उनका क्षीरसागर के जल से अभिषेक किया । अभिषेक के बाद इन्द्राणी ने सुकोमल वस्त्रों से उनका शरीर पोंछकर उस में उत्तम उत्तम आभूषण पहिनाये - और इन्द्रने मनोहर शब्दोंमें स्तुति की । यह सब कर चुकने के बाद देव लोग बाल तीर्थकर को - चम्पा नगर में वापिस ले आये । बालक का अतुल ऐश्वर्य देखकर माता जयावती का हृदय मारे - आनन्द से फूला न समाता था । इन्द्रने अनेक उत्सव किये , बन्धु - बान्धवों की सलाह से उनका वासुपूज्य नाम रखा और उनके विनोदके लिये अनेक देव कुमारोंको छोडकर सब के साथ स्वर्ग की ओर प्रस्थान किया ।

यहां राज्य परिवार में बड़े प्रेमसे भगवान वासुपूज्य का लालन पालन होने- लगा । भगवान श्रेयान्सनाथ के मोक्ष चले जानेके बाद चौअन सागर व्यतीत होनेपर वासुपूज्य स्वामी हुए थे । इनकी आयु भी इसी प्रमाणमें शामिल है क्योंकि हरएक जगह जो अन्तराल बतलाया गया है वह एक तीर्थकरकेबाद दुसरे तीर्थकर केमोक्ष होने तक का है, जन्म तक का नहीं है । उनकी आयु बहत्तर लाख वर्ष की थी, शरीर की ऊंचाई सत्तर धनुष की और रंग केसर केसमान था । आपकेजन्म लेनेकेपहले तीन पल्यतक भरत वर्ष में धर्म का विच्छेद रहा था पर ज्योंही आप उत्पन्न हुए त्योंही लोग पुनः जैन धर्म में दीक्षित हो गये थे । जब उनकेकुमार काल केअठारह लाख वर्ष बीत चुकेतब महाराज वासुपूज्य ने उन्हें राज्य देकर उनकी शादी करनी चाही । पर किसी कारण से उनका हृदय विषय भोगों से सर्वथा विरक्त हो गया । उन्होंने न राज्य लेना स्वीकार किया और न विवाह ही करना । किन्तु उदासीन होकर दुःख मय संसार का स्वरूप सोचेने लगे । उन्होंने क्रम-क्रम से अनित्य आदि भावनाओं का विचार किया जिससे उनका वैराग्य परम अवधितक पहुंच गया । समय लौकान्तिक देवों ने आकर उनकी स्तुति की और उनकेविचारों का शतशः समर्थन किया । चारों निकाय केदेवों ने आकर दीक्षा - कल्याणक का उत्सव किया ।

भगवान वासुपूज्य देवनिर्मित पालकीपर सवार होकर मनोहर नाम के बनमें पहुंचे और वहां आत्मीयजनों से पूछकर उन्होंने फाल्गुन कृष्णा चतुर्दशी केदिन विशाखा नक्षत्र में शाम केसमय दो दिन के उपवास की प्रतिज्ञा लेकर जिन दीक्षा लेली । पारणा के दिन आहार लेने की इच्छा से - उन्होंने महानगर में प्रवेश किया । वहांपर सुन्दर नाम केराजाने उन्हें भक्तिपूर्वक आहार दिया । उससे प्रभावित होकर देवोंने उनकेघरपर पंचाश्चर्य प्रकट किये । भगवान वासुपूज्य आहार लेकर पुनःवन में लौट गये । इस तरह कठिन तपस्या करते हुए उन्होंने - छद्मस्थ अवस्था को एक वर्ष मौन पूर्वक व्यतीत किया । उसकेबाद वे दीक्षा वन में पहुंचे - और वहां उपवास की प्रतिज्ञा लेकर कदम्ब वृक्षकेनीचे ध्यान लगा कर विराजमान हुए । उसी समय उन्हें माघ शुक्ला द्वितीया केदिन विशाखा नक्षत्रमें शामकेसमय पूर्ण ज्ञान केमूलज्ञान प्राप्त हो गया । देवोंने आकर ज्ञान - कल्याणक का उत्सव मनाया । इन्द्र की आज्ञा पाकर कुबेर ने दिव्य सभा समवसरण की रचना की । जिसके बीच में स्थित होकर उन्होंने सात तत्व , नव पदार्थ , छह द्रव्य सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चरित्र आदि अनेक विषयों का व्याख्यान देकर अपना मौन भंग किया ।

उनके उपदेश से प्रभावित होकर अनेक भव्य नर-नारियोंने यथाशक्ति व्रत विधान धारण किये । इन्द्रकी प्रार्थना करनेपर उन्होंने प्रायःसभी आर्य क्षेत्रोंमें विहार किया । जिससे समस्त लोग पुनः जैन धर्ममें दीक्षित हो गये । पथभ्रान्त पथिक पुनःसच्चे पथपर आ गये ।

उनके समवसरण में धर्म आदि छयासठ गणधर थे, बारह सौ ग्यारह अड और चौदह पूर्व के जानकार थे, उनतालीस हजार दो सौ शिक्षक थे, पांच हजार चार सौ अवधिज्ञानी थे, छह हजार केवली थे, दश हजार विक्रिया ऋद्धि केधारक थे, छह हजार मनःपर्यय ज्ञानी थे - और चार हजार दो सौ वादी थे इस तर बहत्तर हजार मुनिराज थे । इनके सिवाय सेना आदि एक लाख छह हजार आर्यिकाएं थी , दो लाख श्रावक, चार लाख श्राविकाएं असंख्यात देव देवियां और संख्यात तिर्यच थे ।

अनेक देशों में विहार करने के बाद जब उनकी आयु एक हजार वर्ष की रह गई तब वे चम्पानगर में आये और शेष समय उन्होंने वहीपर बिताया । एक माह की आयु रहनेपर उन्होंने राजत मौलिका नदी के तटपर विद्यमान मन्दार गिरि की सुन्दर शिखर पर मनोहर नाम के वन में योग निरोध किया और पर्यकासन से विराजमान हो गये । वहीपर शुक्ल ध्यान के प्रताप से अघातिया कर्मों का क्षय कर भादो सुदी चौदशके दिन शाम के समय विशाखा नक्षत्र में मुक्ति भामिनी के अधिपति बन गये । उनके साथ चौरानवे और मुनियों ने निर्वाण लाभ किया था । देवों ने आकर भक्ति पूर्वक उनके निर्वाण -क्षेत्र की पूजा की और निर्वाण महोत्सव मनाया ।

भगवान विमलनाथ

स्तिमिततम समाधि ध्वस्त निःशेष दोषं क्रम गम करणान्तर्धान हीनाव बोधम् ।

विमल ममल मूर्ति कीर्ति भाजंद्गुभाजां नमत विमलताप्तौ भक्तिभारेण भव्या : ।।

- आचार्य गुणभद्र

अत्यन्त निश्चल समाधि के द्वारा जिन्होंने समस्त दोषों को नष्ट कर दिया है ऐसे - तथा क्रम , साधन और विनाश से रहित है ज्ञान जिन्होंने का ऐसे निर्मल मूर्ति वाले और देवों की कीर्तिको प्राप्त होने वाले भगवान विमलनाथ को हे भव्य प्राणियों ! निर्मलताकी प्राप्ती के लिये - भक्तिपूर्वक नमस्कार करो ।

१ पूर्वभव परिचय

पश्चिम धातकीखण्ड द्वीप में मेरु पर्वतसे पश्चिम की और सीता नदी के तटपर एक रम्यकावती देश है किसी समय वहां पद्मसेन राजा राज्य करते थे । उनकी शासन प्रणाली बडी ही विचित्र थी । उनके राज्य में न कोई वर्ण - व्यवस्था का उल्लंघन करता था, न कोई झूठ बोलता था , न कोई किसी को व्यर्थ ही सताता था, न कोई चोरी करता था और न कोई पर - स्त्रियों का अपहरण करता था । वहां की प्रजा धर्म , अर्थ और काम का समान रूप से पालन करती थी । एक दिन महाराज पद्मसेन राजसभा में बैठे हुए थे उसी समय बन नाम के माली ने आकर अनेक फल -फूल भेंट करते हुए कहा की महाराज ! प्रीतिकर बनमें सर्वगुप्त केवली का शुभागमन हुआ है । राजा पद्मसेन केवली का आगमन सुनकर अत्यन्त हर्षित हुए । उन के समस्त शरीर में मारे हर्ष के रोमांच निकल आये और आंखों

से हर्षके -आंसू बहने लगे । उसी समय उन्होंने सिंहासन से उठकर जिस ओर परमेश्वर सर्वगुप्त विराजमान थे उस ओर सात पैँड चलकर परोक्ष नमस्कार किया । फिर समस्त परिवार और नगर के प्रतिष्ठित लोगों के साथ साथ उनकी वन्दना केलिये प्रीतिकर नाम के बन में गये ।

केवल सर्वगुप्त से उस बन की अपूर्व ही शोभा हो गई थी । उस में एक साथ चहों ऋतुएं अपनी अपनी शोभा प्रकट कर रही थी । महाराज पद्मसेनने विनत मूर्धा होकर केवली के चरणों में प्रणाम किया और उपदेश सुनने की इच्छासे वहीं यथोचित स्थान पर बैठ गये । केवली भगवान ने दिव्य ध्वनिके द्वारा सात तत्वों का व्याख्यान किया और चतुर्गति रूप संसार के दुःखों का वर्णन किया । संसार का दुःखमय वातावरण सुनकर महाराज पद्मसेन का हृदय एकदम बिभीत हो गया । उसी समय उनके हृदय में वैराग्य सागर की तरल तरंगे - उठने लगी । जब केवली महाराज की दिव्य ध्वनि से उन्हें पता चला कि अब मेरे केवल दो भव ही बाकी रह गये है । तब तो उनके आनन्द का ठिकाना नहीं रहा । उन्होंने घर आकर पद्म नामक पुत्रके लिये राज्य दिया और फिर बनमें जाकर उन्ही केवलीके निकट जिनदीक्षा ले ली । उनके साथ रहकर उन्ही से ग्यारह अंगों का अध्ययन किया और दर्शन विशुद्धि आदि सोलह कारण भावनाओं का चिन्तवन कर तीर्थकर नामक पुण्य प्रकृति का बन्ध किया जिससे आयुके अन्त में सन्यासपूर्वक शरीर छोडकर बारहवे सहस्रार स्वर्ग में सहस्रार नामके इन्द्र हुए ।

वहां उनकी आयु अठारह सागर की थी, एक धनुष -चार हाथ ऊंचा शरीर था, जघन्य शुक्ल लेश्या थी, वे वहां अठारह हजार वर्ष बाद आहर लेते और नौ महा बाद श्वासोच्छ्वास ग्रहण करते थे । वहां अनेक देवियां अपने अतुल्य रूपसे उनके लोचनों को प्रसन्न किया करती थी । उन्हें जन्मसे ही अवधिज्ञान था जिस से वे चौथे नरक तककी वार्ता जान लेते थे । वे अपनी दिव्य शक्ति से सब जगह घुम घुमकर प्रकृति की अद्भुत विभूति देखते थे । यही सहस्रारेन्द्र आगे भव में भगवान विमलनाथ होंगे ।

## २ वर्तमान परिचय

भरत क्षेत्रे की कम्पिला नगरी में इक्ष्वाकुवंशीय राजा कृतवर्मा राज्य करते थे । उनकी महारानी का नाम जयश्यामा था । पाठक जिस सहस्रारेन्द्र से परिचित है उसकी आयु जब सिर्फ छह माह की बाकी रह गई तभीसे महाराज कृतवर्मा के घर पर देवोंने रत्नों की वर्षा करनी शुरु कर दी । महादेवी जयश्यामानें ज्येष्ठ कृष्ण दशमी के दिन उत्तरा भाद्रपद नक्षत्र में रात्रि के पिछले भाग में सोलह स्वप्न देखे और उसी समय अपने मुखकमलमें प्रवेश करता हुआ

एक गन्धसिन्दुर - उत्तम हाथी देखा । उसी समय उक्त इन्द्रने स्वर्गवसुन्धरा से मोह छोडकर उसके गर्भ में प्रवेश किया । सवेरा होते ही उसने प्राणनाथ कृतवर्मा से स्वप्नों का फल पूछा तब उन्होने कहा कि आज तुम्हारे गर्भ में किसी तीर्थकर बालकने अवतरण किया है । यह रत्नोंकी वर्षा और ये सोलह स्वप्न उसीकी विभूति बतला रहे है । इधर महाराज कृतवर्मा रानी जयश्यामा के लिये - स्वप्नोंका मधुर फल

सुनाकर आनन्द पहुंचा रहे थे उधर देवों के आसन कम्पायमान हुए जिससे उन्होंने भगवान विमलनाथ के गर्भावतार का निश्चय कर लिया और समस्त परिवार के साथ आकर कम्पिलापुरी में खूब उत्सव कियां अच्छे - अछे वस्त्राभूषणों से राजदम्पति का सत्कार किया । जैसे जैसे महारानी का गर्भ बढ़ता जाता था वैसे समस्त बन्धु बान्धुवों का हर्ष बढ़ता जाता था । नित्य प्रति होनेवाले अच्छे अछे शकुन सभी लोगो कों हर्षित करते थे । जब गर्भ के दिन पूर्ण हो गये तब महादेवी ने माघ शुक्ल चतुर्दशी के उत्तरा भाद्रपद नक्षत्र में मति श्रुति, अवधि ज्ञानधारी पुत्र रत्न को उत्पन्न किया । उसी समय इन्द्रदि देवों ने आकर जन्म कल्याण का उत्सव किया और अनेक प्रकारसे बाल तीर्थकर की स्तुति कर उनका विमलप्रभ नाम रक्खा । भगवान विमलप्रभ का राज परिवार में बड़े प्यारसे - लालन पालन होने लगा वे अपनी बाल्योचित चेष्टाओं से माता पिता को अत्यन्त हर्षित करते थे । वासुपूज्य स्वामी के मोक्ष जाने के तीस

सागर बाद भगवान विमलनाथ हुए थे । इनके उत्पन्न होनेके पहले एक पल्यतक भारतवर्ष में - धर्म का विच्छेद हो गया था । उन की आयु साठ लाख हर्व की थी । शरीर की ऊंचाई साठ धनुष और रंग सुवर्ण के समान पीला था । जब इनके कुमारकाल के पन्द्रह लाख वर्ष बीत गये तब इन्हें राज्य की प्राप्ति हुई । राज्य पाकर इन्होंने ऐसे ढंग से प्रजाका पालन किया जिससे - इनका निर्मल यश समस्त संसार में फैल गया था । महाराज कृतवर्मा ने अनेक सुन्दरी कन्याओं के साथ उनका विवाह कराया था । जिसके साथ तरह तरहके कौतुक करते हुए वे सुखसे समय बिताते थे । बीच बीचमें इन्द्र आदि देवता विनोद - गोष्ठियों के द्वारा उनका मन बहलाते रहते थे । इस तरह हर्ष पूर्वक राज्य करते हुए जब उन्हें तीन लाख वर्ष हो गये तब वे एक दिन उषाकालमें - किसी पर्वतकी शिखरपर आरुढ होकर सूर्योदय की प्रतीक्षा कर रहे थे । उस समय उनकी दृष्टि सहसा घासपर पडी हुई ओसपर पडी । वे उसे प्रकृति की अद्भुत देनगी समझकर बडे प्यार से देखने लगे । उसे देखकर उन्हें सन्देह होने लगा कि यह हरी भरी मोतियोंकी खेती है ? या हृदय बल्लभ चन्द्रमा के गाढ आलिंगन से टूटकर बिखरे हुए निशा - प्रेयसी के मुक्ताहार के मोती है ? या चकवा चकवी की विरह वेदना से दुःखी होकर प्रकृति महादेवी ने दुःखसे आंसू छोडे है । या विरहिणी नारियों पर तरस खाकर कृपालु चन्द्र महाराजने अमृत वर्षा की है ? या मदनदेव की निर्मल कीर्ति रुपी गंगा के जलकण बिखरे पडे है ? इस तरह भगवान विमलनाथ बडे प्रेमसे - उन हिमकणों को देख रहे थे । इतनेमें प्राची दिशासे सूर्य का उदय हो आया ।

उसकी अरुण प्रभा समस्त आकाश में फैल गई । धीरे - धीरे उसका तेज बढ ने लगा । विमलनाथ स्वामी ने अपनी कौतुक भरी दृष्टि हिमकणोंसे उठाकर प्राची की ओर डाली । सूर्यकी अरुण तेज को देखकर उन्हें बहूत ही आनन्द हुआ पर प्राची की ओर देखते हुए भी वे उन हिमकणोंको भूले नहीं थे । उन्होंने अपनी दृष्टि सूर्य से हटाकर ज्योही घासपर डाली त्योही उन्हें हिमकणोंका पता नहीं चला । क्योंकि वे सूर्यकी किरणों का संसर्ग पाकर क्षण एक में क्षिति में विलीन हो गये थे । इस विचित्र परिवर्तन से उनके दिलपर भारी ठेस पहुची । वे - सोचने लगे कि मैं जिन हिमकणों को एक क्षण पहले सतृष्ण लोचनोंसे देख रहा था अब द्वितीय क्षण में उनका पता नहीं है क्या सही संसार है ? संसारके प्रत्येक पदार्थ क्या इसी तरह क्षणभंगूर है ? ओह । मैं अब तक देखता हुआ भी नहीं देखता था । मैं भी सामान्य मनुष्यों की तरह विषयवासना में बहता चला गया ।

खेद ! आज इन हिमकणोंसे , ओस की बूंदोंसे दिव्य नेत्र प्राप्त हुए है । मैं अब अपना कर्तव्य निश्चय कर चुका । वह यह है कि मैं बहुत शीघ्र इस भंगुर संसार से - नाता तोड कर आपमे समा जाऊं । उसका उपाय दिगम्बर मुद्रा को छोड कर और कुछ नहीं है । अच्छा तो अब मुझे राज्य छोड कर इस निर्मल नभ के नीचे बैठकर आत्मध्यान करना चाहिए । ऐसा विचार कर भगवान विमलनाथ ने दीक्षा

धारण करने का दृढ निश्चय कर लिया । उसी समय ब्रह्मलोक से आकर लौकान्तिक देवोंने विचारों का समर्थन किया ।

अपना कार्य पूरा कर लौकान्तिक देव अपने अपने स्थान पर पहुंचे ही होंगे कि चतुर्निकाय के देव अपनी चेष्टाओं से वैराग्य गंगा को प्रवाहित करते हुए कम्पिला नगरी में - आये । भगवान भी अन्यमनस्क हो पर्वतमाला से उतरकर घरपर आये । वहां उन्होंने अभिषेक पूर्वक पुत्र केलिये राज्य दिया और आप देव निर्मित पालकी पर सवार होकर सहेतुक बन गये । वहां पहुंचकर उन्होंने नमः सिद्धेभ्यः कहते हुए माघ शुक्ला चतुर्थी के दिन उत्तरा भाद्रपद नक्षत्र में शम के समय एक हजार राजाओं के साथ दीक्षा ले ली । विशुद्धि के बढ़ने से उन्हें उसी समय मनःपर्यय ज्ञान प्राप्त हो गया । देव लोग तपःकल्याणक का उत्सव समाप्त कर अपने - अपने स्थानों पर चले गये ।

भगवान विमलप्रभ दो दिन का योग समाप्त कर तीसरे दिन आहर के लिये नन्दपुर पहुंचे । वहां उन्हें वहांके राजा जयकुमारने भक्तिपूर्वक आहार दिया । पात्रदान के प्रभाव से प्रभावित होकर जयकुमार महाराज के घरपर पंचाश्रय प्रकट किये । आहार के बाद वे पुनः बन में लौट आये और आत्मध्यान में लीन हो गये । इस तरह दो दिनके अन्तर से

आहार लेते - हुए उन्होंने मौन रहकर तीन वर्ष छद्मस्थ अवस्था में बिताय । इसके बाद उसी सहेतुक बनमें दो -दिनके उपवास की प्रतिज्ञा लेकर जामुन के पेड़ के नीचे ध्यान लगाकर विराजमान हुए । जिससे - उन्हें माघ शुक्ला षष्ठीके दिन शाम के समय उत्तरा भाद्रपद नक्षत्र में घातिया कर्मों का नाश होने - से पूर्णज्ञान केवलज्ञान प्राप्त हो गया । उसी समय देवोंने आकर ज्ञानकल्याणक का उत्सव किया इन्द्रकी आज्ञासे कुबेरने समवसरण की रचना की । उसके मध्य में सुवर्ण सिंहासनपर अन्तरीक्ष विराजमान होकर उन्होंने अपना मौन भंग किया, दिव्य उपदेशोंसे समस्त जनता को सन्तुष्ट कर दिया । जब उनका प्रथम उपदेश समाप्त हुआ तब इन्द्रने मधुर शब्दों में स्तुति कर उनसे अन्यत्र विहार करने की प्रार्थना की । इन्द्र की प्रार्थना सुनकर उन्होंने प्रायःसमस्त आर्य देशों में विहार किया । अनेक भव्य प्राणियों का संसार - सागर से समुद्धार किया । जगह-जगह स्याद्वाद वाणी के - द्वारा जीव - जीवादि तत्वों का व्याख्यान किया । उनके उपदेश से प्रभावित होकर अनेक नर-नारियों ने देशव्रत और महाव्रत ग्रहण किये थे ।

आचार्य गुणभद्र ने लिखा है कि उनके समवसरण में मन्दर आदि पचपन गणधर थे, ग्यारह सौ द्वादशांग के वेत्ता थे, छत्तीस हजार पांच सौ तीस शिक्षक थे । चार हजार आठ सौ अवधिज्ञानी थे, पांच हजार पांच सौ केवली थे । नौ हजार विक्रिया ऋद्धि के धारण करने - वाले - थे, पांच हजार पांच सौ मनः पर्यय ज्ञानी थे और तीन हजार छह सौ वादी थे इस तरह सब मिलाकर अड़सठ हजार मुनिराज थे । पद्मा आदि एक लाख तीन हजार आर्यिकाएं थी दो - लाख श्रावक चार लाख श्राविकाएं , असंख्यात देव - देवियां और संख्यात तिर्यच थे ।



जब आयु का एक माह बाकी रह गया तब वे सम्मोद शिखर पर आ विराजमान हुए । वहां उन्होंने योगनिरोधकरआषाढकृष्णअष्टमीकेदिनशुक्लधरारा अवशिष्ट अघातिया कर्मों का संहार किया और अपने शुभ समागम से मुक्ति वल्लभा को सन्तुष्ट किया । उसी समय देवोंने आकर उनके निर्वाण क्षेत्रकी पूजा की ।

भगवान अनन्तनाथ

त्वमीदृस्तादृश इत्ययं मम प्रलापलेशोऽल्पमते महामुने ।

अशेष माहात्म्य मनीर यन्नपि शिवाय संस्पर्श इवामृताम्बुधे ॥

- आचार्य समन्तभद्र

हे महामुने ! आप हो, वैसे हो , मुझ अल्पमति का यह प्रलाप, जब कि समस्त माहात्म्य को प्रकट नहीं कर रहा है तब भी सुधा - सागर केस्पर्शसे समान कल्याणकेलिये ही है ।

१. पूर्वभव वर्णन

धातकी खण्ड द्वीपमें पूर्व मेरु की ओर उत्तर दिशामें एक अरिष्ट नाम का नगर है जो अपनी शोभासे पृथ्वी का स्वर्ग कहलाता है । उसमें किसी समय पद्मरथ राजा राज्य करता था । उसकी प्रजा हमेशा उससे सन्तुष्ट रहती थी वह भी प्रजा की भलाई केकोई बात उठा नहीं रखता था । एक दिन वह स्वयंप्रभ तीर्थकर की बन्दना के लिये गया । वहांपर उस ने भक्ति पूर्वक स्तुति की और समीचीन धर्म का व्याख्यान सुना । व्याख्यान सुनने केबाद वह सोचने लगा कि सब इन्द्रियों के विषय क्षण भंगुर है । धन पैर की धूलि केसमान है , यौवन पहाड़ी नदी के वेग केसमान है , आयु जल केबबूलों की तर चपल है और भोग सर्प केभोग - फणकेसमन भयोत्पादक है । मै व्यर्थ हो राज्य कार्य में उलझा हुआ हूं , ऐसा विचार कर उसने धनमित्र पुत्र केलिये राज्य देकर किन्हीं आचार्य वर्ग के पास दिगम्बर दीक्षा

ले ली । उन्हींके पास रहकर उसने ग्यारह अंगो का अध्ययन किया और दर्शन विशुद्धि आदि सोलह भावनाओं का चिन्तवन कर तीर्थकर प्रकृति का बन्ध किया । वह आयुकेअन्त में सन्यास पूर्वक मरकर सोलहवें अच्युत स्वर्ग केपुष्पोत्तर विमान में देव हुआ । वहांपर उसकी आयु बाईस सागर की थी, साढे तीन हाथ ऊंचा शरीर था और शुक्ल लेशा थी । वह ग्यारह माह बाद श्वासोच्छ्वास लेता और बाईस हजार वर्ष बाद मानसिक आहार ग्रहण करता था । उसकेअनेक देवियां थी जो - अपने दिव्य रूपसे उसे हमेशा सन्तुष्ट किया करती थी । वहांपर कायिक प्रवीचार मैथुन नहीं था । किन्तु मनमें देवांगनाओं की अथिलाषा मात्र से उनकी कामव्यथा शान्त हो जाती थी । वह अपने -कहजात अवधिज्ञानसे सातवें नरक तकके रुपी पदार्थों को जानता था और अणिमा, महिमा आदि ऋद्धियों का स्वामी था । यही देव आगे भवमें भगवान अनन्तनाथ होगा ।

वर्तमान परिचय

जम्बू द्वीप के दक्षिण भरतक्षेत्र में अयोध्या नगरी है । उसमें किसी समय इक्ष्वाकुवंशीय - सिंहसेन राजा राज्य करते थे । उनकी महारानी का नाम जयश्यामा था उस समय जयश्यामा - के समान रूपवती, शीलवती , और सौभाग्यवती स्त्री दुसरी नहीं थी । जब ऊपर कहे हुए देवकी वहांकी स्थिति छह माह की बाकी रह गई तबसे राजा सिंहसेन के घरपर कुबेर ने रत्नों - की वर्षा करना शुरु कर दी और बापी , कुप, तालाब , परिखा , प्राकार आदिसे शोभायमान नई अयोध्या को रचना कर उसमें राजा तथा समस्त नागरिकों को ठहराया । कार्तिक कृष्णा - प्रतिपदा के दिन रेवती नक्षत्र में रात्रि के पिछले पहरमें महादेवी जयश्यामा ने गजेन्द्र आदि सोलह स्वप्न देखे और अन्तमें मुंहमे घुसते हुए किसी सुन्दर हाथीको देखा । उसी समय उक्त देव ने स्वर्गीय वसुधा से मोह तोड कर उसके गर्भ में प्रवेश किया । सबेरा होते ही उसने पतिदेव महाराज सिंहसेन से स्वप्नों का फल पूछा । वे अवधिज्ञान से जानकर कहने लगे कि आज तुम्हारे गर्भ में तीर्थकर बालक ने अवतार लिया है । ये सब इसीके अभ्युदय के सूचक है इधर महाराज रानीके सामने तीर्थकर के माहात्म्य और उनके पुण्यके अतिशय का वर्णन कर रहे थे ।

उधर देवोंके जय जय शब्दसे आकाश गूंज उठा । देवोंने आकर राज भवन की प्रदक्षिणाएं की, स्वर्गसे लाये हुए वस्त्राभूषणों से राजदम्पति का सत्कार किया तथा और भी अनेक उत्सव मनाकर अपने स्थानों की ओर प्रस्थान किया । यह सब देखकर रानी जयश्यामा के आनन्द का पार नहीं रहा । धीरे धीरे गर्भ के नौ मास पूर्ण होने पर उसने ज्येष्ठ कृष्ण द्वादशी के दिन बालक भगवान् अनन्तनाथ को उत्पन्न किया । उसी समय देवों ने आकर बालक को मेरु पर्वत पर ले जाकर जन्माभिषेक किया और फिर अयोध्यामें वापिस आकर अनेक उत्सव किये । इन्द्र ने आनन्द नाम का नाटक किया और अप्सराओं ने मनोहर नृत्य से प्रजाको अनुरंजित किया । सबकी सलाहसे बालक का नाम अनन्तनाथ रक्खा गया था जो कि बिलकुल ठीक मालूम होता था क्योंकि उनके गुणों का अन्त नहीं था 'पार नहीं था- जन्मोत्सवके उपलक्ष्य में अयोध्यापुरी इतनी सजाई गई थी कि वह अपनी शोभा के सामने स्वर्गपुरीको भी नीचा समझती थी । महाराज सिंहसेन ने हृदय खोलकर याचकोंको मनवांछित दान दिया । देव लोग जन्म का उत्सव पूरा कर अपने - अपने घर गये । इधर राज - परिवारमें बालक अनन्तनाथ का बडे प्यार से लालन - पालन होने लगा । वे अपनी बाल - कालकी मनोहर चेष्टाओंसे माता - पिताका कौतुक बढाते थे ।

भगवान् विमलनाथ के बाद सौ सागर और पौन पल्य बीत जानेपर श्री अनन्तनाथ हुए थे । इनकी आयु तीस लाख वर्ष की थी, पचास धनुष ऊंचा शरीर था, स्वर्ण के समान कान्ति थी, इन्हें जन्मसे ही अवधिज्ञान था । सात लाख पचास हजार वर्ष बीत जाने पर उन्हें राज्य की प्राप्ति हुई थी । वे साम, दाम भेद और दण्ड के द्वारा राज्य का पालन करते थे । असंख्य राजा इनकी आज्ञाको माला की तरह अपने

शिर का आभूषण बनाते थे । ये प्रजाको चाहते थे और प्रजा इनको चाहती थी । महाराज सिंहसेन ने इनका कई सुन्दर कन्याओं के साथ विवाह करवाया था ।

जिस से इनका गृहस्थ जीवन अनन्त सुखमय हो गया था ।

जब राज्य करते हुए इन्हें पन्द्रह लाख वर्ष बीत गये तब एक दिन उल्कापात होने - से इन्हें वैराग्य उत्पन्न हो गया । इन्होंने समस्त संसार से ममत्व छोडकर दीक्षा लेने का पक्का निश्चय कर लिया । उसी समय लौकान्तिक देवोंने आकर उनकी स्तुति की, उनके विचारों की सराहना की और अनित्य आदि बारह भावनाओं का स्वरूप प्रकट किया जिससे उनकी वैराग्यधारा और भी अधिक दृढगति से प्रवाहित होने लगी । निदान भगवान् अनन्तनाथ , अनन्त विजय नामक पुत्रके लिये राज्य देकर देवनिर्मित सागरदत्ता पालकी पर सवार हो सहेतुक बनमें पहुंचे । वहां उन्होंने तीन दिनके उपवास की प्रतिज्ञा कर ज्येष्ठ कृष्णा द्वादशी के दिन रेवती नक्षत्रमें शाम के समय एक हजार राजाओंके साथ जिनदीक्षा ले ली । देवोंने दीक्षा - कल्याणक का उत्सव किया । उन्हें दीक्षा लेते ही मनःपर्यय ज्ञान तथा अनेक ऋद्धियां प्राप्त हो गई थी । प्रथम योग समाप्त हो जाने के बाद वे आहार के लिये साकेत अयोध्यापुरी में गये । वहां पुण्यात्मा विशाख ने पडगाह कर उन्हें नवधा भक्तिपूर्वक आहार दिया । देवोंने उसके घर पर पंचाश्रयर्च प्रकट किये । भगवान् अनन्तनाथ आहार लेने के बाद पुनः बनमें लौट आये वहां योग धारणकर विराजमान हो गये । इस तरह कठिन तपश्चरण करते हुए उन्होंने छद्मस्थ अवस्थाके दो वर्ष मौनपूर्वक बिताये । इसके बाद वे उसी सहेतुक बनमें पीपल वृक्षके नीचे ध्यान लगाकर विराजमान थे कि उत्तरोत्तर विशुद्धता के बढनेसे उन्हें चैत्र कृष्णा अमावस्या के दिन रेवती नक्षत्र में दिव्य आलोक केवलज्ञान प्राप्त हो गया । उसी समय देवोंने आकर समवसरण की रचना की और ज्ञान - कल्याण का उत्सव किया । भगवान् अनन्तनाथ ने समवसरण के मध्य में विराजमान होकर दिव्य ध्वनिके द्वारा मौन भंग किया । स्याद्वाद पताका से अंकित जीव अजीव तत्वों का व्याख्यान किया । संसार का दिग्दर्शन कराया उसके दुःखों का वर्णन किया । जिससे प्रतिबुद्ध होकर अनेक मानवों ने मुनि -दीक्षा ग्रहण की । प्रथम उपदेश समाप्त होनेके बाद उन्होंने कई जगह विहार किया ।

जिससे प्रायः सभी ओर जैन धर्म का प्रकाश फैल गया । इनके उत्पन्न होने के पहले - जो कुछ धर्म का विच्छेद हो गया था वह दूर हो गया और लोगों के हृदयों में धर्म सरोवर लहराने लगा । उनके समवसरण में जय आदि पचास गणधर थे एक हजार द्वादशांगके जानकार थे, तीन हजार दो सौ वादी शास्त्रार्थ करने वाले थे , उनतालीस हजार पांच सौ शिक्षक थे, चार हजार तीन सौ अवधिज्ञानी थे , पांच हजार केवली थे, आठ हजार विकिया ऋद्धिके धारक - थे । इस तरह सब मिलाकर छ्यासठ हजार मुनिराज थे । सर्वश्री आदि एक लाख आठ हजार आर्यिकाये थी, दो लाख श्रावक चार लाख श्राविकायें , असंख्यात देव - देवियां और संख्यात तिर्यच थे । समस्त आर्य क्षेत्रोंमें विहार करनेके बाद वे आयुके अन्तमें सम्मेद शिखर पर जा विराजमान हुए ।

वहां उन्होंने छह हजार मुनियों के साथ योग निरोध कर एक महीने तक प्रतिमा योग धारण किया । उसी समय सुक्ष्म क्रिया प्रतिपाति और व्युपरत क्रिया निवृत्ति शुक्ल ध्यानोके द्वारा अवशिष्ट अघातिया कर्मो का नाश कर चैत्र कृष्ण अमावस्या के दिन उषाकाल में मोक्ष भवनमें प्रवेश किया । देवों ने आकर निर्वाण क्षेत्र की पूजा की और उनके गुण गाते हुए अपने अपने घरोंकी ओर प्रस्थान किया ।

भगवान धर्मनाथ

धर्मैयस्मिन् समद्भूता, धर्मादश सुनिर्मलाः ।

सधर्मः शर्ममे दद्या, दधर्म मप हृत्यनः ॥

- गुणभद्र

जिन धर्मनाथ में उत्तम क्षमा आदि निर्मल दश धर्म प्रकट हुए थे वे धर्मनाथ स्वामी मेरे - अधर्मको दुष्कृत्य को हरकर सुख प्रदान करें ।

१ पूर्वभव वर्णन

पूर्व धातकी खण्ड में पूर्व दिशा की ओर सीता नदी के दाहिने किनारे पर एक सुसीमा नाम का नगर है उसमें किसी समय दशरथ नामका राजा राज्य करता था । वह बहुत ही बलवान् था । उसने समस्त शत्रुओं को जीतकर अपने राज्य की नींव अधिक मजबूत कर ली थी । उसका प्रताप और यश सारे संसार में फैल रहा था । एक दिन चैत्र शुक्ला पूर्णिमा के दिन नगरके समस्त लोग वसन्त का उत्सव मना रहे थे । राजा भी उस उत्सवसे वंचित नहीं रहा ।

परन्तु सहसा चन्द्र ग्रहण देखकर उसका हृदय विषयोंसे विरक्त हो गया । वह सोचने लगा कि जब राजा चन्द्रमा पर ऐसी विपत्ति पड सकती है तब मेरे जैसे क्षुद्र नर कीटों पर विपत्ति पडना असम्भव नहीं है । मैं आज तक अपने बुद्ध स्वभाव को छोडकर व्यर्थ ही विषयोंमें उलझा रहा । हा ! हन्त ! अब मैं शीघ्र ही बुढापा आने के पहले ही आत्म कल्याण करने का यत्न करुंगा । बनमें जाकर जिन दीक्षा धारण करुंगा ऐसा सोचकर महाराज दशरथने जब अपने विचार राजसभा में प्रकट किये तब एक मिथ्या दृष्टी मन्त्री बोला नाथ ! भूत चतुष्टय पृथ्वी जल, अग्नि, वायू से बने हुए इस शरीर को छोडकर आत्मा नाम का कोई पदार्थ नहीं है । यदि होता तो जन्म के पहले और मृत्युके पश्चात् दिखता क्यों नहीं ? इसलिये - आप ढोंगियोंके प्रपंचमें आकर वर्तमान के सुख छोड व्यर्थ ही जंगलमें कष्ट मत उठाइये । ऐसा कौन बुद्धिमान होगा जो गायके स्तनों को छोडकर उसके सींगोंसे दूध दुहेगा । मन्त्री के बचन सुनकर राजाने कहा सचिव ! तुम समीचीन ज्ञानसे सर्वथा रहित मालूम होते हो । हमारे और तुम्हारे - शरीरमें जो अहम् - मैं - इस तरह का ज्ञान होता है वही आत्म पदार्थ की सत्ता सिद्ध कर देता है । फिर करण इन्द्रियोंमें व्यापार देखकर कर्ता - आत्मा का अनुमान भी किया जा सकता है । इसलिये आत्मा पदार्थ, प्रमाण और अनुभवसे सिद्ध है । उसका विरोध नहीं किया जा सकता । तुमने जो भूत चतुष्टयसे जीव की उत्पत्ति होना बतलाया है वह व्यभिचरित है क्योंकि एक ऐसे - क्षेत्र में जहां पर खुलकर हवा बह रही है अग्नि के

ऊपर रखी हुई जलभूत बटलोई में किसी भी जीवकी उत्पत्ति नहीं देखी जाती । जिस के रहते - हुए ही कार्य हो और उसके अभाव में न हो वहीं सच्चा सम्यक हेतु कहलाता है । पर यहां तो दूसरी ही बात है । यदि जन्म के पहले मृत्युके पश्चात् जीवात्मा को ----- सिद्ध न मानी जावे तो मद्यप्रसूत (तत्काल में उत्पन्न हुए) बालक के दूध पीने का संस्कार कहां

से आया ? जातिस्मरण और अवधिज्ञान से जो मनुष्य अपने कितने ही भव स्पष्ट देख लेते हैं वह क्या है ? रही न दिखने की बात , सो वह अमूर्तिक इन्द्रियोंसे उसका अवलोकन नहीं हो सकता । क्या कभी अत्यन्त तीक्ष्ण तलवारों की धारसे आकाश का भेदन देखा गया है ? इत्यादि रूपसे मंत्री के नास्तिक बिचारों को दूर हटा, उसे जैन तत्वों का रहस्य सुना और महारथ पुत्र के लिये राज्य दे राजा दशरथ बन में जाकर विमलवाहन नाम के मुनिराज के पास दीक्षित हो गया । वहां उसने खुब तपश्चरण किया तथा सतत अभ्यास के द्वारा ग्यारह अंगों का ज्ञान प्राप्त कर लिया । मुनिराज दशरथ ने विशुद्ध हृदय से दर्शन विशुद्धि आदि सोलह कारण भावनाओं का चिन्तन किया जिस से उन्हें तीर्थकर नामक महा पुण्य प्रकृतिका बन्ध हो गया । वे आयुके अन्तमें सन्यास पूर्वक शरीर छोड़ कर सर्वार्थ सिद्धि विमानमें अहमिन्द्र हुए । वहां उनकी आयु तेतीस सागर की थी, एक हाथ ऊंचा सफेद शरीर था । वे तेतीस हजार वर्ष बाद मानसिक आहार लेते और तेतीस पक्ष बाद श्वासोच्छ्वास ग्रहण करते थे । उन्हें जन्मसे ही अवधिज्ञान था जिससे वे सातवे नरक तक के रूपी पदार्थों को स्पष्ट रूपसे जानते , देखते थे । वे हमेशा तत्व चर्चाओं में ही अपना समय बिताया करते थे । कषायों के मन्द होनेसे वहां उनकी प्रवृत्ति विषयों की और झुकती ही नहीं थी । वे उस आत्मीय आनन्द का उपभोग करते थे जो असंख्य विषयोंमें भी प्राप्त नहीं हो सकता । यही अहमिन्द्र आगे - के भव में भगवान् धर्मनाथ होगा और अपने दिव्य उपदेश से संसार का कल्याण करेगा ।

#### ( १ ) वर्तमान परिचय

जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में किसी समय रत्नपुर नामका एक नगर था उसमें महासेन महाराज राज्य करते थे । उनकी महादेवी का नाम सुब्रता था । यद्यपि महासेन के अन्तःपुर में सैकड़ों रूपवती स्त्रियां थी तथापि उनका जैसा प्रेम महादेवी सुब्रता पर था वैसा किन्ही दूसरी स्त्रियों पर नहीं था । महासेन बहुत ही शूर, वीर और रणधीर राजा थे । उन्होंने अपने बाहुबल से बड़े बड़े शत्रुओं के दांत खट्टे कर अपने राज्यको बहुत ही सुविशाल और सुदृढ बना लिया था । मन्त्रियों के ऊपर राज्य भार छोड़कर वे एक तरहसे निश्चिन्त ही रहते थे ।

महादेवी सुब्रता की अवस्था दिन प्रतिदिन बीतती जाती थी । पर उसके कोई सन्तान नहीं होती थी । एक दिन उसपर ज्योंही राजा की दृष्टि पड़ी त्योंही उन्हें पुत्र की चिन्ताने - धर दबाया । वे सोचने लगे कि जिनके पुत्र नहीं हैं संसार में उनका जीवन निःसार है । पुत्र के अंग स्पर्श से जो सुख होता है उसकी सोलहवी कलाको भी चन्द्र, चन्दन , हिम हारयष्टि , मलयानिल का स्पर्श नहीं पा सकता । जिस

तरह असंख्यात ताराओं से भरा हुआ आकाश भी एक चन्द्रमा के बिना शोभा नहीं पाता है उसी तरह अनेक मनुष्योंसे भरा हुआ यह मेरा अन्तःपुर भी पुत्र के बिना शोभा नहीं पा रहा है ।

क्या करूं ? कहां जाऊं ? किससे पुत्र की याचना करूं , इस तरह सोचते हुए राजा का चित्त किसी भी तरह निश्चल नहीं हो सका । उनका बदन स्याह हो गया और मुंह से निःश्वास निकलने लगी । सच है संसारमें सर्वसुखी होना सुदुर्लभ है । राजा पुत्र चिन्ता में दुखी हो रहे थे कि इतनेमें बनमाली ने अनेक फल- फूल भेंट करते हुए कहा महाराज ! उद्यान में प्राचेतस नामके महर्षि आये हुए हैं । उनके साथ अनेक मुनिराज हैं जो उनके शिष्य मालूम होते हैं । उन सबके समागमसे बनकी शोभा अपूर्व ही हो गई है । एक साथ छहों ऋतुओंने बनधारामें शोभा प्रकट कर दी है और सिंह , व्याघ्र, हाथी आदि जीव परस्परका विरोध छोड़कर प्रेमसे हिल -मिल रहे हैं । बनमें मुनिराज का आगमन सुनकर राजाको इतना हर्ष हुआ कि वह शरीर में नहीं समा सका और आंसुओं के छलसे बाहिर निकल पडा । उसने -उसी समय सिंहासनसे उठकर मुनिराज केलिये परोक्ष प्रणाम किया तथा बनमाली को उचित पारितोषिक देकर बिदा किया । फिर समस्त परिवारके साथ मुनि बन्दनाके लिये बनमें गया । वहां उसने भक्तिपूर्वक साष्टांग नमस्कार कर प्राचेतस महर्षिसे धर्म का स्वरूप सुना , जीव, अजीव आदि पदार्थों का व्याख्यान सुना और फिर उनसे सुब्रता के पुत्र नहीं होने का कारण पूछा । मुनिराज प्राचेतसने अपने अवधिज्ञान से सब हाल जानकर कहा - राजन् ! पुत्रके अभाव में इस तरह दुःखी मत होओ । आपकी इस सुब्रता महारानी के गर्भ से पन्द्रह माह के- बाद जगद्बन्ध परमेश्वर धर्मनाथ का जन्म होगा जो अपना , तुम्हारा नहीं , सारे संसार का कल्याण करेगा ।

मुनिराज के बचनों से प्रसन्न होकर राजाने फिर पूछा महाराज ! उस जीवने - किस भव में किस तरह और कैसा पुण्य किया था । जिससे वह इतने विशाल तीर्थकर पद को प्राप्त होने वाला है ? मैं उसके पूर्वभव सुनना चाहता हूं । तब प्राचेतस महर्षि ने अपने - अवधिज्ञान रूपी नेत्र से देखकर उस के पहले के दो भवों का वर्णन किया जो पहले लिखे जा चुके हैं राजा मुनिराज को नमस्कार कर परिवार सहित अपने घर लौट आया । उसी दिनसे राजभवनमें रत्नों की वर्षा होनी शुरु हो गई इन्द्र की आज्ञा पाकर अनेक दिक्कुमारियां रानी सुब्रता की सेवा केलिये -आ गई जिससे राजा को मुनिराज के बचनों पर दृढ विश्वास हो -गया । देव कुमारियों ने - अन्तःपुरमें जाकर रानी सुब्रता की इस तरह सेवा की कि उसका छह मास का समय क्षण एक की तरह निकल गया । वैशाख शुक्ल १३ के दिन रेवती नक्षत्रमें रानीने १६ स्वप्न देखे, उसी समय उक्त अहमिन्द्र ने सर्वार्थ सिद्धि के सुरम्य विमान से सम्बन्ध तोड़कर उस के गर्भमें प्रवेश किया । सबेरा होते ही रानी ने पतिदेव महासेन महाराज से स्वप्नों का फल पूछा । उन्होंने भी एक एक कर स्वप्नों का फल बतलाते -हुए कहा कि ये सब तुम्हारे भावी पुत्र के अभ्युदय के सूचक हैं । उसी समय देवोंने आकर गर्भ - कल्याण का उत्सव किया और स्वर्ग से लाये हुए वस्त्र - आभूषणों से राजा रानी का खुब सत्कार किया । नौ माह बीतने पर पुष्य नक्षत्र में महारानी सुब्रताने तीन ज्ञानसे युक्त पुत्र उत्पन्न

किया । उसी समय देवों न मेरु पर्वत पर ले जाकर बालक का क्षीर - सागरके जलसे कलशाभिषेक किया । अभिषेक विधि समाप्त होने पर इन्द्रानीने कोमल धवल वस्त्रसे शरीर पोंछकर उसमें बालोचित आभूषण पहिनाये । इन्द्रने मनोहर शब्दोंमें उनकी स्तुति की और धर्मनाथ नाम रक्खा । मेरु पर्वत से लौटकर इन्द्रने भगवान् धर्मनाथको माता सुब्रताके पास भेज दिया और स्वयं नृत्य संगीत आदि से जन्म का उत्सव मनाकर परिवार सहित स्वर्गको चला गया राज्य परिवारमें भगवान् धर्मनाथ का बड़े प्रेम से - लालन पालन होने लगा ।

धीरे धीरे शिशु अवस्था पार कर वे कुमार अवस्था में पहुंचे । उन्हें पूर्वभवके संस्कार से बिना किसी गुरुके पास पढ़े हुए ही समस्त विद्यायें प्राप्त हो गई थी । अल्पवयस्क भगवान् धर्मनाथ के अद्भुत पाण्डित्य देखकर अच्छे अच्छे विद्वानों के दिमाग चकरा जाते थे । जब धर्मनाथ स्वामी ने युवावस्था में पदार्पण किया तब उनकी नैसर्गिक शोभा और भी अधिक बढ़ गई थी । अर्धचन्द्र के समान विस्तृत ललाट , कमल दलसी आंखे , तोता सा नाक, मोती से दांत , पूर्णचन्द्रमा मुख , शंखसा कण्ठ , मेरु कटकसा वक्षःस्थल हाथीकी सूंडसी भुजायें , स्थूल कन्धे, गहरी नाभि सुविस्तृत नितम्ब, सुदृढ ऊरुं , गतिशील जंघाएं और आरक्त चरण कमल । उनके शरीर के सभी अवयव अपूर्व शोभा धारण कर रहे थे । उनकी आवाज नूतन जलधर की सुरम्य गर्जना के समान सज्जन मयूरोंको सहसा उत्कण्ठित कर देती थी । अब वे राज्य कार्यमें भी पिता को मदद पहुंचाने लगे । एक दिन महाराज महासेनने उन्हें युवराज बनाकर राज्य का बहुत कुछ भार उनको सुपूर्द कर दिया जिससे उनके कन्धोंको बहुत कुछ आराम मिला था । किसी समय राजा महासेन राज सभा में बैठे हुए थे । उन्हींके पास में युवराज धर्मनाथ जी विराजमान थे । मन्त्री , पुरोहित तथा अन्य सभासद भी अपने अपने योग्य स्थानोंपर बैठे हुए थे । उसी समय द्वारपाल के साथ विदर्भ देशके कुण्डिनपुर नगर के राजा प्रताप राजका दूत सभामें आया और महाराजको सविनय नमस्कार कर उचित स्थान पर बैठ गया । राजा ने उससे आने का कारण पूछा तब उसने हाथ जोड़ कर कहा कि महाराज ! विदर्भ देश कुण्डिनपुरके राजा प्रतापराजने अपनी लडकी श्रृंगारवती का स्वयम्बर रचने का निश्चय किया है । कहकर उसने एक चित्रपट राजाके सामने रख दिया । ज्योंही राजा की दृष्टि इस चित्रपट पर पड़ी ज्योंही श्रृंगार वतीका रूप देखकर वे चकित रह गये । उन्होंने मनमें निश्चय कर लिया कि यह कन्या सर्वथा धर्मनाथके योग्य है । पर उन्होंने युवराज का अभिप्राय जानने के लिये उनकी ओर दृष्टि डाली । युवराजने भी मन्द मुसकान से पिता के विचारों का समर्थन कर दिया । फिर क्या था ? राजा महासेनने दूतका सत्कार कर उसे विदा किया और युवराज को - असंख्य सेनाके साथ कुण्डिनपुर भेजा । युवराज का एक घनिष्ठ मित्र प्रभाकर था जो स्यंबर यात्रा के समय उन्हींके साथ था । मार्गमें जब से बिन्ध्याचल पर पहुंचे तब प्रभाकरने मनोहर शब्दोंमें उसका वर्णन किया । वहीं एक किन्नरेन्द्र ने अपनी नगरीमें लेजाकर युवराजका सन्मान किया । उनके साथ की समस्त सेना उस दिन वहीं पर सुखसे रह आई ।

भगवान् धर्मनाथ के प्रभाव से वहां बनमें एक साथ छोटे ऋतुएं प्रकट हो गई थी । जिससे सैनिकों ने तरह तरह की क्रीडाओं से मार्गश्रम थकावट दूर की । वहां से चलकर कुछ दिन बाद जब वे कुण्डिनपुर पहुंचे तब वहांके राजा प्रताप राजने प्रतिष्ठित मनुष्योंके साथ आकर युवराजका खूब सत्कार किया और बड़ा हर्ष प्रकट किया ।

प्रतापराज ने युवराज को एक विशाल भवलमें ठहराया । उनके पहुंचनेसे कुण्डिनपुर की सजावट खूब की गई थी । धीरे धीरे अनेक राजकुमार आ आकर कुण्डिनपुरमें जमा हो गये । किसी दिन निश्चित समय पर स्वयम्बर सभा सजाई गई । उनमें चारों ओर ऊंचे ऊंचे सिंहासनोंपर राजकुमार बैठाये गये । युवराज धर्मनाथ ने भी प्रभाकर मित्रके साथ एक ऊंचे - आसनको अलंकृत किया । कुछ देर बाद कुमारी श्रृंगारवती हस्तिनी पर बैठकर स्वयम्बर मण्डप - में आई । उनके साथ अनेक सहेलियां भी थी । सुभद्रा नामकी प्रतिहारी एक एक कर समस्त राजकुमारी का परिचय सुनाती जाती थी । पर श्रृंगारवती की दृष्टि किसीपर भी स्थिर नहीं हुई अन्त में युवराज धर्मनाथ के पास पहुंचनेपर सुभद्राने कहा -कुमारि ! उत्तर कोशल देशमें रत्नपुर नामका एक सुन्दर नगर है उसमें महाराज महासेन राज्य करते हैं । उनकी महारानी का नाम सुब्रता है ये युवराज उन्हींके पुत्र हैं इनका भगवान धर्मनाथ नाम है । इनके जन्म होने के पन्द्रह माह पहले से देवोंने रत्न वर्षा की थी । इस समय भारतवर्ष में इन जैसा पुण्यात्मा दूसरा पुरुष नहीं है । प्रतिहारीके मुंहसे युवराज की प्रशंसा सुन और उनके दिव्य सौन्दर्य पर मोहित होकर कुमारी श्रृंगारवतीने लज्जासे कांपते हुए हाथमें उनके गलेमें वर माला डाल दी । उसी समय सब ओरसे साधु साधु की आवाज आने लगी । महाराज प्रतापराज युवराज को विवाह वेदिका पर ले गये और वहां उनके साथ विधिपूर्वक श्रृंगारवती का विवाह करा दिया ।

शादी के दूसरे दिन भगवान् धर्मनाथ ससुराल में किसी ऊंचे आसनपर बैठे हुए थे । इतनेमें पिता महासेन का एक दूत पत्र लेकर उनके पास आया । पत्र पढकर उन्होंने ने प्रतापराज से कहा - कि पिताजीने मुझे आवश्यक कार्यवश शीघ्र ही बुलाया है इसलिये जाने की आज्ञा दे दीजिये । प्रतापराज उन्हें जानेसे न रोक सके । युवराज धर्मनाथ समस्त सेना का भार सेनापति पर छोड कर श्रृंगारवती के साथ देवनिर्मित पुष्पक विमानपर आरूढ होकर शीघ्र ही रत्नपुर वापिस आ गये । वहां महाराज महासेन ने पुत्र - वधू का खूब सत्कार किया । किसी दिन राजा महासेन संसारसे विरक्त होकर राज्य का समस्त भर धर्मनाथ पर छोड कर दीक्षित हो गये । देवों ने राज्याभिषेक कर धर्मनाथ का राजा होना घोषित कर दिया ।

राज्य प्राप्ति के समय उनकी आयु ढाई लाख वर्षकी थी । राज्य पाकर उन्होंने - नीतिपूर्वक प्रजा का पालन किया जिससे उनकी कीर्ति - वाहिनी सहस्र धारा हो सब ओर फैल गई । इस तरह राज्य करते हुए जब उनके पांच लाख वर्ष बीत गये । तब एक दिन रात के समय उल्कापात देख कर उनका चित्त विषयोंसे सहसा विरक्त हो गया । उन्होंने सोचा कि मैं नित्य समझ कर जिन पदार्थोंमें आसक्त हो



सकता हूँ वे सब इसी उल्का की तरह भंगुर है नाशशील है । इसलिये उन्हें छोड़कर अविनाशी मोक्षपद प्राप्त करना चाहिए । उसी समय लौकान्तिक देव आये और उन्होंने भी उनके विचारों का समर्थन किया । जिससे - उनका वैराग्य और भी अधिक बढ़ गया । निदान , वे सुधर्म नामक ज्येष्ठ पुत्रकेलिये - राज्य देकर देवनिर्मित नागदत्ता पालकीपर सवार हो शाल वनमें पहुंचे और वहां माघ शुक्ला त्रयोदशीके - दिन पुष्य नक्षत्रमें शामके समय एक हजार राजाओं के साथ दीक्षित हो गये । उन्हें दीक्षित होते - ही मनःपर्यय ज्ञान प्राप्त हो गया था । देव लोग दीक्षा - कल्याणक का उत्सव मनाकर अपने अपने - स्थानोंपर वापिस चले गये । मुनिराज धर्मनाथ तीन दिनके बाद आहार लेनेकेलिये पाटलिपुत्र पटना गये । वहां धन्यसेन राजाने उन्हें भक्तिपूर्वक आहार दिया । पात्रदान से प्रभावित होकर देवोंने धन्यसेनके घरपर पंचाश्चर्य प्रकट किये । धर्मनाथ आहार लेकर बनमें - लौट आये - और आत्मध्यान में अविचल हो गये । इस तरह एक वर्ष तक

तपश्चरण करते हुए उन्होंने - कई नगरोंमें विहार किया । वे दीक्षा लेने के बाद मौन पूर्वक रहते थे । एक वर्षकी छद्मस्थ अवस्था बीत जानेपर उन्हें उसी शाल बन में सप्तच्छद वृक्षके नीचे पौष शुक्ला पौर्णमासी के दिन केवलज्ञान प्राप्त हो गया । उसी समय देवोंने आकर कैवल्य प्राप्तिका उत्सव किया । इन्द्रकी आज्ञा पाकर कुवेरने दिव्यसभा समवसरण की रचना

कि उसके मध्यमें - सिंहासन पर विराजमान होकर उन्होंने अपना मौन भंग किया । दिव्य वनि के द्वारा जीव अजीव आदि तत्त्वों का व्याख्यान किया और संसारके दुःखों का वर्णन किया जिसे सुनकर अनेक नर-नारियों ने मुनि आर्यिकाओं और श्रावक श्राविकाओंके ब्रत धारण किये थे । प्रथम उपदेशके बाद इन्द्र ने विहार करनेकी प्रार्थना की । तब उन्होंने प्रायः समस्त आर्य क्षत्रोंमें विहार कर जैनधर्म का खुब प्रचार प्रसार किया । उनके समवसरण में अरिष्टसेन आदि ४३ गणधर थे ६११ अंग और १४ पूर्वोके जानकार थे, चालीस हजार सात सौ शिक्षक थे , तीन हजार छह सौ - अवधिज्ञानी थे, चार हजार पांच सौ केवली थे , सात हजार विक्रिया ऋद्धिके धारक थे , चार हजार पांच सौ मनःपर्यय ज्ञानी थे, और दो हजार आठ सौ वादी थे, इस तरह सब मिलाकर चौसठ हजार मुनिराज थे । सुब्रता आदि बासठ हजार चार सौ आर्यिकायें थी ।

दो लाख श्रावक , चार लाख श्राविकायें , असंख्यात देव देवियां और संख्यात तिर्यच थे । वे आयु के अन्तमें सम्मद शिखर पर पहुंचे और वहां आठ सौ मुनियोंके साथ योग निरोध कर ध्यानारुढ हो बैठ गये । उसी समय शुक्लध्यानके प्रतापसे अघातिया कर्मों का संहार कर जैष्ठ शुक्ला चतुर्थीके दिन नक्षत्रमें उन्होंने स्वातन्त्र्य लाभ किया । तत्काल देवोंने आकर उनके निवारण क्षेत्र की पूजा की । श्रीअनन्तनाथ तीर्थकर के मोक्ष जाने के बाद चार सागर बीत जानेपर भगवान धर्मनाथ हुअे थे । इनकी आयु भी इसी प्रमाण में शामिल है । इनकी पूर्णायु दस लाख वर्षकी थी । शरीर ४५ योजन ऊंचा था और रंग पीला

था । इनकी उत्पत्ति के पहले भारतवर्ष में आधे पल्य तक धर्मका विच्छेद हो गया था पर इनके उपदेश से वह सब दूर हो गया था और जैनधर्म - कल्पवृक्ष पुनः लह लहा उठा था ।

ॐ

भगवान् शान्तिनाथ

स्वदोष शान्त्याविहितात्म शान्तिः शान्तेर्विधाता शरणं गतानाम् ।

भूयाद् भवक्लेशभयोपशान्त्यै शान्तिर्जिनो मे भगवान् शरण्यः ॥

- आचार्य समन्तभद्र

अपने राग द्वेष आदि दोषों के दूर करनेसे शान्ति को धारक करने वाले शरणमें आये हुए प्राणियों के शान्ति के विधाता और शरणागतों की रक्षा करने में करने में - धुरीण भगवान् शान्तिनाथ हमारे संसार सम्बन्धी क्लेश और भवों की शान्ति केलिये होंवें । हमारे सांसारिक दुःख नष्ट करें ।

पूर्वभव परिचय

जम्बूद्वीप के पूर्व विदेह क्षेत्र में पुष्कलावती देशकी पुण्डीकिणी नगरी में किसी समय धनरथ नामका राजा राज्य करता था । उसकी महारानी का नाम मनोहरा था । उन दोनोंके मेघरथ और दृढरथ नामके दो पुत्र थे । उन में मेघरथ बड़ा और दृढरथ छोटा भाई था । वे दोनों भाई एक दूसरेसे बहुत प्यार करते थे , एकके बिना दूसरे को अच्छा नहीं लगता था । वे सूर्य और चन्द्रमा की तरह शोभित होते थे । उन दोनोंके पराकम बुद्धि, विनय, प्रताप , क्षमा, सत्य तथा त्याग आदि अनेक गुण स्वभावसे ही प्रकट हुए थे ।

जब दोनों भाई पूर्ण तरुण हो गये तब महाराज धनरथने बड़े पुत्र मेघरथ का विवाह प्रियमित्र और मनोरमा के साथ तथ दृढरथका सुमति के साथ किया । नव वधुओंके साथ अनेक क्रीडा कौतुक करते हुए दोनों भाई अपना समय सुखसे बिताने लगे । पाठकों को यह जानकर हर्ष होगा कि इनमेंसे बड़ा भाई मेघरथ इस भव से तीसरे भवमें भगवान् शान्तिनाथ होकर संसार का कल्याण करेगा और छोटा भाई दृढरथ तीसरे भव में चक्रयुध नाम का उसी का भाई होगा जो की श्री शान्तिनाथ का गणधर होकर मोक्ष प्राप्त करेगा ।

कुछ समय बाद मेघरथ की प्रियमित्र भार्यासे नन्दिवर्धन नामका पुत्र हुआ और दृढरथ की सुमति देवीसे वरसेन नाम का पुत्र हुआ । इस प्रकार पुत्र - पौत्र आदि सुख सामग्रीसे राजा धनरथ इन्द्रकी तरह शोभायमान होत थे । एक दिन महाराज धनरथ राजसभा में बैठे हुए थे , उनके दोनों - पुत्र भी उन्हीके पास बैठे थे कि इतनेमें प्रियमित्रकी सुषेणा नामकी दासी एक धनतुंड नामका मुर्गा लाई और राजासे कहने लगी कि जिसका मुर्गा इसे लडाईमें जीत लेगा मैं उसे एक हजार दीनार दूंगी । यह

सुनकर दृढ रथ की स्त्री सुमत की कांचना नामकी दासी उसकेसाथ लडाने - केलिये एक बज्रतुण्ड नाम का मुर्गा लाई । धनतुण्ड और बज्र तुण्डमें खुलकर लडाई होने - लगी ।

कभी सुषेणा का मुर्गा कांचना के मुर्गा को पीछे हटा देता और कभी कांचना का सुषेणाके मुर्गेका पीछे हटा देता था । जिससे दोनों दलके मनुष्य बारी बारीसे हर्षकी तालियां पीटते थे । दोनों मुर्गाओं के बलवीर्य से चकित होकर राजा धनरथ ने मेघरथ से पूछा कि इन मुर्गाओं में यह बल कहांसे आया ? राजकुमार मेघरथ को अवधिज्ञान था इसलिये वह शीघ्र ही सोचकर पिता के प्रश्न का नीचे लिखे उत्तर देने लगा - इसी जम्बूद्वीप के ऐरावत क्षेत्र में रत्नपूर एक नगर है उसमें समय भद्र और धन्य नाम के दो सहोदर सगे भाई रहते थे । वे दोनों गाडी चलाकर अपना पेट पालते थे । एक दिन उन दोनोंमें श्रीनदी के किनारे एक बैलके लिये लडाई हो पडी जिसमें वे दोनों ऐ दूसरे को मारकर कांचन नदीके किनारे श्वेतकर्ण और नामकर्ण नामके जंगली हाथी हुए । वहां भी वे दोनों पूर्वभव के वैरसे आपसमें लडकर मर गये जिससे अयोध्या नगरमें -किसी नन्दिमित्रा ग्वालाके घर पर उन्मत्त भैसे हुए । वहां भी दोनों लडकर मर गये । मर कर उसी नगरमें शक्तिवरसेन और शब्दवरसेन नामक राजकुमारों के यहां मेढे हुए । वहां भी दोनों लडकर मरे और मर कर ये मुर्गे हुए है । ये दोनों पूर्वभवके वैरसे ही आपसमें लड रहे है । उसी समय दो विद्याधर आकर उन मुर्गाओं का युद्ध देखने लगे । तब राजा धनरथने पूछा ये लोग कौन है ? और यहां कैसे आये है ? तब मेघरथने कहा कि महाराज । सुनिये जम्बूद्वीपने भरते क्षेत्र में जो विजयार्ध पर्वत है उसकी उत्तर श्रेणीमें एक कनकपुर नामका नगर है । उसमें गरुडवेग विद्याधर राज करता था । उसकी रानी का नाम घृतिषेणा था । उन दोनोंके दिषितिलक और चन्द्रतिलक नाम के दो पुत्र थे । एक दिन वे दोनों भाई सिध्दकूटकी बन्दना के लिये गये वही उन्हे दो चार ऋद्धिधारी मुनियों के दर्शन हुए । विद्याधर पुत्रोंने नियसहित नमस्कार कर उनसे अपने पूर्वभव पूछे । तब उनमेंसे एक मुनिराजने कहा कि पहले पूर्वघात की खण्डद्वीपके ऐरावतं क्षेत्रमें स्थित तिलकपुर नामके नगरमें एक अभयघोष राजा राज्य करता था । उसकी स्त्री का नाम सुवर्णतिलक था । तुम दोनों अपने पूर्वभव में उन्हीं राजदम्पति के विजय और जयन्त नामके पुत्र थे । कारण पाकर तुम्हारे पिता अभयघोष संसार से विरक्त होकर मुनि होकर उन्होंने कठिन तपस्या की और सोलह कारण भवनाओं का चिन्तवन कर तीर्थकर बन्ध किया । फिर आयु के अन्तमें मरकर सोलहवें स्वर्ग में अच्युतेन्द्र हुआ हैं तुम दोनों विजय और जयन्त भी आयुके अन्तसे जीर्ण शरीर को छोडकर ये दिवितिलक और चन्द्रतिलक विद्याधर हुए हो । तुम्हारे पूर्वभवके पिता अभयघोष स्वर्ग से चयकर पुण्डरीकिणी नगरी में राजा हेमांगद और रानी मेघमालिनीके धनरथ नामके पुत्र हुए है । वे इस समय अपने - पुत्र - पौत्रोंके साथ मुर्गाओंका युद्ध देख रहे हैं । इस तरह मुनिराजके मुखसे आप के साथ अपने - पूर्वभवों का सम्बन्ध सुनकर ये दोनों विद्याधर आपसे मिलने केलिये आये है । मेघरथ के वचन सुनकर धनरथ तथा समस्त सभासद अत्यन्त प्रसन्न हुए । उसी समय दोनों विद्याधरोंने - राजा धनरथ और राजकुमार मेघरथका

खुब सत्कार किया । दोनों मुर्गोंने भी अपने पूर्वभव सुनकर परस्पर का वैरभाव छोड़ दिया । और सन्यास पूर्वक मरण किया जिससे भूत रमण नामके बन में एक ताम्रचुल नामका देव हुआ और दूसरा देव रमण नामके बनमें कनकचूल नामका व्यनतर देव हुआ । वहां जब उन देवों ने अवधि ज्ञानसे अपने पूर्वभवों का विचार किया तब उन्होंने शीघ्र ही पुण्डरीकिणीपुरी आकर राजकुमार मेघरथ का खुब सत्कार किया और अपने पूर्वभवोंका सम्बन्ध बतलाया । इस के बाद उन व्यन्तर देवोंने कहा कि राजकुमार ! आपने हमारे साथ जो उपकार किया है हम उसका बदला नहीं चुका सकते । पर हम यह चाहते हैं कि आपलोग हमारे साथ चल कर मानुषोत्तर पर्वत तककी यात्रा कर लीजिये राजकुमार मेघरथ तथा महाराज धनरथकी आज्ञा मिलने पर देवोंने सुन्दर विमान बनाया

और उसमें समस्त परिवार सहित राजकुमार मेघरथको बैठाकर उसका आकाशमें ले - गये । वे देव उन्हें क्रम - क्रम से भरत हैमवत आदि क्षेत्रों गंगा सिन्धु आदि नदियों, हिमवन मेरु आदि पर्वत पर ले गये । कुमार मेघरथ प्रकृतिकी अद्भूत शोभा देखकर बहुत ही प्रसन्न हुआ, असने समस्त अकृत्रिम चैत्यालयों की बन्दना की , स्तुति की और फिर उन्हीं देवों की सहायतासे अपने नगर पुण्डरीकिणीपुर को लौट आया ।

घर आनेपर देवोंने उसे अनेक वस्त्राभूषण , मणिमालायें आदि भेंट की और - फिर अपने अपने स्थानों पर चले गये । किसी एक दिन कारण पाकर महाराज धनरथ का हृदय विषयवासनाओं से विरक्त हो गया । उन्होंने बारह भावनाओं का चिन्तवन कर अपने - वैराग्य को और भी अधिक बढ़ा लिया । लौकान्तिक देवोंने आकर उनकी स्तुति की और दीक्षा लेनेका समर्थन किया । निदान महाराज धनरथ युवराज मेघरथ को राज्य दे बन में जाकर दीक्षित हो गये । इधर कुमार मेघरथने भी अनेक साधु उपायोंसे प्रजाका पालन शुरु कर दिया जिससे - समस्त प्रजा उसपर अत्यन्त मुग्ध हो गई । किसी एक दिन राजा मेघरथ अपनी स्त्रियोंके साथ देव रमण नामके बनमें घूमता हुआ एक चन्द्रकान्त शिला पर बैठ गया । जहां वह बैठा था वहीं पर आकाशमें एक विद्याधर जा रहा था । जब उसका विमान मेघरथ के ऊपर पहुंचा तब वहा सहसा रुक गया । विद्याधर ने विमान रुकने का कारण जानने के लिये सब ओर दृष्टि डाली । ज्योंही उसकी दृष्टि मेघरथ पर पड़ी त्योंही क्रोधसे आगबबूला हो गया । वह झट से नीचे उतरा और शिला को जिसपर कि मेघरथ बैठा हुआ था, उठानेका प्रयत्न करने लगा । परन्तु राजा मेघरथ ने उस शिला को अपने पैरके अंगुठेसे दबा दिया जिससे वह विद्याधर शिलाका भारी बोझ नहीं सह सका । अन्तमें वह जोरसे चिल्ला उठा उसकी आवाज सुनकर उसकी स्त्रीने विमान से उतर कर मेघरथ से पति की भिक्षा मांगी । तब उसने भी पैरका अंगूठा उठा लिया जिससे विद्याधर की जान बच गई ।

यह हाल देखकर मेघरथ की स्त्री प्रियमित्रने उससे पूछा । यह सब क्या और क्यों हो रहा है तब मेघरथ कहने लगा लगा प्रिये ! यह विजयार्ध पर्वत की अलकानगरी के राजा विधुइष्ट् और रानी

अनिलवेगा का प्यारा पुत्र सिंहस्थ नामका विद्याधर है । इधर अमितवाहन तीर्थकर की वन्दनाकर आया है । जब इसका विमान मेरे ऊपर आया तब वह कीलित हुए कि तरह आकाश में रुक गया । जब उसने सब ओर देख तब मैं ही दिखा दिया , इसलिये मुझे - ही विमान का रोकनेवाला समझ कर वह क्रोध से आगबबूला हो गया और इस शिलाको जिसपर हम सब बैठे हुए हैं उठाने का प्रयत्न करने लगा तब मैंने पेरके अंगूठे से शिला को दबा दिया जिससे वह चिल्लाने लगा । उसकी चिल्लाहट सुनकर यह उसकी स्त्री आई और इतना कह कर मेघस्थ ने उस सिंहस्थ विद्याधर के पूर्वभव कह सुनाये जिससे वह पानी पानी हो गया ओर पास - जाकर राजा मेघस्थ की खूब प्रशंसा करने लगा तथा सुवर्ण तिलक नामक पुत्र के लिये राज्य देकर दीक्षित हो गया । उसकी स्त्री मदनवोगा भी आर्यिका हो गई राज मेघस्थ भी देव रमण बनसे - राजधानी में लौट आये और नीतिपूर्वक प्रजा पालन करने लगे ।

एक दिन वह अण्ठान्हि का ब्रतकी पूजा कर उपवास की प्रतिज्ञा लिये हुए स्त्री-पुत्रोंके साथ बैठकर धर्म चर्चा कर रहा था कि इतने में उसके सामने भयसे कांपता हुआ एक कबूतर आया ,। कबूतरके पीछे पीछे बड़े बेगसे दौडता हुआ एक गीध आया और राजाके सामने खडे होकर कहने लगा - कि महाराज ! मैं भूखसे मर रहा हुं आप दानवीर है । इसलिये कृपाकर आप यह कबूतर मुझे दे दीजिये । नहीं तो मैं मर जाऊंगा ।

गीध के वचन सुनकर दृढस्थ मेघस्थ का छोटा भाई को बडा अश्चर्य हुआ । उसने - उसी समय राजा मेघस्थ से पूछा कि महाराज ! कहिये , यह गीध मनुष्यों की बोली क्यों बोल रहा है अनुज छोटे भाईका प्रश्न सुनकर मेघस्थने काहा कि जम्बू द्वीप के ऐरावत क्षेत्रमें पद्मिनी खेट नामके नगर में एक सागरसेन नामका वैश्य रहता था उसकी अमितमति स्त्रीसे धनमित्र और नन्दिषेण नामके दो पुत्र हुए थे । वे दोनों धनके लोभसे लडे और एक दूसरेको मार करे ये - गीध और कबूतर हुए है और यह गीध मनुष्य की बोली नहीं बोल रहा है किन्तु इसके - ऊपर एक ज्योतिषी देव है । यह आप किसी कारणवश ईशान इन्द्रकी सभा में गया था वहांपर इन्द्रके मुखसे हमारी प्रशंसा सुनकर इसे कुछ ईर्षा पैदा हुई जिससे यह मेरी परीक्षा लेनेके लिये - यहां आया है और गीध के मुंहसे मनुष्यकी बोली बोल रहा है । दृढस्थसे इतना कहकर राजा मेघस्थने उस देवसे कहा - भाई ! तुम दानके स्वरूपसे सर्वथा अपरिचित मालूम होते हो । इसीलिये मुझसे गीधके लिये कबूतर की याचना कर रहे हो । सुनो , अनुग्रहार्थ स्वस्याति सर्गोदानम् निज तथा परके उपकार के लिये अपनी योग्य वस्तुका त्याग करना दान कहलाता और वह सत्पात्र में ही दिया जाता है । सत्पा उत्तम- मुनिराज , यम - श्रावक और जघन्य अविरत सम्यग्दृष्टिके भेदसे तीन तरहके होते है । देय पदार्थ भी मद्य मांस मधुसे विवर्जित तथा सात्त्विक हो । अब कहो यह गीध उनमें से कौनसा सत्पात्र है ? और यह कबूतर भी क्या देय वस्तु है ? राजा मेघस्थके वचन सुनकर वह देव अपने असली रूपमें प्रकट हुआ और उनकी स्तुति कर अपने स्थापनपर वापिस चला गया । कबूतर और गीधने भी मेघस्थ की बातें सुनकर आपस का विरोध छोड दिया जिस से आयु के अन्त में सन्यास पूर्वक मर कर

वे दोनों देवरमण वनमें व्यन्तर हुए । उत्पन्न होते ही उन देवोंने आकर राजा मेघरथ की बहुत ही स्तुति की और अपनी कृतज्ञता प्रकट की ।

एक दिन उसने किन्ही चारण ऋद्धिधारी मुनिराज को आहार दिया जिससे उसके - घरपर देवोंने पंचाश्चर्य प्रकट किये । किसी दूसरे दिन वह अष्टान्हिका पर्वमें महापूजा कर और उपवास धारण कर रात्रि में प्रतिमा योगसे विराजमान था । उसी समय ईशानेन्द्रने मेघरथ कि सब बातें जानकर अपनी सभा में उसकी धीर-वीरता की खुब प्रशंसा की । इन्द्रकेमुख से मेघरथ की प्रशंसा सुनकर कोई अतिरूपा और सुरुपा नामकी दो देवियां परीक्षा करनेके - लिये- आयी और हावभाव विलास पूर्वक नृत्य करने लगी पर जब वे मेघरथको ध्यानसे - विचलित न कर सकी तब उन्होंने देवी रूपमें प्रकट होकर उसकी खुब प्रशंसा की और स्वर्गको - चली गई । किसी दिन उसी इन्द्रने अपनी सभा में मेघरथ की स्त्री प्रियमित्राके सौन्दर्य की प्रशंसा की । उसे सुनकर रतिषेण और रति नामकी दो देवियां उसकी परीक्षा करनेकेलिये आयी । जब देवियां उसके महल पर पहुंची तब वह तेल, उबटन लगाकर स्नान कर रही थी । फिर उन देवियों ने छिपकर उसका रूप देखा और मनमें प्रशंसा करने लगी । उन देवियोंने - कन्याओंका भेष धारणकर स्त्री पहरेदारके द्वारा उसके पास सन्देश भेजा कि दो कन्याएं आप की सौन्दर्य सुधाका पान करना चाहती है । उत्तर में रानीने कहला भेजा की तबतक ठहरो जबतक मैं स्नान न कर लूं । प्रियमित्रा स्नानकर उत्तमोत्तम वस्त्र और अलंकार पहनकर मिलनेके स्थान में पहुंची और कन्याओंको आने की खबर दी । खबर पाते ही दोनों कन्याएं भीतर पहुंची और रानी प्रियमित्र का रूप देखकर एक दूसरे की ओर देखने लगी । जब उनसे कारण पूछा गया तब वे दोनों बोली महादेवि ! नहाते समय हम लोगोंने आपमें जो असीम सौन्दर्य देखा था अब उसका पता नहीं है । कन्याओंकी बात सुनकर प्रियमित्रा ने राजा मेघरथ की ओर देखा । तब उसने भी कहा कि हां, पहले की अपेक्षा तुम्हारे रूपमें अवश्य कमी हो गयी है । पर बहुत ही सुक्ष्म । इसकेबाद दोनों कन्याओंने देवी वेष में प्रकट होकर सब रहस्य प्रकट कर दिया और उसकेरूपकी प्रशंसा करती हुई वे स्वर्ग को वापिस चली गई । अपने रूपमें कमी सुनकर प्रियमित्रा को बहुत दुःख हुआ पर राजा मेघरथने मीठे शब्दोंमें उसका वह दुःख दूर कर दिया । उसी देशमें खर्च किया था ।

उसमें एक हस्तिनापुर नाम की नगरी है । वह परिखा, प्राकार ,कूप, सरोवर आदिसे बहुत ही भली मालूम होती थी । उसमें उस समय गगनचुम्बी मकान बने हुए थे । जो चन्द्रमाके उदय होनेपर ऐसे मालूम होते थे मानो दूधसे धोये गये हों । वहां की प्रजा धन -धान्यसे सम्पन्न थी । कोई किसी बात के लिये दुःखी नहीं थी । वहां असमयमें कभी किसी की मृत्यु नहीं होती थी । वहां के लोग बड़े धर्मात्मा और साधु स्वभावी थें वहां राजा विश्वसेन राज्य करते थे । वे बहुत ही शूरवीर - रणधीर थे । उन्होंने अपने बाहूबलसे समस्त भारतवर्ष के समस्त भारतवर्ष के राजाओंको अपना सेवक बना लिया था । उनकी मुख्य

स्त्रीका नाम ऐरा था । उस समय पृथिवी तलपर ऐराके साथ सुन्दरता में होड लगाने वाली स्त्री दूसरी नहीं थी । दोनों राज्य - पम्पति सुखसे समय बिताते थे ।

ऊपर कहे हुए अहमिन्द्र की आयु जब वहां ' सर्वार्थ सिद्धि में, सिर्फ छह माहकी बाकी रह गई तबसे राजभवन में प्रतिदिन करोंडो रत्नोंकी वर्षा होने लगी । उसी समय अनेक शुभ शकुन हुए और इन्द्रकी आज्ञासे अनेक देवकुमारियां ऐरा रानी की सेवा के लिये आ गई । इन सब कारणों से राजा विश्वसेनको निश्चय हो गया कि हमारे घरपर जगत्पूज्य तीर्थकर का जन्म होगा । अब बड़े ही आनन्द से उनका समय बीतने लगा । महारानी ऐराने भाद्रपद कृष्ण सप्तमीके दिन भरणी नक्षत्रमें रात्रिके पिछले समय सोलह स्वप्न देखे और अपने मुंह में प्रवेश करता हुआ एक सुन्दर हाथी देखा । उसी समय मेघरथका जीव अहमिन्द्र सर्वार्थ सिद्धिकी आयु पुरी कर उसके गर्भमें प्रविष्ट हुआ । सवेरा होते ही ऐरा देवीने राजा विश्वसेन से उन स्वप्नोंका फल पूछा । तब उन्होंने कहा कि आज तुम्हारे गर्भमें तीर्थकरने प्रवेश किया है । नव माह बाद उसका जन्म होगा । ये स्वप्न उसीका अभ्युदय बतला रहे हैं । पतिके मुख से स्वप्नोंका फल सुनकर रानी ऐराको बहुत ही आनन्द हुआ । उसी समय देवोंने आकर गर्भ कल्याणका उत्सव किया और उत्तमोत्तम वस्त्रा भूषणोंसे राजदम्पति की पूजा की । धीरे धीरे जब गर्भके नौ माह पूर्ण हो गये तब ज्येष्ठ कृष्ण चतुर्दशी के दिन भरणी नक्षत्रमें सवेरेके समय ऐराने पुत्र - रत्न उत्पन्न किया । उस पुत्रके प्रभावसे तीनों लोको में आनन्द छा गया । आसनोंके कम्पनेसे देवोंने तीर्थकर की उत्पत्ति का निश्चय कर लिया और शीघ्र ही समस्त परिवार के साथ हस्तिनापुर आ पहुंचे । वहांसे इन्द्र बालक को ऐरावत हाथीपर बैठाकर मेरु पर्वतपर ले गया और वहां उसने उस सद्य प्रसुत बालक का क्षीर सागर के जल से अभिषेक किया । फिर समस्त देव सेनके साथ हस्तिनापुर वापिस आकर पुत्र को मां की गोद में भेज दिया । राज भवनमें देव देवियां ने मिलकर अनेक उत्सव किये । इन्द्रने आनन्द नामका नाटक किया । उस बालक का नाम भगवान् शान्तिनाथ रखा गया ।

जन्म का उत्सव समाप्त कर देव लोग अपने अपने स्थानपर चले गये और बालक शान्तिनाथ का राज परिवार में बड़े प्रेमसे पालन होने लगा । भगवान धर्मनाथ के बाद पौन पत्य कम तीन सागर बीत जानेपर स्वामी शान्तिनाथ हुए थे । उनकी आयु भी इसी में शामिल है । इनकी आयु एक लाख वर्ष की थी ,शरीर की ऊंचाई चालीस धनुष की थी और कान्ति सुवर्ण के समान पीली थी । इनके शरीर में ध्वजा, छत्रा , शंख , चक्र आदि अच्छे अच्छे चिन्ह थे । क्रम-क्रम से भगवान शान्तिनाथने युवावस्थामें पदारपण किया । उस समय उनके शरीर का संगठन और अनुपम सौन्दर्य देखते ही बनता था । दृढरथ जो कि राजा मेघरथ का छोटा भाई था और उसीके साथ सपस्या कर सर्वार्थसिद्धि में अहमिन्द्र हुआ था वह राजा विश्वसेन की द्वितीय पत्नी यशस्वती के गर्भ से चक्रयुध नामका पुत्र हुआ । उसकी उत्पत्तिके समयमें भी अनेक उत्सव

मनाये -गये थे । महाराज विश्वसेन ने योग्य अवस्था देखकर अपने दोनों पुत्रोंका कुल ,वय, रूप,शील आदिसे शोभायमान अनेक कन्याओंके साथ विवाह करवाया था । जिनके साथ वे तरह कौतुक करते - हुए सुखसे समय बिताते थे । इस तरह देवदुर्लभ सुख भोगते हुये जब भगवान् शान्तिनाथ के कुमार कालके पच्चीस हजार वर्ष बीत गये तब महाराज विश्वसेन ने राज्याभिषेक पूर्वक उन्हें अपना राज्य दे दिया और स्वयं बन में जाकर दीक्षा ले ली ।

इधर भगवान् शान्तिनाथ छोटे भाई चक्रयुध के साथ प्रजाका पालन करने लगे । कुछ समय बाद उनकी आयुधशाला में चक्ररत्न प्रकट हुआ जिससे उन्हें अपने आपको चक्रवर्ती होनेका निश्चय हो गया । चक्ररत्न प्रकट होनेकेबाद ही वे असंख्य सेना लेकर दिग्विजय केलिये निकले और क्रम-क्रम से भरत क्षेत्रके छहों खण्डोंकी जीतकर हस्तिनापुर वापिस आ गये । व चौदह रत्न और नौ निधियों के स्वामी थे । समस्त राजा उनकी आज्ञाको फुलोंकी माला समझकर हर्ष पूर्वक अपने मतस्कों पर धारण करते थे । चौदह रत्नोमेसे चक्र छत्र , तलवार और दण्ड ये चार रत्न आयुधशालामें उत्पन्न हुये थे । काकिणी चर्म , और चूडामणि ये श्रीगृहमें प्रकट हुए थे । पुरोहित , सेनापति, स्थळपति और गृहपति हस्तिनापुरमें ही मिले थे । तथा पट्टरानी हाथी और घोडा विजयार्ध पर्वत से प्राप्त हुए थे । नव निधियां भी पुण्यसे प्रेरित हुये । इन्द्रने इन्हें नदी और सागर के समागम के स्थान पर दी थी । इस तरह चक्रधर भगवान् शान्तिनाथ पच्चीस हजार

वर्ष तक अनेक सुख भोगते हुये राज्य करते रहे ।

एक दिन वे अलंकार - गृह में बैठकर दर्पणमें अपना मुंह देख रहे थे कि उसमें उन्हें अपने मुंह के दो प्रतिबिम्ब दिखाई पडे । मुंह के दो प्रतिबिम्ब देखकर वे आश्चर्य करने लगे - कि यह क्या है ? उसी समय उन्हें आत्मज्ञान उत्पन्न हो गया जिससे वे पूर्वभव की समस्त बातें जान गये । उन्होंने सोचा कि मैंने पूर्वभव में मुनि अवस्थामें जो जो कार्य करनेका विचार

किया था । अभी तक उन कार्यों का सुत्रपात भी नहीं किया । मैंने अपनी विशाल आयु सामान्य मनुष्यों की तरह भोग - विलासों मे फंसकर व्यर्थ ही बिता दी । समास्त विषय सामग्री क्षण - भंगुर है देखते नष्ट हो जाती है इसलिये मोह छोड कर आत्म - कल्याण करना चाहिये इस तरह विचारकर भगवान् शान्तिनाथ अलंकार - घरसे बाहर निकले । उसी समय लौकान्तिक देवों ने आकर उनके विचारोंका समर्थन किया । जिससे उनका वैराग्यसागर और भी अधिक लहराने लगा उसमें तरल तरंगे उठने लगी । लौकान्तिक देव अपना । कार्य समाप्त कर ब्रह्मलोक को वापिस चले और वहां से इन्द्र आदि समस्त देव संसार की असारता का दृश्य दिखलात हुअे हस्तिनापुर आये । भगवान् शान्तिनाथ नारायण नामक पुत्रको राज्य देकर सर्वार्थसिद्धि पालकी पर सवार हो -गये । देव लोग पालकी को कन्धोंसे उठाकर सहस्राम बन में ले गये । वहां उन्होंने पालकी से उतरकर ज्येष्ठ कृष्णा चतुर्थीके दिन शामके समय भरणी नक्षत्र में ओम् नमःसिध्देभ्य कहते - हुए जिन दीक्षा ले ली । सामायिक चरित्रकी विशुद्धता से उन्हें उसी



समय मनःपर्यय ज्ञान हो - गया । उनके साथमें चक्रयुध अदि एक हजार राजाओंने भी दिगम्बर दीक्षा धारण की थी । देव लोग दीक्षा कल्याणक का उत्सव समाप्त कर अपने अपने घर चले गये । तीन दिन बाद मुनिराज शान्तिनाथ ने आहार के लिये मन्दरपुरमें प्रवेश किया । वहां उन्हें सुमित्र राजाने भक्तिपूर्वक आहार दिया । पात्र दानसे प्रभावित होकर देवोंने सुमित्रा महाराज के घर पर रत्नोंकी वर्षा की । आहार लेकर भगवान् शान्तिनाथ पुनः बनमें लौट आये और आत्म-ध्यानमें लीन हो गये । इस तरह उन्होंने छद्मस्थ अवस्था में - सोलह वर्ष बिताये । इन सोलह वर्षों में भी आपने अनेक जगह बिहार किया और अपनी सौम्य मूर्तिसे सब जगह शांति के झरने बहाये । इसके अनन्तर आप घुमते - हुए उसी सहस्राम्र बनमें आये - और वहां किसी नन्द्यावर्त नामके पेड़के नीचे तीन दिन उपवासकी प्रतिज्ञा लेकर विराजमान हो गये । उस समय भी उनके साथ चक्रयुध आदि हजार मुनिराज विराजमान थे । उसी समय उन्होंने क्षपण श्रेणी चढकर शुक्ल ध्यान के द्वारा चार धातिया कर्मोंका क्षय कर केवल ज्ञान, केवल दर्शन , अनंत सुख ओर अनन्त चतुष्टय प्राप्त किये । देवोंने आकर कैवल्य प्राप्तिका उत्सव किया और कुवेरने समवसरणकी रचना की । समवसरण केमें विराजमान होकर भगवान् ने अपना मौन भंग किया - दिव्य ध्वनि के द्वारा सप्त तत्व, नव पदार्थ , छह द्रव्य आदि का व्याख्यान किया जिसे सुन समस्त भव्य जीव प्रसन्न हुए । अनेकोंने जिनदीक्षा धारण की । उनके समवसरणमें चक्रयुध को आदि लेकर छत्तीस गणधर ये आठ सौ श्रुतकेवली थे, इकतालीस हजार आठ सौ शिक्षक थे, तीन हजार अवधिज्ञानी थे, चार हजार केवलज्ञानी थे, छह हजार विक्रिया ऋद्धि के धारक थे, चार हजार मनःपर्यय ज्ञानी थे, दो हजार चार सौ बादी शास्त्रार्थ करने वाले थे । इस तरह सब मिलाकर बासठ हजार मुनिराज थे, हरिषेणा आदि साठ हजार तीन सौ अर्थिकार्यें थी सुरकीर्ति आदि दो लाख श्रावक, अर्हदासी आदि चार लाख श्राविकार्यें असंख्यात देव - देवियां और संख्यात विर्धच थे । इनसबके - साथ उन्होंने - अनेक देशोंमें बिहार किया और जैन धर्मका खुब प्रचार किया । जब उनकी आयु एक महीने की रह गई तब वे सम्मेद शिखरपर आये और वहां अनेक मुनिराजं के साथ योग निरोधकर प्रतिमा योगसे विराजमान हो गये । वहीं पर उन्होंने सूक्ष्म क्रिया प्रतिपाति और ब्युपरत क्रिया निवृत्ति नामक शुक्ल ध्यानके द्वारा अवशिष्ट धातिया कर्मोंका संहार कर ज्येष्ठ कृष्ण चतुर्दशीके दिन शाम के समय भरणी नक्षत्रामें मोक्ष लाभ किया । देवोंने आकर उनके - निर्वाण क्षेत्रकी पूजा की । उसी समय यथाक्रमसे चक्रयुध आदि नौ हजार मुनिराज मुक्त हुए । भगवान् शान्तिनाथ, तीर्थकर , कामदेव और चक्रवर्ती पदवियों के धारक थे ।

मत्तगयन्द छन्द

शान्ति जिनेश जयो जगतेश हरे अघ ताप निशेष की नाई ।  
 सेवत पाय सुरासुर आय न मैं सिर नाथ मही तल ताई ॥  
 मौलि विषै मणि नील दिपै प्रभुके चरणों झलकै बहु झाई ।  
 सूंधन पाप - सरोज सुगन्धि किधों चलके अति पंकति आंई ॥

- भूधरदास

## भगवान कुन्थुनाथ

ररक्ष कुन्थु प्रमुखान्हि जीवान् दया प्रतानेन, दयालयो यः ।

स कुन्थुनाथो दयया सनाथः करोतु मां शीघ्र महो सनाथन् ॥ -लेखक

दया के आलय स्वरूप जिन कुन्थुनाथने दया के समूह से कुन्थु आदि जीवों की रक्षाकी थी वे दयायुक्त भगवान् कून्थुनाथ मुझ अनाथको शीघ्र ही सनाथ करें ।

(१) पूर्वभव परिचय

जम्बूद्वीप के पूर्व विदेह क्षेत्र में सीता नदीके दाहिने किनारे पर एक वत्स देश है । उसकी राजधानी सुसीमा नगरी थी । उसमें किसी समय सिंहरथ नामका राजा राज्य करता था । वह बहुत ही बुद्धिमान और पराक्रमी राजा था । उसने अपने बाहुबलसे समस्त शत्रु राजाओंको पराजित कर उन्हें देशसे निकाल दिया था । उसका नाम सुनकर शत्रु थर थर कांपते थे ।

एक दिन राजा सिंहरथ मकान की छतपर बैठा हुआ था कि इतनेमें आकाशसे उल्का (रेखाकर तेज) पात हुआ । उसे देखकर वह सोचने लगा कि संसारके सब पदार्थ इसी तरह अस्थिर हैं । मैं अपनी भूलसे उन्हें स्थिर समझकर उनमें आसक्त हो रहा हूँ । यह मोड बड़ा सघन तिमिर है जिसमें दूरदर्शी आंखे भी काम नहीं कर सकती । और यह वह प्रचण्ड दावानल है जिसकी ऊष्णासे वैराग्य - लताएं झुलसा जाती है । इस मोहके कारण ही प्राणी चारों गतियों में तरह तरहके दुःख भोगते हैं । अब मुझे इस मोहको दूर करनेका प्रयत्न करना चाहिये । ऐसा सोचकर उसने शरीर को सुखा दिया । उक्त मुनिराजके पास रहकर उसने ग्यारह अंगोका अध्ययन किया और दर्शन विशुद्धि आदि सोलह भावनाओंका चिन्तन कर तीर्थकर प्रकृतिका बन्ध किया । आयुके अन्तमें सन्यासपूर्वक शरीर छोडकर मुनिराज सिंहरथ सर्वार्थसिद्धिके विमानमें अहमिन्द्र हुआ । वहां उसे तैंतीस सागरकी आयु प्राप्त हुई थी, उसका शरीर एक हाथ ऊंचा था, शुल्क लेश्या थी । उसे जन्मसे ही अवधिज्ञान था । वह तैंतीस हजार वर्ष बाद मानसिक आहार ग्रहण करता और तैंतीस पक्ष बाद श्वासोच्छ्वास लेता था । वहां वह अपना समस्त समय तत्त्व चर्चा में ही बिताता था । यही अहमिन्द्र आगेके भवमें कथानायक भगवान् कुन्थुनाथ होगा ।

(२) वर्तमान परिचय

जम्बू द्वीप के भरत क्षौत्रमें कुरुजांगल नामका देश है । उसके हस्तिनापुर नगर में कुरुवंशी और काश्यप गोत्री महाराज शूरसेन राज्य करते थे । उनकी महारानीका नाम था श्रीकान्ता । जब ऊपर कहे हुए अहमिन्द्र की आयु केवल छह महीनेकी बाकी रह गई तब देवों ने महाराज शूरसेनके घर पर रत्नों की वर्षा करनी शुरु कर दी उसी समय श्री ह्री कीर्ति बुद्धि आदि देवियां आकर महारानी की सेवा करने लगी । श्रावण कृष्ण एकादशी के दिन कृत्तिका नक्षत्र में रात्रि के पिठले पहर श्री कान्ताने सोलह स्वप्न देखे । उसी समय उक्त अहमिन्द्रने सर्वार्थ सिद्धि से चयकर उसके गर्भ में प्रवेश किया । सबेरा होते ही रानीने राजासे स्वामीको फल पूछा । तब उन्होंने कहा कि आज तुम्हारे गर्भमें किसी जगत्पूज्य तीर्थकर बालकने प्रवेश किया है । नव माह बाद तुम्हारी कृपासे तीर्थकर बालक का जन्म होगा । समस्त देव देवेन्द्र उसे-नमस्कार करेंगे । ये सोलह स्वप्न उसीका अभ्युदय बतला रहे हैं । पतिदेवके मुंहसे स्वप्नोंका फल और भावी पुत्रका प्रभाव सुनकर रानी श्रीकांता बहुत ही हर्षित हुई । उसी वक्त देवों ने आकर स्वर्गीय वस्त्राभूषणों से राजा रानीकी पूजा की तथा उनके भवनमें अनेक उत्सव मनाये । जब गर्भकेनौ माह सुखसे व्यतीत हो गये तब महारानी श्रीकान्ताने वैशाख शुक्ला प्रतिपदा (परिवा) केदिन कृत्तिका नक्षत्रमें पुत्र उत्पन्न किया । पुत्रके जन्मसे क्षण एकके लिये नारकी भी सुखी हो-गये । उसी समय भक्ति से प्रेरित हुए चारों निकायके देव हस्तिनापुर आये और वहांसे उस सद्यप्रसूत बालकको मेरुपर्वत पर ले गये । वहां उन्होंने क्षीरसागरके जलसे उसका कलशाभिषेक किया । अभिषेक समाप्त होनेपर इन्द्राणी ने उन्हें बालोचित आभूषण पहिनाये और इन्द्रने मनोहर शब्दोंमें उनकी स्तुति की । इसके अनन्तर समस्त देव हर्षसे नाचते गाते हुए हस्तिनापुर आये । इन्द्र, जिन-बालक को अपनी गोद में लिये हुए ऐरावत हाथीसे नीचे उतरा और राजभवनमें जाकर बालकको माता श्रीकांता के पास भेजा और भगवान् कुन्थुनाथ नाम रक्खा ।

भगवान् कुन्थुनाथ के जन्मोत्सवसे हस्तिनापूर ऐसा मालूम होता था मानो इन्द्रपुरी ही स्वर्गसे उतरकर भूलोक पर आ गई हो । उधर उत्सव समाप्त कर देव लोग अपने अपने घर गये इधर बालक कुन्थुनाथ का राज-परिवारमें बड़े प्यारसे पालन होने लगा । इन्द्र प्रतिदिन स्वर्गसे उनकी मनभावती वस्तुएं भेजा करता था और अनेक देव विक्रियासे-तरह तरहके रूप बनाकर उन्हें प्रसन्न रखते थे । द्वितीया के चन्द्रमा की तरह क्रम-क्रम से बढ़ते हुए भगवान् कुन्थुनाथ यौवन अवस्था को प्राप्त हुए । उस समय अनेक शरीरकी शोभा बड़ी ही विचित्र हो गई थी । महाराज शूरसेन ने उनका कई योग्य कन्याओं के साथ विवाह और कुछ समय बाद उन्हें युवराज बना दिया । भगवान् शांतिनाथके मोक्ष जानेके बाद जब आधा पलय बीत गया था तब श्री कुन्थुनाथ तीर्थकर हुए थे । उनकी आयु भी इसीमें शामिल है । उनका शरीर पैतालीस धनुष्य ऊंचा था शरीरकी कान्ति सुवर्णके समान पीली थी, और आयु पंचानवे हजार वर्ष की थी । जब उनकी आयुके तेईस हजार सात सौ पचास वर्ष बीत गये तब उन्हें राज्य प्राप्त हुआ था, और जब इतना ही समय राज्य करते हुए बीत गया था तब चक्ररत्न प्राप्त हुआ था, और जब इतना ही समय राज्य करते हुए बीत गया था तब चक्ररत्न प्राप्त हुआ था । चक्ररत्नके प्राप्त होते ही वे समस्त सेनाके साथ षाटखण्डो की विजयके लिये निकले और कुछ वर्षोंमें- समस्त भरतक्षेत्र में प्रवेश किया था तब बत्तीस हजार मुकुटवध राजाओं ने उनका स्वागत किया था । देवों तथा राजाओं ने मिलकर उनका पुनः राज्यभिषेक किया । इस तरह तो देवदुर्लभ भोगते हुए सुखसे समय बिताने लगे ।

एक दिन भगवान् कुन्थुनाथ अपने इष्ट परिवार के साथ किसी बनमें गये थे । वहांसे लौटते समय रास्तेमें उन्हें धान्य करते हुये एक मुनिराज दिखाई पडे । उन्होंने उसी समय अंगुली से इशारा कर अपने मंत्री से कहा - देखो कितनी शांत मुद्रा है । जब मन्त्रीने उनसे मुनिब्रत धारण करने का कारण पूछा तब उन्होंने कहा कि मुनिब्रत धारण करनेसे संसारके बढ़ानेवाले समस्त कर्म नष्ट हो जाते हैं तब मोक्ष प्राप्त हो जाता है । इन्होंने जितने वर्ष सामान्य राजा रहकर राज्य किया था उतने ही वर्ष सम्राट होकर भी राज किया था । किसी एक दिन कारण पाकर उनका चित्त विषयोंसे उदास हो गया जिससे उन्होंने दीक्षा लेने का सृष्ट संकल्प कर लिया । उसी समय लौकान्तिक देवोंने आकर उनकी स्तुति की और उनके बिचारोंका समर्थन किया । लौकान्तिक देव अपना कार्य पूरा कर अपने स्थानों पर वापिस चले गये । किन्तु उनके बदले हर्षसे समुद्र की तरह उमड़ते हुए असंख्यात

देव हस्तिनापुर आ पहुँचे और दीक्षा-कल्याणक की विधि करने लगे । भगवान् कुन्धुनाथ पुत्र को राज्य देकर देवनिर्मित बिजया नामकी पालकीकर सवार हो सहेतुक बनमें पहुँचे और वहाँ तीन दिनके उपवासकी प्रतिज्ञा लेकर वैशाख शुक्ला पडवाके दिन कृत्तिका नक्षत्र में शामके समय वस्त्राभूषण छोडकर दिगम्बर हो गये । उन्हें दीक्षा समय ही मनःपर्यय ज्ञान प्राप्त हो गया था । देव लोग उत्सव समाप्त कर अपने स्थानों अपने पर वापिस चले गये । चौथे दिन आहार लेनेकी इच्छासे उन्होंने हस्तिनापुर में प्रवेश किया । वहाँ धर्मभित्र ने उन्हें आहार देकर अचिन्त्य पुण्यका संचय किया । वे आहार लेकर बनमें लौट आये और कठिन तपस्याएं करने लगे । वे दीक्षा लेनेके बाद मौनसे ही रहते थे । इस तरह कठिन तपश्चर्या करते हुए उन्होंने सोलह वर्ष मौनसे व्यतीत किये । इसके अनन्तर बिहार करते हुए वे उसी सहेतुक बनमें आये और वहाँ तिलक वृक्षके नीचे तेला (तीन दिन ` शाम के समय केवलज्ञान प्राप्त हो गया । देवों ने आकर उनके ज्ञान कल्याणक की पूजा की । कुबेरने समवसरण बनाया । उसके मध्यमें स्थित होकर उन्होंने अपना मौन भंग किया -दिव्य ध्वनिके द्वारा पदार्थोंका व्याख्यान किया और चारों गतियों के दुःखोंका चित्रण किया । उनके उपदेश से प्रभावित होकर अनेक नर -नारियों ने मुनि, आर्यिका और श्रावण श्राविकाओं के व्रत धारण किये थे । प्रथम उपदेश समाप्त होनेके बाद उन्होंने अनेक आर्य क्षेत्रोंमें बिहार किया था जिससे जैन धर्मका सर्वत्र सामूहिक प्रचार हुआ था । उनके समवसरण में स्वयम्भू आदि पैंतीस गणधर थे सात सौ श्रुतकेवली थे, तेतालीस हजार एक सौ पचास शिक्षक थे, दो हजार पांच सौ अवधिज्ञानी थे, तीन हजार दो सौ केवलज्ञानी थे, पांच हजार एक से विक्रियाऋद्धिके धारक थे, तीन हजार तीन सौ मनःपर्ययज्ञानी थे और दो हजार पचास वादी शास्त्रार्थ करने वाले थे । इस तरह सब मिलाकर साठ हजार मुनिराज थे । भविता आदि साठ हजार तीन सौ पचास आर्यिकाए थी । तीन लाख श्रावक, दो लाख श्राविकायें, असंख्यात देव देवियां और संख्यात तिर्यच थे । जब उनकी आयु सिर्फ एक महाकी बाकी रह गई तब वे सम्मोद शिखर पर पहुँचे और वहीं पर प्रतिमा योग धारण कर एक हजार मुनियोंके साथ वैशाख शुक्ला परिवारके दिन कृत्तिका नक्षत्रमें रात्रिके पूर्वभागमें मोक्ष मन्दिरके अतिथि बन गये । देवों ने आकर उनके निर्वाण क्षेत्र की पूजा की । भगवान् कुन्धुनाथ, तीर्थकर, चक्रवर्ती और कामदेव इन तीन पदवियोंसे विभूषित थे । इनका बकरे का चिन्ह था ।

भगवान् अहरनाथ

शार्दूलविक्रीडितम्

त्यक्तं येन कुलालचक्रमिव तच्चक्रधराचक्रचित् ।

श्रीश्चासौघटदासिकवपरमश्रीधर्मचक्रेऽप्यया ॥

युष्मान् भक्तिभरानतान्सदुरितारतिरथध्वंसकृत् ।

पायाद्भव्यजनानरोजिनपतिः संसारभीरुन्सदा ॥

आचार्यगुणभद्र

जिसने भूमण्डन को संचित करने वाले चक्ररन्तको कुम्भकार के चक्र के समान छोड़ दिया और जिसने अर्हत्या लक्ष्मी तथा धर्मचक्र की प्राप्ति की इच्छा से राज्य लक्ष्मी को घर दासी (पानी भरने वाली) की तरह छोड़ दिया वे पाप रूपी वैरियों का विध्वंस करने वाले भगवान् अमरनाथ, भक्तिभाव से नम्रीभूत और संसारसे डरने वाले भव्यजनों की रक्षा करें ।

(१) पूर्वभव परिचय

जम्बू द्वीप के विदेह क्षेत्र में सीता नदी के उत्तर तटपर एक कच्छ नामका देश है । उसके क्षेमपुर नगर में किसी समय धनपति नामका राजा राज्य करता था । वह बुद्धीमान था, बलवान था, न्यायवान था, प्रतापवान् था, और था बहुत ही दयावान् । उसने अपने दान से कल्पवृक्षों को और निर्मल यश से शरच्चन्द्र के मरीचि मण्डल को भी पराजित कर दिया था उसकी चतुराई और बलका सबसे बड़ा उदाहरण यही था कि अपने जीवन में कभी उसका कोई शत्रु नहीं था । वह दीन दुःखी जीवों के दुःख को देखकर बहुत ही दुःखी हो जाता था । इसलिये वह तन मन धनसे उनकी सहायता किया करता था । उसके राज्य में प्रजा सभी लोग अपनी अपनी आजीविका के क्रमों का उल्लंघन नहीं करते थे । इसलिये कोई दुःखी नहीं था ।

किसी एक दिन राजाने अर्हन्नन्दन नाम के तीर्थकर से धर्मका स्वरूप और चतुर्गतियों के दुःखोंको श्रवण किया जिससे उसका चित्त विषयानन्द से सर्वथा हट गया । उसने अपना राज्य पुत्र के लिये दे दिया और स्वयं किन्ही आचार्यके पास दीक्षित हो गया । उनके पास रहकर उसने ग्यारह अंगों का अध्ययन किया तथा दर्शन विशुद्ध आदि सोलह कारण भावनाओं का चित्तवन किया जिससे उसे तीर्थकर नामक महापुण्य प्रकृतिका बन्ध हो गया । इस तरह कुछ वर्षों तक कठिन तपस्या करने के बाद उसने आयुके अन्त में समाधिमरण किया जिससे वह जयन्त नाम के अनुत्तर विमान में अहमिन्द्र हुआ । वहां उसकी आयु तेतीस सागर, प्रमाण थी लेश्या शुक्ल

थी और शरीरकी ऊंचाई एक हाथ की थी । वहां वह अवधिज्ञानसे सातवें नरक ततकी बात जान लेता था । तेतीस हजार वर्ष बाद मानसिक आहार लेता और तेतीस पक्षमें एक बार सुगन्धित श्वासोच्छ्वास ग्रहण करता था । वहां वह प्रवीचार सम्बन्ध से सर्वथा रहित था । उसका समस्त समय जिन पूजा या तत्व चर्चाओं में ही बीतता था यही अहमिन्द्र आगेके भव्य में भगवान अरनाथ होगा ।

(१) पूर्वभाव वर्णन

जम्बू द्वीप के भरत क्षेत्र में कुरुजांगल देश है । उसके हस्तिनापुर नगर में सोमवंशीय काश्यपगोत्री राज सुदर्शन राज्य करता था । उसकी स्त्रीया नाम मित्रसेना था । दोनों राज दम्पतियों में घना प्रेम था । तर तरह के कौतुक करते हुए उन दोनोंका समय बहुत ही सुखसे- व्यतीत होता था । जब ऊ पर कहे हुए अहमिन्द्र की आयु सिर्फ छह माहकी बाकी रह गई तबसे राज सुदर्शनके घरपर देवोंने रत्नवर्षा करनी शुरु कर दी । कुवेरने एक नवीन हस्तिनापुर की रचनाकर उसमें महाराज सुदर्शन तथा समस्त नागरिक प्रजाको ठहराया । इन्द्रकी आज्ञा से देवकुमारियां आ आकर रानी मित्रसेना की सेवा करने लगी । इस सब शुभ निमित्तोंको देखकर राजा प्रजा को बहुत ही आनन्द होता था ।

फाल्गुण कृष्ण तृतीया के दिन रेवती नक्षत्रका उदय रहते हुए पिछली रातमें मित्र सेना महादेवीने सोलह स्वप्न देखे । उसी समय उक्त अहमिन्द्र जयन्त विमान से च्युत होकर उसकेगर्भमें आया । सवेरा होते ही रानीने प्राणनाथ-राजा से स्वप्नोंका फल पूछा तब उन्होंने कहा कि आज तुम्हारे गर्भ में जग्द्वन्ध किसी महापुरुषने प्रवेश किया है । नव माह बाद तुम्हारे प्रतापी पुत्र उत्पन्न होगा ।

इधर राजा सुदर्शन रानी को स्वप्नोंका फल सुना रहे थे उधर जय जय शब्द से आकाश को गुन्हाते हुए देव लोग आ गये और भावी तीर्थकर अरनाथ का गर्भकल्याण उत्सव मनाने लगे । उन्होंने माता पिता-सुदर्शन और मित्र सेना का बहुत ही सन्मान किया और उन्हे स्वर्ग से लाये-हुये अनेक वस्त्राभूषण भेट किये । गर्भाधान का उत्सव समाप्त कर देव लोग अपने अपने स्थान-पर चले गये ।

नौ माह बाद रानी मित्रसेना ने मंगशिर शुल्का चतुर्दशी के दिन पुष्प नक्षत्र में मतिश्रुत और अवधि ज्ञानसे विराजित तीर्थकर पुत्र को उत्पन्न किया । पुत्र के उत्पन्न होते ही सब ओर आनन्द छा गया । भक्ति से प्रेरे हुए चारों निकायोंके देवोंने मेरु पर्वत पर ले- जाकर उसका अभिषेक किया । वहांसे लौटकर इन्द्रने महाराज सुदर्शन के घर पर आनन्द नामका नाटक किया तथा अनेक प्रकारके उत्सव



किये । उस समय राज भवन में जो भिड जमा थी उस से ऐसा मालूम होता था कि मानो तीनों लोकों के समस्त प्राणी वहां पर एकत्रित हो गये हो । तीर्थकर पुत्र का बालक का अमरनाथ नाम रक्खा गया । देव लोग जन्मकल्याण का उत्सव समाप्त कर अपने अपने स्थानों पर चले गये । राज भवन में भगवान् अरनाथ का बड़े प्यार से पालन होने लगा । वे अपनी बाल चेष्टाओं से माता पिता बन्धु बान्धाव आदि को बहुत ही हर्षित करते थे । माता मित्रसेना की आशाओं के साथ वे निरन्तर बढ़ने लगे । जब उन्होंने- युवावस्था में पदार्पण किया तब उनकी शोभा बहुत ही विचित्र हो गई थी । उनकी सुन्दरता पर मुग्ध होकर उन्हें कामदेव कहने लगे थे ।

श्रीकुन्धुनाथ तीर्थकर के बाद एक हजार करोड वर्ष कम चौथाई पत्य बीत जानेपर भगवान् अरनाथ हुये थे । उनकी आयु भी इसी अन्तराल में शामिल है । जिनराज अरनाथ की उत्कृष्ट आयु चौरासी हजार वर्षकी थी । तीस धनुष ऊं चा शरीर की कान्ति सुवर्ण के समान ससृण -स्निग्ध पीली थी । उनके शरीर को रोग शोक दुःख वगैरह तो छू भी नहीं गये थे । योग्य अवस्था देखकर महाराज सुदर्शन ने उनका कुलीन कन्याओं के साथ विवाह कर दिया और कुछ समय बाद उन्हें राज्य प्राप्त हुआ और इतने ही वर्ष बाद उनकी आयु धशाला में चक्ररत्न प्रकट हुआ । भगवान् अरनाथ चक्ररत्न को आगेकर असंख्य सेनाओं के साथ दिग्वीजय के लिये निकल और कुछ वर्षों में ही समस्त भरतक्षेत्र में अपना अधिपत्य स्थापितकर हस्तिनापुर वापिस लौट आये । दिग्वीजयी सम्राट अरनाथका नगर प्रवेशोत्सव बड़ी सजधज से मनाया गया था । उन्होंने चक्रवर्ती होकर इक्कीस हजार वर्ष तक राज्य किया और इस तरह उनकी आयुका तीन चौथाई हिस्सा गृहस्थ अवस्था में ही बीत गया । एक दिन उन्हें शरद् ऋतु के बादलोंका नष्ट होना देखकर वैराग्य उत्पन्न हो गया । उसी समय लौकान्तिक देवोंने आकर स्तुति की और उनके विचारों का समर्थन किया जिससे उनकी वैराग्य भावना बड़ी ही प्रबल हो उठी थी लौकान्तिक देव अपना कार्य पूरा समझ कर स्वर्ग को चले गये और उनके बदले समस्त देव देवेन्द्र आये । उन सबसे मिलकर भगवान् अरनाथ का दीक्षा अभिषेक किया तथा वैराग्य को बढ़ाने वाले अनेक उत्सव किये । भगवान् अरनाथ अपने पुत्र अरविन्दकुमार के लिये राज्य देकर देवनिर्मित बैजयन्ती नाम की पालकी पर सवार हो सहेतुक बन में पहुंचे । वहां उन्होंने दो दिनके उपवासकी प्रतिज्ञा लेकर मगसिर शुल्का दशमी के दिन रेवती नक्षत्रके समय जिनदीक्षा धारण कर ली - समस्त वस्त्राभूषण उतारकर फेंक दिये और पंच मुष्टियों से सिर परके केश उखाड डाले ।

उन्हें उसी समय मनःपर्यय ज्ञान भी प्राप्त हो गया था । उनके साथ में एक हजार राजाओं ने भी दीक्षा ली थी । देव लोग निःक्रमण कल्याणक का उत्सव समाप्त कर अपने अपने घर चले गये और भगवान् अरनाथ मेरु पर्वत की तरह अचल हो आत्मध्यान में लीन हो गये । पारणे के दिन वे चक्रपुर नगर में गये वहां राजा अपराजित ने आहार दिया । पात्रदानसे प्रभावित होकर देवों ने अपराजित राजा के घर पर पंचाशचर्य प्रकट किये । आहार लेने के बाद वे बनमें लौट आये और वहां कठिन तपश्चर्याओं के द्वारा आत्मशुद्धि करने लगे ।

उन्होंने कई जगह बिहार कर छद्मस्थ अवस्था के सोलह वर्ष व्यतीत किये, । इन दिनों में वे मौनपूर्वक रहते थे । इसके अनन्तर वे उसी सहेतुक बनमें आकर दो दिन के उपवासक की प्रतिज्ञा ले माकरंद- आमने पेडके नीचे बैठे गये । वहां पर उन्हें घातिया कर्मो कक्षय हो - जानेसे कार्तिक शुल्का । द्वादशी के दिन रेवती नक्षत्रमें शाम के समय पूर्ण ज्ञान केवलज्ञान प्राप्त हो गया । जिससे व समस्त जगत् की चराचर वस्तुओंको हस्ताकमलवत् स्पष्ट जानने लगे । उसी समय देवों ने आकर ज्ञानकल्याणक का उत्सव किया । कुवेरने दिव्य सभा समवसरण की रचना की जिसके मध्यमें सिंहासन पर अन्तरीक्ष विराजमान होकर उन्होंने अपना सोलह वर्षका मौन भंग किया मधुर ध्वनीमें सबको उपदेश देने लगे । उपदेश के समय समवसरण की बारहां सभायें खचाखच भरी हुई थी । उनके उपदेश से प्रतिबुद्ध होकर अनेक नर-नारियों ने ब्रत दीक्षाएं ग्रहण की थी । इसके बाद उन्होंने अनेक क्षेत्रोंमें विहार किया और जैनधर्म का ठोस प्रचार किया । अनेक पथ-भ्रान्त पुरुषोंको सच्चे पथपर लगाया ।

उनके समवसरण में कुम्भार्य आदि तीस गणधर थे, छह सौ दश श्रुतकेवली थे, पैतीस हजार आठ सौ पैतीस शिक्षक थे, अट्ठाईस सौ अवधिज्ञानी थे, इतने ही केवलज्ञानी थे, चार हजार तीन सौ विक्रया ऋद्धि के धारक थे, दो हजार पचपन मनःपर्यय ज्ञानी थे और एक हजार छह सौ बादी थे । इस तरह सब मिलाकर अर्ध लक्ष (पचास हजार) मुनिराज थे, तीन लाख श्राविकायें थी असंख्यात देव-देवियां और संख्यात तिर्यच थे ।

जब उनकी आयु एक माह की अवशिष्ट रह गई तब उन्होंने सम्मोद शिखरपर पहुंचकर एक हजार मुनियों के साथ प्रतिमा योग धारण कर लिया और वहांसे चैत्र कृष्ण अमावस्याके दिन रेवती नक्षत्र में रात्रि के पहले पहरमें मोक्ष प्राप्त किया ।

देवों ने आकर उनके निर्वाण क्षेत्र की पूजा की तथा अनेक उत्सव मनाये । श्री अरनाथ भी पहले दो तीर्थकरों की तरह तीर्थकर, चक्रवर्ती और कामदेव इन तीन पदवियों के धारक थे ।

भगवान मल्लिनाथ

मोह मल्ल मद भेदन धीरं कातिमान मुखरीकृत वीरम् ।

धैर्यखंग विनिपातित मारं तं नमामि वर मल्लिकु मारम् ॥ - लेखक

जो मोह - मल्लके भेदन करनेमें धीर-वीर है, जिन्होंने अपनी कीर्ति गाथाओं से वीर मनुष्यों को वाचालित किया है और जिन्होंने धैर्य रूप कृपाण से कामदेव को नष्ट कर दिया है मैं उन मल्लिकु मार को नमस्कार करता हूँ ।

(१) पूर्वभव वर्णन

जम्बू द्वीप के विदेह क्षेत्रामें मेरु पर्वतसे पूर्व की ओर एक कच्छपवती देश है । उस में अपनी शोभासे स्वर्गपुरी को जीतनेवाली एक बीतशो का नाम की नगरी है । किसी समय उसमें वैष्णव नामका राजा राज्य करता था । राजा वैश्रवण महा बुद्धिमान् और प्रतापी पुरुष था । उसने अपने पुरुषार्थसे समस्त पृथ्वी को अपने आधीन कर लिया था । वह हमेशा प्रजा के कल्याण करनेमें तत्पर रहता था । दीनदुखियों की हमेशा सहायता किया करता था और कला-कौशल विद्या आदिके प्रचार में विशेष योग देता था । एक दिन राजा वैश्रवण वर्षा ऋतु की शोभा देखने के लिये कुछ ईष्ट-मित्रों के साथ बन में गया था । वहां सुन्दर, हरियाली, निर्मल, निर्झर, नदियोंका मनोहर नृत्य देखकर उसकी तबियत बाग बाग हो गई । वर्षा ऋतुकी सुन्दर शोभा देखकर उसे बहुत ही हर्ष हुआ । वही बनमें घूमते समय राजाके एक विशाल बडका वृक्ष मिला, जो अपनी शाखाओंसे आकाश के बहु भाग को घेरे हुये था । वह अपने हरे हरे पत्तोंसे समस्त दिशाओंको हरा हरा कर रहा था । और लटकते हुये पत्तोंसे जमीनको खूब पकड़ेहुये था । राजा उस बटवृक्ष की शोभा अपने साथियों को दिखलाता हुआ आगे चला गया । कुछ देर बाद जब वह उसी रास्तेसे लौटा तब उसने देख कि बिजलीके गिरने से वह विशाल बडका वृक्ष जड़ तक जल चुका है । यह देखकर उसका मन विषयोंसे सहसा विरक्त हो गया । वह सोचने लगा कि जब इतना सुदृढ वृक्ष भी क्षण एक में नष्ट हो गया तब दूसरा कौन पदार्थ स्थिर रह सकता है ? मैं जिन भौतिक भोगोंको सुस्थिर समझकर

उनमें तल्लीन हो रहा हूँ वे सभी इसी तरह भंगुर है । मैंने इतनी विशाल आयु व्यर्थ ही खो दी । कोई ऐसा काम नहीं किया जो मुझे-संसारकी महा व्यथासे हटाकर सच्चे सुखकी ओर ले जा सके । इत्यादि विचार करता हुआ राजा वैश्रवण अपने घर लौट आया और वहाँ पुत्र को राज्य दे किसी वनमें पहुँचकर श्रीनाग नामक मुनिराज के पास दीक्षित हो गया । वहाँ उसने उग्र पतत्यासे आत्म हृदयको सुविशुद्ध बनाया और निरन्तर अध्ययन करते हुए ग्यारह अंगोतक का ज्ञानघातप किया । उसी समय उसने दर्शन

(२) वर्तमान परिचय

जम्बू द्वीप के भरत क्षेत्र के बंग-बंगाल नाम के देश में एक मिथिला नाम की नगरी है । जिस की उर्बरा जमीनमें हर एक प्रकार की शस्य होती है । उसमें किसी समय इक्ष्वाकु वंशीय काश्यप गोत्री राजा कुम्भ राज्य करते थे । उनकी महारानी का नाम प्रजावती था । दोनों दम्पति सुख से समय बिताते थे । ऊपर जिस अहमिन्द्र का कथन कर चुके हैं उसकी सब वहाँपर (अपराजित-विमान में) सिर्फ छह माह की आयु बाकी रह गई तबसे रानी प्रजावती के घरपर कुबेर ने रत्नों की वर्षा करनी शुरू कर दी । चैत्रा शुक्ला प्रतिपदा के दिन अश्विनी नक्षत्र में रात्रि के पिछले पहर में उसने हाथी आदि सोलह स्वप्न देखे और मुँह में प्रवेश करते- हुये एक गन्ध सिन्धुर-मत्त हाथी को देखा । उसी समय उक्त अहमिन्द्र ने अपराजित विमान से जचकर रानी प्रजावती के गर्भ में किसी महापुरुष तीर्थकर ने पदार्पण किया है । नौ माह बाद तुम्हारे तीर्थकर पुत्र उत्पन्न होगा । ये सोलह स्वप्न उसीका अभ्युदय बतला रहे हैं ।

राजा यह कहकर रुके ही थे कि इतनेमें आकाश मार्ग से असंख्य देव जय जय शब्द करते हुये उनके पास आ पहुँचे । देवों ने भक्ति पूर्वक राजदम्पति का नमस्कार किया और अनेक सुन्दर शब्दों में उनकी स्तुति की । साथ में लाये हुये दिव्य वस्त्रभूषणों से उन की पूजा की तथा भगवान् मल्लिनाथ के गर्भावतार का समाचार प्रकट कर अनेक उत्सव किये । देवों के चले जानेपर भी अनेक देवियाँ महारानी प्रजावती की सेवा शुश्रूषा करती रही थी । जिस से उसोगर्भ सम्बन्धी किसी भी कष्ट का सामना नहीं करना पडा था ।

जब धीरे धीरे गर्भ के नौ माह बीत गये तब उसने मार्गशिर्ष सुदी एकादशी के दिन अश्विनी नक्षत्रमें उस पुत्र रत्न को उत्पन्न किया, जो पूर्ण चन्द्र की तरह चमकता था, जिस के सब अवयव अलग अलग विभक्त थे ओर जो जन्म से ही

मतिश्रुत तथा अवधिज्ञान से विभूषित था । उसी समय इन्द्रादि देवों ने बालक को मेरु शिखरपर ले जाकर वाहं क्षीर-सागर के जलसे उसका कलशाभिषेक किया । बाद में घर लाकर माताकी गोदमें बैठा दिया और तांडव नृत्य आदि अनेक उत्सवों से उपस्थित जनता को आनन्दित किया । जन्मका उत्सव समाप्त कर देव लोग अपनी अपनी जगहपर चले गये । वहां राज भवन में बालक मल्लिनाथका उचित रूप से लालन पालन होने लगा ।

क्रम-क्रम से बाल्य और कुमार अवस्थाको व्यातीत कर जब उन्होंने युवावस्था में पदार्पण किया तब उनके शरीर की आभा बहुत ही विचित्र हो गई थी । उस समय उनका सुन्दर सुडौल शरीर देखकर हर एक की आंखें संतृप्त हो जाती थी । अठारहवें तीर्थकर भगवान् अरनाथ के बाद एक हजार करोड वर्ष बीत जानेपर भगवान् मल्लिनाथ हुये थे । उनकी आयु भी इसी अन्तराल में शामिल है । पंचपंचाशत्-पचपन हजार वर्षकी उनकी आयु थी । पच्चीस धनुष ऊंचा शरीर था, और सुवर्ण के समान शरीर की कान्ति थी । जब भगवान् मल्लिनाथ की आयु सौ वर्ष की हो गई तब उनके पिता महाराज कुम्भने उन के विवाह की तैयारी की । मल्लिनाथ के विवाहोत्सव के लिये पुरवासियों ने मिथिलापुरी को खूब ही सजाया । अपने द्वारोंपर मणियों की बन्दन मालाएं बांधी । मकानों की शिखरों पर पताकायें फहराई । मार्ग में सुगन्धित जल सींचकर फूल बरसाये और कई तरह के बाजों के शब्दों से नभ को गुंजा दिया । इधर राज परिवार और पुरवासी विवाहोत्सव की तैयारी में लग रहे थे, उधर भगवान् मल्लिनाथ राजा भवन के विजान स्थान में बैठे हुये सोच रहे थे कि विवाह, यह एक प्रचण्ड पवन है, जिस के प्रबल झकोरों से प्रशांत हुई विषयवन्धि पुनः प्रदीप्त हो उठती है । विवाह, यह एक मलिन कर्दम-कीचड है जो कि आत्म क्षेत्र को सर्वथा मलिन बना देती है । विवाह को सभी कोई बुरी दृष्टिसे देखते आये हैं और हैं भी बुरी चीज । तब मैं क्यों व्यर्थ ही इस जंजाल में अपने आप को फंसा दूं । मेरा सुदृढ निश्चय है कि मेरे जो उच्च विचार और उन्नत भावनाएं हैं विवाह उन सब पर एकदम पानी फेंक देगा । मेरे उन्नतिके मार्ग में यह विवाह एक अचल-पर्वत की तरह आडा हो जायेगा । इसलिये मैं आज निश्चय करता हूं कि अब मैं इन भौतिक भोगों पर लात मार कर शीघ्र ही असत्मीय आदन्द की प्राप्ति के लिये प्रयत्न करूंगा । उसी समय लोकान्तिक देवों ने उनके उच्च आदर्श विचारों का समर्थन किया जिससे उनका वैराग्य अधिक प्रकर्षता को प्राप्त हो गया । अपना कार्य समाप्त कर लोकान्तिक देव अपने-अपने स्थानों पर चले

गये और सौधर्म आदि इन्द्रों ने आकर दीक्षा-कल्याणक का उत्सव करना आरम्भ कर दिया । भगवान् मल्लिनाथ के इस आकस्मिक विचार परिवर्तन से सारी मिथिला में क्षोभ मच गया । उभय पक्ष के मातापिता के हृदय पर भारी ठेस पहुंची । पर उपाय ही क्या था । विवाह की समस्त तैयारियां एकदम बन्द कर दी गई । उस समय नगरी में श्रृङ्गार और शान्त रसका अद्भूत समर हो रहा था । उन्तमें-शान्तरसने श्रृङ्गार को धराशायी बनाकर सब ओर अपना अधिपत्य जमा लिया था । देवों ने भगवान् मल्लिनाथ का अभिषेक कर उन्हें अच्छे-अच्छे वस्त्राभूषण पहिनाये । दीक्षाभिषेक क बाद वे -देव-निर्मित जयंत नामकी पाल की पर सवार होकर श्वेत बनमें पहुंचे और वहां दो दिन के उपवास की प्रतिज्ञा लेकर मार्गशीर्ष सुदी एकादशी के दिन अश्विनी नक्षत्र में शामके समय तीन सौ राजाओं के साथ नग्न दिगम्बर हो गये -सब वस्त्राभूषण उतारकर फेंक दिये तथा पंचमुष्टियों से केश लुंचकर अलग कर दिये । उन्हें दीक्षा धारण करते ही मनःपर्यय ज्ञान प्राप्त हो गया था । तीसरे-दिन वे आहार के लिये मिथिलापुरी में गये । वहां उन्हें नन्दिषेणने भक्तिपूर्वक आहार दिया । पात्रदान से प्रभावित होकर नन्दिषेणके घर पर देवों ने पंचाश्चर्य प्रकट किये ।

आहार लेकर मल्लिनाथ पुनः बनमें लौट आये और-ध्यान में लीन हो गये । दीक्षा लेनेके दह दिन बाद उन्हें उसी श्वेत बनमें अशोक वृक्षके नीचे जन्म तिथि-मार्गशीर्ष सुदी एकादशी के दिन अश्विनी नक्षत्र में प्रातःकालके समय दिव्यज्ञानः केवलज्ञान प्राप्त हो गया । उसी समय इन्द्र आदि देवों ने आकर ज्ञान-कल्याणक का उत्सव मनाया । इन्द्रकी आज्ञा पाकर कुबेरके समवसरण धर्मसभा की रचना की । उसके मध्यमें विराजमान होकर भगवान् मल्लिनाथ ने अपना छह दिनका मौन भंग किया । दिव्य ध्वनि द्वारा सतत्व, नवपदार्थ, छहद्रव्य आदिका पुष्कल विवेचन किया । चारों गयियों के दुःखोंका वर्णन किया जिससे प्रभावित होकर अनेक नर-नारियों ने मुनि-आर्यिका और श्रावक-श्राविकाओं के बत धारण किये ।

उनके समवसरण में विशाख आदि अट्ठाईस गणधर थे, साढे पांच सौ ग्यारह अंग चौदह पूर्व के जानकर थे उनतीस हजार शिक्षक थे, दो हजार दौ सौ अवधिज्ञानी थे, इतने ही केवलज्ञानी थे, एक हजार चार सौ वादी थे, दो हजार नौ सौ विक्रिया ऋद्धि के धारक थे और एक हजार सात सौ पचास मनःपर्यय ज्ञानी थे । इस तरह सब मिलाकर चालीस हजार मुनिराज थे । बन्धुषेणा आदि पचपन हजार आर्यिकाये थी, एक लाख श्रावक थे, तीन लाख श्राविकांये थी, असंख्यात देव-देवियां थी और संख्यात तिर्थच्च थे । भगवान् मल्लिनाथ ने अनेक आर्य क्षेत्रोंमें

विहार कर पथ-भ्रान्त पथिकों को मोक्षका सच्चा रास्ता बतलाया । जब उनकी आयु सिर्फ एक माहकी बाकी रह गई तब उन्होंने योग निरोधकर फाल्गुन शुक्ला पंचमी के दिन भरणी नक्षत्र में शाम के समय कर्मों को नष्टकर मोक्ष महल में प्रवेश किया । उसी समय देवों ने आकर सिद्ध क्षेत्रकी पूजा की और निर्वाण कल्याणक का उत्सव मनाकर प्रचुर पुण्य का संचय किया ।

भगवान् मल्लिनाथ ने कुमार अवस्थामें ही अजय कामदेवको जीतकर अपने नामको सार्थक किया था । वे महावली थे शूरवीर थे, किन्तु नर शत्रुओं के संहारके लिये नहीं अपितु आत्म शत्रु, मोह, मद मदन आदि को जीतने के लिये । इस तरह इनके पवित्र जीवन और निर्मल आचारोंका विचार करने पर मल्लिनाथ स्त्री थे यह केवल कल्पना है ।

भगवान् मुनिसुब्रतनाथ

अबोध कालोरग मूढ दष्ट मवुबुधत् गारुडरत्नवद्यः ।

जगत्कृ ताकोमल दृष्टि पातैः प्रभुः प्रसद्यान्मुनिसुब्रतो नः ॥

जिन्होंने अज्ञानरूपी काले सर्प के द्वारा डसे हुए इस मूर्छित संसार को गरुड रत्न के समान सचेत किया था वे भगवान् मुनि सुब्रतनाथ अपने कृपा कोमल दृष्टिपातके द्वारा हम सबपर प्रसन्न होवें ।

(१) पूर्वभव परिचय

जम्बू द्वीप भरतक्षेत्र के अड देश में एक चम्पापुर नामका नगर था । उसमें किसी समय हरिवर्मा नाम के राजा राज्य करते थे । महाराज हरिवर्मा अपने समयके अद्वितीय वीर बहादुर थे । उन्होंने अपने बाहुबलसे समस्त शत्रुओंकी आंखे नीचे कर दी थी ।

एक दिन चम्पापुर के किसी उद्यानमें अनन्तवीर्य नामके मुनिराज थे । उनके पुण्य प्रतापसे वनमें एक साथ छहों ऋतुओं की शोभा प्रकट हो गई । विरोधी जन्तुओंने परस्पर का बैर-भाव छोड़ दिया । जब वनमालीने जाकर राजा हरिवर्मा से मुनिराज अनन्तवीर्यके शुभागमन का समाचार कहा तब वे बहुत ही प्रसन्न हुए । सच है भव्य पुरुषोंको वीतराग साधुओंके समागम से जो सुख होता है वह अन्य पदार्थों के समागम से नहीं होता । आभरण आदि देकर उन्होंने-वनमाली को विदा किया और आप इष्ट परिवार के साथ पूजनकी सामग्री लेकर मुनिराज अनन्त वीर्य की वन्दन के लिये गये । वनमें पहुँचकर राजा हरिवर्मा ने छन्ना, चमर आदि

राजाओं के चिन्ह दूरसे ही अलग कर दिये और शिष्य की तरह विनित होकर मुनिराजके समीप पहुंचे । अष्टांडू नमस्कार कर हरिवर्मा, मुनिराज के समीप ही जमीनपर बैठ गये । अनन्त वीर्यने ङधम वृद्धिदरस्तुछ करते हुए राजाके नमस्कारका प्रत्युत्तर दिया । और स्यादस्ति, स्थान्नास्ति, आदि सात भद्रोंको लेकर जीव अजीव आदि तत्त्वोंको स्पष्ट विवेचन किया । मुनिराज के व्याख्यान से महाराज हरिवर्मा मो - आत्मबोध हो गया। उन्होंने उसी समय अपनी आत्माको पर -पदार्थोंसे भिन्न अनुभव किया ओर रागद्वेषको दूर कर उसे सुविशुद्ध बनाने का सदृढ निश्चय कर लिया । घर आकर उन्होंने अपने-ज्येष्ठ पुत्र को राज्य दिया और फिर बनमें जाकर अनेक राजाओंके साथ उन्ही अनन्त वीर्य मुनिराज के पास जिनदीक्षा ग्रहण कर ली । गुरुके पास रहकर उन्होंने ग्यारह अंगोंका ज्ञान प्राप्त किया तथा दर्शन विशुद्धि आदि सोलह भावनाओंका चिन्तवन कर तीर्थकर प्रकृतिका बन्ध किया । इस तरह बहुत दिन तक कठिन तपस्या करके आयुके अन्त में सल्लेखना विधिसे शरीर त्याग किया जिससे चौदहवें प्राणत स्वर्गमें इन्द्र हुए । वहां पर उनकी बीस सागरकी आयु थी, शुक्ल लेश्या थी, साढे, तीन हाथ ऊंचा शरीर था । बीस पक्ष बाद उच्छ्वास क्रिया और बीस हजार वर्ष बाद आहार की इच्छा होती थी । वे वहां अपने सहजात अवधिज्ञान से पांचवे नरक तक की बात जान लेते थे । उनके हजारों सुन्दरी स्त्रियां थी पर उनकें साथ कायिक प्रवीचार नहीं होता था । कपायोंकी मन्दता होनेकेकारण मानसिक संकल्प मात्रसे ही उन दम्पतियों कों कामेच्छां शान्त हो जाती थी । यही इन्द्र आगेके भवमें भगवान् मुनिसुब्रतनाथ होंगे । कहां ? सो सुनिये ।

(२) वर्तमान परिचय

इसी भरत क्षेत्र के मगध (बिहार) प्रांत में एक राजगृह नाम का नगर है । उसमें हरिवंशका शिरोमणि सुमित्र नाम का राजा राज्य करता था । उसकी स्त्रीका नाम सोमा था । दोनों दम्पति सुखसे समय व्यतीत करते थे । पहले उन्हें किसी बात की चिन्ता नहीं थी । पर जब सोमाबी अवस्था बीतती गई और कोई सन्तान पैदा नहीं हुई तब उन्हें सन्तान का अभाव निरन्तर खटकने लगा । राजा सुमित्र समझदार पुरुष थे ,संसारकी स्थिति को अच्छी तरह जानत थे, इसलिये वे अपने आपको बहुत कुछ समझाते रहते थे । उन्हें सन्तान का अभाव विशेष कुट नहीं मालूम होता था । पर सोमा का हृदय कई वार समझाने पर भी पुत्रके अभाव में शान्त नहीं होता था ।



एक दिन जब उसकी नजर गर्भवती क्रीडा हंसी पर पड़ी तब वह अत्यन्त व्याकुल हो उठी और अपने आप की निन्दा करती हुई आंसू बहाने लगी । जब उसकी सखियों द्वारा राजा सुमित्र को उसके दुःख का पता चला तब वे शीघ्र ही अन्तःपुर दौड़े आये और तरह तरहके मीठे शब्दों में रानीको समझाने लगे । उन्होंने कहा कि जो कार्य सर्वथा दैव के द्वारा साध्य है उसमें मनुष्यका पुरुषार्थ क्या कर सकता है ? इसलिये दैव साध्य वस्तुकी प्राप्तिकेलिये चिन्ता करना व्यर्थ है इत्यादी रूपसे समझाकर सुमित्र महाराज राजसभा की ओर चले गये और रानी सोमा भी क्षण एकके लिये हृदयका दुःख भूलकर कार्यान्तर में लग गई ।

एक दिन महाराज सुमित्र राज सभा में बैठे हुए थे कि इतनेमें इन्द्र की आज्ञा पाकर अनेक देवियां आकाश से उतरती हुई राजसभा में आईं और जब जय शब्द करने लगी । राजाने उन सबका सुनकर श्रीदेवीने कहा कि महाराज ! आजसे पन्द्रह माह बाद आपकी मुख्य रानी सोमाके गर्भ से भगवान् मुनिसुब्रतनाथ का जन्म होगा । इसलिये हम सब इन्द्र की आज्ञा पाकर मुनिसुब्रतनाथ की माताकी शुश्रूषा करनेके लिये आईं हुई हैं । इधर देवियों और राजाके बीच में यह सम्बाद चलन रहा था । उधर आकाश से अनेक रत्नोंकी वर्षा होने लगी । रत्नोंकी वर्षा देखकर-देवियोंने कहा-कि महाराज ! ये सब उसी पुण्य मूर्ति बालक के अभ्युदय को बतला रह है । देवियोंके वचन सुनकर राजा बहुत ही प्रसन्न हुए । राजा की आज्ञा पाकर देवियां अन्तःपुर पहुँचीं और वहाँ महारानी सोमाकी सेवा करने लगी । छह माह बाद रानीने श्रावण कृष्णा द्वितीयाके दिन रात्रिके पिछले पहरमें सोलह स्वप्न देखे । उसी समय उक्त इन्द्रने प्राणत स्वर्ग मोह छोडकर रानी सोमाके गर्भ में प्रवेश किया, देवोंने गर्भ कल्याणक का उत्सव किया और राजदम्पति का खूब सत्कार किया । जब धीरे धीरे गर्भ के दिन पूर्ण हो गये तब रानी सोमाने वैसाख वदी दशमी के दिन श्रावण नक्षत्र में पुत्र रत्न उत्पन्न किया । देवोंने आकर उसका अभिषेक किया और मुनिसुब्रत नाम रक्खा । बालक मुनिसुब्रत का राजभवन में योग्य रीतीसे लालन पालन हुआ । क्रम-क्रम से जब उन्होंने युवावस्थामें पदार्पण किया तब पिता सुमित्र महाराज ने उनका किन्ही योग्य कुलीन कन्याओंके साथ विवाह कर दिया भगवान् मुनि सुब्रत अनुकुल स्त्रियों के साथ तरह तरह के कौतुक करते हुए मदन वे की आरधना करने लगे । श्री मल्लीनाथ तीर्थकर के मोक्ष जीने के बाद चौअन लाख वर्ष बीत जानेपर भगवान् मुनिसुब्रतनाथ हुए थे । उनकी आयु भी इसी अन्तराल शामिल

है । तीस हजार वर्ष की उनकी आयु थी, बीस धनुष ऊंचा शरीर था, और रंग मोर के गले की तरह नीला था ।

जब कुमार काल के सात हजार पांच सौ वर्ष बीत गये तब उन्हें राज्यगद्दी प्राप्त हुई । राज्य पाकर भगवान् मुनिसुब्रतनाथ ने प्रजा का इस तरह पालन किया था कि जिससे वह सुमित्र महाराज का स्मरण बहुत समय तक नहीं रत्न सकी थी । इस तरह आनन्दपूर्वक राज्य करते हुए जब उन्हें पन्द्रह हजार वर्ष बीत गये तब एक दिन मेघों की गर्जना सुननेसे उनके प्रधान हाथी ने खाना पीना छोड़ दिया । जब लोगों ने मुनिसुब्रत स्वामी से उसका कारण पूछा तब वे अवधिज्ञान से सोचकर कहने लगे- कि यह हाथी इससे पहले भवमें तालपुर नगर का स्वामी नरपति नामका राजा था । उसे अपने कुल, धन ऐश्वर्य आदिका बहुत ही अभिमान था उसने एक बार पात्र अपत्र का कुछ भी पता नहीं है । न बड़ी भारी राज्य संपदा का । यह मुख केवल वन का स्मरण कर दुःखी हो रहा है । भगवान के उक्त वचन सुनकर उस हाथीको अपने पूर्वभाव का स्मरण हो आया जिससे उसने शीघ्र ही देशभक्त धारण कर लिये । इसी घटनासे भगवान मुनि सुब्रतनाथ को भी आत्मज्ञान उत्पन्न हो गया । वे संसार परिभ्रमण से एकदम उदास हो गये । उसी समय उन्होंने विषयों की निरसारता का विचार कर उन्हें छोड़ने का सुदृढ निश्चय कर लिया ।

लौकान्तिक देवों ने आकर उनके उक्त बिचारों का समर्थन किया जिससे उनका वैराग्य और भी अधिक बढ़ गया । अपना कार्य पूरा कर लौकान्तिक देव तो अपने स्थानपर चले गये और चतुर्णिकाय के देवों ने आकर दीक्षा कल्याणक का उत्सव मनाया । भगवान मुनि सुब्रतनाथ युवराज विजय को राज्य देकर देवनिर्मित अपराजिता पालकी पर सार हो नील नामक वनमें पहुँचे वहाँ उन्होंने कृष्णा दशमी के दिन श्रवण नक्षत्र में शाम के समय तेलातीन दिन के उपवास की प्रतिज्ञा लेकर एक हजार राजाओं के साथ जिन दीक्षा ले ली । उन्हें जिन दीक्षा लेते ही मनःपर्यय ज्ञान तथा अनेक ऋद्धियां प्राप्त हो गई थी । चौथे दिन आहार लेने के कलये वे राजगृह नगरी में पहुँचे । वहाँ उन्हें वृषभसेनके घर पर पंचाश्रय प्रकट किये राजगृही से लौटकर उन्होंने ग्यारह महीने तक कठिन तपश्चरण किया और फिर वैसाख कृष्ण नवमी के दिन श्रवण नक्षत्र में शाम के समय उसी नील वनमें चम्पक वृक्ष के नीचे केवलज्ञान प्राप्त कर लिया । केवलज्ञान के द्वारा वे विश्वके चराचर पदार्थों को एक साथ जानने लगे थे । उसी समय देवों ने आकर ज्ञान कल्याणक का उत्सव किया । धनपतिने दिव्य सभा-समवसरण की रचना की । उसके मध्य में

स्थित होकर उन्होंने अपना मौन भंग किया -दिव्य ध्वनी के द्वारा सर्वोपयोगी तत्वों का स्पष्ट विवेचन किया । चारों गतियोंके दुःखोंका लौमहर्षण वर्णन किया, जिससे अनेक भव्य जीव प्रतिबुद्ध हो गये थे । इन्द्रकी प्रार्थना सुनकर उन्होंने अनेक आर्य क्षेत्रों में विहार किया और असंख्य नर नारियोंको धर्म का सच्चा स्वरूप समझाया । धीरे धीरे उनके समवसरण में मल्लि आदि अठारह गणधर थे, पांच सौ द्वादशांग के जानकार थे, इक्कीस हजार शिक्षक थे, एक हजार आठ सौ विक्रियाऋद्धि के धारक थे और एक हजार दो सौ वादी थे । इस तरह सब मिलकर तीस हजार मुनिराज थे । इनके सिवाय पुष्पदत्ता आदि पचास हजार अर्थिकाएं थी, एक लाख श्रावक थे, तीन लाख श्राविकाएं थी असंख्यात देवदेवियां और संख्यात तिर्यच थे । इन सबके साथ भगवान मुनि सुब्रतनाथ अनेक आर्य क्षेत्रों में विहार करते थे ।

निरन्तर विहार करते-करते जब उनकी आयु एक माह अवशिष्ट रह गई तब उन्होंने सम्मोद शिखरपर पहुँचकर वहाँ एक हजार राजाओंके साथ प्रतिमा योग धारण कर लिया और शुक्ल ध्यान के द्वारा अघाति चतुष्क का क्षय कर फाल्गुन कृष्ण द्वादशीके दिन श्रवण नक्षत्र में रात्रिके पिछले पहर मुक्ति मन्दिर में प्रवेश किया । इन्द्र आदि देवों ने आकर उनके निर्वाण कल्याणक का महान उत्सव किया ।

भगवान नमिनाथ

शिखरिणी

स्तुतिःस्तोतुः साधो कुशल परिणमाय स तदा,

भवेन्माचा स्तुत्यः फलमपि ततस्तस्य च सतः ।

किमेवं स्वाधीनाज्जगति सुलभ श्रायस पथे,

स्तुयान्नत्वा विद्वान सततमपि पूज्यं नमिजिनम् ॥ (स्वामी समन्तभद्र)

साधुकी स्तुति, स्तुति करने वाले के कुशल, अच्छे परिणाम के लिये होती है । यद्यपि उस समय स्तुति करने योग्य साधु सामने मौजूद हों और न भी हों तथापि उस उत्कृष्ट स्तोता के स्तुतिका फल होता है । इस तरह संसार में अपनी आधिपत्या के अनुसार जबकि हितका मार्ग सुलभ हो रहा है, तब कौन विद्वान हमेशा पूजनीय भगवान नामिनाथ को नहीं पूजैगा ? अर्थात् सभी पूजेंगे ।

(१) पूर्वभव परिचय

जम्बूद्वीपके भरतक्षेत्र में एक वत्स नामका देश है, उसकी कौशाम्बी नाम की नगरी में किसी समय पार्थिव नाम का राजा राज्य करता था । पार्थिवकी प्रधान पत्नी का नाम सुन्दरी था । ये दोनों राज-दम्पति सुखसे काल यापन करते थे । कुछ समय बाद इनके सिध्दार्थ नामका पुत्र पैदा हुआ । सिध्दार्थ बड़ा ही होन पर बालक था । जब वह बड़ा हुआ तब राजा पार्थिव ने उसे युवराज बना दिया । एक दिन पार्थिव महाराज मनोहर नाम के बगीचे में घूम रहे थे । वहीं पर उन्हें एक मुनिवर नाम के साधु के दर्शन हुए । राजाने उन्हें भक्ति से झुकाकर नमस्कार किया और उनके मुखसे धर्मका स्वरूप सुना । धर्म का स्वरूप सुन चुकने के बाद उसने अपने पूर्वभव पूछे तब मुनिवर मुनिराजने अवधिज्ञान रूपी नेत्रों से स्पष्ट देखकर उसके पूर्वभव कहे । अपने पूर्वभवों का समाचार जानकर राजा पार्थिवको वैराग्य उत्पन्न हो गया । उसने घर आकर युवराज सिध्दार्थको राज्य दिया और फिर बनमें पहुँचकर उन्ही मुनिराज के पास जिन दीक्षा ले ली । इधर सिध्दार्थ भी पिता का राज्य पाकर बड़ी कुशलता से प्रजा का पालन करने लगा । कालक्रम से सिध्दार्थ के एक श्रीदत्त नाम का पुत्र हुआ जो अपने शुभ-लक्षणों से कोई महापुरुष मालूम होता था । किसी समय राजा सिध्दार्थको अपने पिता पार्थिव मुनिराज के समाधिमरण का समाचार मिला जिससे वह उसी समय विषयोंसे विरक्त होकर मनोहर नाम के बन में गया और वहाँ महाबल नामक केवली के दर्शन कर उनसे तत्वोंका स्वरूप पूछने लगा । केवलीश्वर महाबल भगवान के उपदेश से उसका वैराग्य पहलेसे और भी अधिक बढ़ गया । इसलिये वह युवराज श्रीदत्त के लिये राज्य देकर उन्हीं केवली भगवानकी चरण छाया में दीक्षित हो गया । उनके पास रहकर उसने क्षायिक सम्यग्दर्शन प्राप्त किया, ग्यारह अंगोका अध्ययन किया और विशुद्ध हृदय से दर्शन विशुद्धि आदि सोलह कारण भावनाओंका चिन्तयन कर तीर्थकर नामक पुण्य प्रकृतिका बन्ध किया तथा आयु के अंत में समाधि धारणकर अपराजित नामक विमान में अहमिन्द्र हुआ । वहाँ उसकी आयु तैतीस सागर की थी शरीर एक अरन्ति काथ ऊँचा था, शुक्ल लेश्या थी तेतीस हजार वर्ष बाद मानसिक आहार लेता और तेतीस पक्ष बाद श्वासोच्छ्वास ग्रहण करता था । वहाँ वह अपने अवधिज्ञान से सप्तम नरक तक की वार्ताएं स्पष्ट जान लेता था । यही अहमिन्द्र आगे चलकर भगवान् नामिनाथ होगा और संसार का कल्याण करेगा ।

(२) वर्तमान परिचय

वहां अनेक तरह के सुख भोगते हुए जब उसकी आयु सिर्फ छह माह की रह गई और वह भूतलपर अवतार लेनेक सम्मुच हुआ तब इसी भरतक्षेत्र में यंग बंगाल देश मी मिथिला नगरी में इक्ष्वाकु वंशीय महाराज श्री विजय राज्य करते थे जो अपने समय के अद्वितीय शूर विर थे । उनकी देवियोंने मन बचन कार्य से उस की सेवा की । उसने आश्विन कृष्णा द्वितीयो के दिन अश्विनी नक्षत्र में रात के पिछले भाग में हाथी आदि सोलह स्वप्न देखे । उसी समय उक्त अपराजित विमान में चढकर हाथी के आकार ही उसके गर्भ में प्रवेश किया सबेरा होते ही जब वप्पिला रानीने पतिदेव से स्वप्नों का फल पूछा तब उन्होंने कहा कि आज तुम्हारी गर्भ में त्रिभुवन नायक तीर्थकर भगवान ने प्रवेश किया है । ये सोलह स्वप्न और यह रन्तों की अविरल वर्षा उन्होंका महात्म्य प्रकट कर रही है । सबेरा होते होते ही देवोंने आकर मिथिला पुरी की तीन प्रदक्षिणाएं दो और फिर राजभवनमें जाकर महाराज श्री विजय और वप्पिला देवी की खूब स्तुति की । तथा अनेक वस्त्राभूषण देकर उन्हें प्रमुदित किया ।

गर्भकाल के नौ माह बीत जानेपर रानी वप्पिलाने आषाढ कृष्णा दशमी के दिन स्वाती नक्षत्र में तेजस्वी बालक को उत्पन्न किया । उसके दिव्य तेजसे समस्त प्रसूति गृह जगमगा उठा था । उसी समय देवोंने आकर उसके जन्म कल्याणक का उत्सव मनाया और नेमिनाथ नाम से सम्बोधित किया । महाराज श्री विजयने भी पुत्र रत्न की उत्पत्ति के उपलक्ष में करोडो रुपयों का मन्दिर में भगवान नामिनाथ को उचित रुपसे पालन होने लगा ।

क्रम-क्रम से जब वे तरुण अवस्था को प्राप्त हुए तब महाराज श्री विजय ने उनका योग्य कुलीन कन्याओं के साथ विवाह सम्बन्ध कर दिया और उन्हे युवराज पदपर नियुक्त किया भगवान मुनि सुब्रतनाथ के मोक्ष जानेसे साठ लाख वर्ष बीत जानेपर इनका अवतार हुआ था । इनकी आयु भी इसी में शामिल है । आयु दश हजार वर्ष बीत जानेपर इनका अवतार हुआ था । इनकी आयु भी इसी में शामिल है । आयु दश हजार वर्ष की थी शरीर पन्द्रह धनुष ऊंचा था और शरीर का रंग तपाये हुए सुवर्णकी तरह था । कुमार कालके पच्चीस सौ वर्ष जानेपर उन्हे राज्याभिषेक पूर्वक राज्य गद्दी देकर श्री विजय महाराज आत्म कल्याण की ओर अग्रसर हुए थे । भगवान नामिनाथने राज्य पाकर दृष्टोंका उच्छेद और साधुओंका अनुग्रह किया । बीच-बीच में देव लोग संगीत आदिकी गोष्ठियोंसे उनका मन प्रसन्न रखते थे । इस तरह सुख पूर्वक राज्य करते हुए उन्हे पांच हजार वर्ष बीत गये ।

एक दिन किसी बन में घूमते हुए भगवान नमिनाथ वर्षा ऋतु की शोभा देख रहे थे कि इतने में आकाश में घूमते हुए दो देव उनके पास पहुंचे । जब भगवान ने उनसे आनेका कारण और परचिय पूछा तब वे कहने लगे नाथ इसी जम्बू द्वीप के विदेह क्षेत्र में एक वत्सकावती देश है उसके सुसीमा नगरमें अपराजित विमानसे आकर एक अपराजिम नामके तीर्थकर हुए है । उनके केवलज्ञान की पूजा के लिये सब इन्द्रादिक देव आये थे । कल उनके समवसरण में किसी ने पूछा था कि इस समय भरतक्षेत्र में भी क्या कोई तीर्थकर है । तब स्वामी अपराजित ने कहा था कि इस समय भरतक्षेत्रा बंगाल प्रान्त की मिथिला नगरीमें नेनिनाथ स्वामी है जो कुछ समय बाद तीर्थकर होकर दिव्य ध्वनिसे संसार का कल्याण करेंगे । वे अपराजित विमान से आकर वहां उत्पन्न हुए है । महाराज ! पहले हम दोनों धातकीखण्ड दीपक के रहने वाले थे पर अब तपश्चर्या के प्रभावसे सौधर्म स्वर्ग में देव हुए है दुसरे ही दिन हम लोग अपराजित केवलीकी बन्दनाके लिये गयी थे सो वहांपर आपका नाम सुनकर दर्यानोंकी अभिलाषा से यहां आये है ।

भगवान नामिनाथ देवोंकी बात सुनकर अपने नगरकी लाट तो आये पर उनके हृदय में संसार परिभ्रमण के दुःखने स्थान जमा लिया । उन्होंने सोचा कि वह जीव नाटक के नट की तरह कभी देवका, कभी मनुष्यका, कभी तियच्चका और कभी नारी का वय बदलता रहता है । अपने ही परिणामोंसे अच्छे बुरे कर्मोंका बांधता है और उनके उदय में यहां वहां घूमकर जन्म लेकर दुःखी होता है । इस संसार परिभ्रमण का यदि कोई उपाय है तो दिगम्बर मुद्रा धारण करना ही है । यहां भगवान ऐसा विचार कर रहे थे, वहां लौकान्तिक देवोंके आसन कं पने लगे जिससे वे अवधिज्ञान से सब समाचार जानकर नमिनाथजी के पास आये और सारगर्भित शब्दों में उनकी स्तुति तथा उनके विचारों का समर्थन करने लगे । लौकान्तिक देवोंके समर्थन से उनका वैराग्य और भी अधिक बढ़ गया । इसलिये उन्होंने सुप्रभ नामक पुत्राको राज्य दे दिया और आप उत्तर कुरु नामकी पालकी पर सवार होकर चित्रवन मे पहुंचे । वहां दो दिनके उपवास की प्रतिज्ञा लेकर आषाढ कृष्णा दशमीके दिन अश्विनी नक्षत्र में शाम के समय एक हजार राजाओं के साथ दीक्षित हो गये । देव लोग तपःकल्याणक का उत्सव मनाकर अपने अपने स्थान पर चले गये । भगवान् नेमिनाथ को दीक्षा के समय ही मनःपर्यय ज्ञान तथा अनेक ऋद्धियां प्राप्त हो गई थी । वे तीसरे दिन आहार लेनेकी इच्छा से वीरपुर नगर में गये । वहांपर दत्त राजाने उन्हें विधि पूर्वक आहार दिया था । तदनन्तर उन्होंने छद्मस्थ अवस्था के नौ

वर्ष मौन पूर्वक व्यतीत किये । छद्मस्थ अवस्था में भी उन्होंने कई जगह विहार कि । नौ वर्ष के बाद वे उसी दीक्षावन-चित्रवन में आये और वहां मौलिश्री-नकुल वृक्ष के निचे दो दिनके उपवास की प्रतिज्ञा लेकर विराजमान हो गये । वहीं पर उन्हें मार्ग शीर्ष शुक्ला पौर्णमासी के दिन अश्विनी नक्षत्रमें पुर्णज्ञान-केवलज्ञान प्राप्त हो गया । उसी समय इन्द्र आदि देवों ने आकर उनकी पूजा की । इन्द्रकी आज्ञा पाकर धनपतिने समवसरण की रचना की । उसके मध्यमें सिंहासन पर विराजमान होकर उन्होंने नौ वर्षके बाद मौन भंग किया । दिव्य ध्वनि के द्वारा सब पदार्थों का व्याख्यान किया । लोगोंको अनेक सामयिक सुधार बतलाये । उनके प्रभाव, शील और उपदेश से प्रतिबुद्ध होकर कितने ही भव्य जीवों ने मुनि-आर्यिका, श्रावक और श्राविकाओं के बत धारण किये थे । इन्द्र की प्रार्थना सुनकर उन्होंने प्रायः समस्त आर्य क्षेत्रों में बिहार किया और सत्य धर्मका ठोस प्रचार किया ।

उनके समवसरण में सुप्रभार्य आदि सत्राह गणधर थे, चार सौ पचास, ग्यारह अंग चौदह पूर्व के जानकर थे, बारह हजार छह सौ शिक्षक थे, एक हजार छःसौ अवधिज्ञानी थे, इतने ही केवलज्ञानी थे, पन्द्रह सौ विक्रिया ऋद्धि के धारक थे, बारह सौ पचास मनःपर्यय ज्ञानी थे, और एक हजार वादी शास्त्रार्थ करने वाले थे । इस तरह कुल मिलाकर बीस हजार मुनिराज थे । मंगिनी आदि पैतालीस हजार आर्यिकायें थी, असंख्यात देव-देवियां और असंख्यात तिर्थच थे । भगवान नामिनाथ इन सबके साथ बिहार करते थे ।

निरन्तर बिहार करते-करते जब उनकी आयु केवल एक माह बाकी रह गई तब वे बिहार और उपदेश बन्दकर सम्मेद शिखर पर जा पहुंचे और वही पर एक हजार राजाओं के साथ प्रतिमा योग धारकर विराजमान हो गये । वहीं पर उन्होंने वैशाख कृष्ण चतुर्दशीके दिन प्रातः कालके समय अश्विनी नक्षत्र में शुल्क ध्यान रूप वन्हिके द्वारा समस्त अघातिया कर्मों की जलाकर आत्म स्वातंत्र्य-मोक्ष लाभ किया । उसी समय देवों ने आकर सिद्ध क्षेत्र की पूजा की और निर्वाण कल्याणक का उत्सव किया ।

भगवान नेमिनाथ

धनाक्षरी छन्द

शोभिते प्रियंग अंग देखे दुख होय भंग, लाजत अनंग जैसे दीप भानु भासतैं ।

बाल ब्रम्हचारी उग्रसेनकी कु मारी जादों, नाथ तैं किनारो कर्म कादो दुःख रास तैं ।।

भीम भव काननमें आनन सहाय स्वामी, अहो नेमि नामी तक आयो तुम्हें तासतैं ।

जैसे कृपा कन्द बन जीवनको बन्द छोडि त्योंहि दासको खलास कीजैभव फांसतैं ।।

(१) पूर्वभव वर्णन

जम्बू द्वीप के पश्चिम विदेह क्षेत्र में सीतोदा नदी के उत्ता किनारे पर एक सुगन्धिल नामका देश है । उसके सिहपुर नगरमें किसी समय अर्हदास नामका राजा राज्य करता था । उसकी स्त्री का नाम जिनदत्ता था । दोनों दम्पति साधु स्वभावी और आसन्न भव्य जीव थे । वे अपना धर्ममय जीवन बिताते थे ।

किसी समय महारानी जिनदत्ता ने अष्टान्हिका के दिनों में सिध्दयंत्र की पूजा की और उससे आशा की कि हमारे कोई उत्तम पुत्रा हो । ऐसी आशा कर वह प्रसन्नचित्त हो रातमें रातमें सुखपूर्वक सो गई । सोते समय उसने सिंह, हाथी, सूर्य, चन्द्रमा और लक्ष्मीका अभिषेक ऐसे पांच शुभ स्वप्न देखे । उसी समय उसके गर्भ में स्वर्ग से आकर किसी पुण्यात्मा जीवने प्रवेश किया । नौ माह बीत जानेपर उसने एक महा पुण्यात्मा पुत्र उत्पन्न किया । उसके उत्पन्न होते ही शुभ शकुन हुए थे । वह खेल कूद में भी अपने भाईयोंके द्वारा जीता नहीं जाता था । इसलिये राजाने उसका अपराजित नाम रक्खा था । अपराजित दिन दूना और रात चौगुना बढ़ने लगा । धीरे धीरे उसने युवावस्था में प्रवेश किया, जिससे उसके शरीर की शोभा कामदेवसे भी बढ़कर हो गई थी । योग्य अवस्था देखकर राजा अर्हदास ने उसका कुलीन कन्याओं के साथ विवाहबन्धन कर दिया और कुछ समय बाद उसे युवराज भी बना दिया ।

किसी एक दिन बनमालीने राजा अर्हदासके वन में विमलवाहन नामक तीर्थकर के आने का समाचार कहा । जिससे राजा प्रसन्नचित्त हो समस्त परिवार के साथ उनकी बन्दनाके लिये गया । वहां उसने तीन प्रदक्षिणायें देकर उन्हें भक्तिपूर्वक नमस्कार किया और मनुष्योचित स्थानपर बैठकर धर्मका स्वरूप सुना । तीर्थकर देव के उपदेश से विषय-विरक्त होकर उसने युवराज अपराजित के लिये राज्य दे दिया और आप उन्ही विमलवाहन मुनिराज के पास दीक्षीत हो गया । कुमार अपराजितने भी सम्यग्दर्शन और अणुब्रत धारणकर राजधानी में प्रवेश किया । वहां



वह राज्य की समस्त व्यवस्था सचिवों के आधीन छोडकर धर्म और काम के सेवन में लग गया । एक दिन उसने सुना कि पूज्य पिताजी के साथ साथ श्री विमलवाहन गन्धमादन पर्वतसे मुक्त हो गये है यह सुनकर उसने प्रतिज्ञा की कि मैं तीर्थकर के बिना दर्शन किये भोजन नहीं करुंगा । इस तरह बिना भोजन किये उस को आठ दिन हो गये तब इन्द्रकी आज्ञा पाकर यक्षपतिने अपनी मायासे विमलवाहन तीर्थकर का साक्षात् स्वरूप बनाकर दिखलाया । अपराजित समवसरण में बन्दनाकर उन की पूजा की और फिर भोजन किया ।

किसी एक दिन राजा अपराजित फाल्गुण मासकी अष्टान्हाओं के दिनोंमें जिनेन्द्रदेव की पूजा कर जिन मन्दिरमें बैठा हुआ धर्मोपदेश कर रहा था । इतनेमें वहां चारण ऋद्धिधारी दो मुनिराज आये । राजाने खडे होकर दोनों मुनिराजोंका स्वागत किया और भक्तिपूर्वक नमस्कार कर उन्हें योग्य आसन पर बैठाया । कुछ देर तक धर्म-चर्चा होने के बाद राजाने मुनिराज से कहा कि महाराज मैंने कभी आपको देखा है । यह सुनकर बडे मुनिराज बोले-ठीक, आपने मुझे अवश्य देखा है पर कहां ? यह आप नहीं जानते इसलिये मैं कहता हूं सुनिये पुष्करार्ध द्वीप के पश्चिम मेरु की ओर पश्चिम क्षेत्रमें जो गन्धिल नामका देश है उसके विजयार्ध पर्वत की उत्तर श्रेणीमें एक सूर्यप्रभ नामका नगर है । उसमें किसी समय सूर्यप्रभ नाम का राजा राज्य करता था । उसकी महारानी का नाम धरिणी था । उनमें चिन्तागति बडा मनोगति मझला और चपलगति , छोटा पुत्र था । राजा सूर्यप्रभ अपने बुद्धिमान पुत्र और पतिव्रता धारिण के साथ सुखसे जीवन बिताता था ।

उसी गन्धिल देश की उत्तर श्रेणी में उरिंदम नगर के राजा अरिंजय ओर रानी अजितसेना के एक प्रीतिमती नामकी पुत्री थी । प्रीतिमती बहुत ही बुद्धिमती लडकी थी । जब वह जवान हुई और उसके विवाह होने का समय आया तब उसने प्रतिज्ञा कर ली कि जो राजकु मार मुझे शीघ्र गमन में जीत लेगा मैं उसीके साथ विवाह करुंगी किसी दुसरे के साथ नहीं । यह प्रतिज्ञा लेकर उसने मेरु पर्वत की प्रदक्षिणा देनें में एक चिन्तागति को छोडकर समस्त विद्याधर राजकु मारोंको जीत लिया । जब प्रीतिमती बिजयी चिन्तागतिके गले में बरमाला डालने के लिये गई तब उसने कहा कि इस माला से तुम मेरे छोटे भाई चपलगति को स्वीकार करो । क्योंकि उसीके निमित्त से यह गति-युद्ध किया था । चिन्तागति की बात सुनकर प्रीतिमतीने कहा कि मैं चपलति से पराजित नहीं हुई हूं । मैं तो अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार यह रत्नमाला आप के ही श्रीकंठ में डालना चाहती हूं । पर चिन्तागतिने उसका कहना

स्वीकार नहीं किया । इसलिये वह विरक्त होकर किसी निवृत्ता नाम की आर्यिकाके पास दीक्षित हो गई । प्रीतिमतीका साहस देखकर चिन्तागति, मनोगति और चपलगतिभी दमबर मुनिराज के पास दीक्षित हो गये । और कठिन तपश्चरण कर आयु के अन्त में माहेन्द्र स्वर्ग में सामानिक देव हुये । वहां उन्होंने महा मनोहर भोग भोगते हुए सुख से सात सागर व्यतीत किये । आयुके अन्त में वहांसे च्युत होकर दोनों छोटे भाई मनोगति और चपलगति, जम्बू द्वीप के विदेह क्षेत्र में पुष्कलावती देश के विजयार्ध पर्वत की उत्तर श्रेणी में गगनवल्लभ नगर के राजा गगनचन्द्र और रानी गगनसुन्दरी के हम अभितगति और अभिततेज नाम के पुत्र हुए हैं ।

किसी एक दिन हमारे पिता गगनचन्द्र पुण्डरीकिणी नगरी को गये वहां स्वयंप्रभ भगवान् से हम दोनों के अगले-पिछले जन्मों की बात पूछी । पिताकी बात सुनकर स्वयंप्रभ महाराज ने हमारे पूर्व और आगेके कुछ भव बतलाये । उसी प्रकरणमें हम दोनों के पूर्वभव के बड़े भाई चिन्तागति का नाम आया था । उसे सुनकर पिताजी ने भगवान से पुनः पूछा कि चिन्तागति इस समय कहां उत्पन्न हुआ है ? तब उन्होंने कहा कि इस समय वह सिंहपुर नगर में अपराजिम नाम का राजा हुआ है । इस प्रकार भगवान स्वयंप्रभ के वचन सुनकर हम दोनों भाई वहां पर दीक्षित हो गये और फिर प्रकार भगवान स्वयंप्रभ के वचन सुनकर हम दोनों भाई वहां पर दीक्षित हो गये और फिर पूर्व जन्मके स्नेह से तुम्हें देखने के लिये आये है । राजन् ! अब तक आपने पूर्व पुण्य के उदय से अनेक भोग भोगे है । एक आज्ञा की तरह आपने अपनेको अजर अमर समझ कर आत्म-हितकी ओर कुछ भी प्रवृत्ती नहीं की है । इसलिये अब आप विषय वासनाओंसे विमुक्त होकर कुछ आत्म-कल्याण की ओर उनका आभार माना । मुनिराज अपना कार्य पूरा कर आकाश मार्ग से विवाह कर गये ।

राजा अपराजित ने भी अपने प्रीतिंकर नाम के पुत्र को राज्य दिया । अष्टन्हिक पूजा की और अब शेष दिनों में प्रायोपगमन सन्यास धारण कर अच्युतेन्द्र हुआ । वहां पर वह बाईस सागर तक नर-दुर्लभ सुख भोगता रहा । आयु पूर्ण होने पर जम्बूद्वीपके भरत क्षेत्र में कुरुजांगल देशमें हस्तिनापुर नगर में राजा श्रीचंद्र और रानी श्रीमती के सुप्रतिष्ठित नामका पुत्र हुआ । राजा श्रीचन्द्र ने उसका सुनन्दा नामक कन्या के साथ विवाह कर दिया । जिससे वह तरह तरह के भोग विलासों से अपने यौवन को सफल करने लगा ।

किसी एक दिन महाराज श्रीचन्द्र ने सुप्रतिष्ठित पुत्र के लिये राज्य देकर सुमंदर नाम के मुनिराज के पास दीक्षा लेली । इधर सुप्रतिष्ठित भी काम, क्रोध, मद, मात्सर्य, लोभ, मोह आदि अन्तरंग तथा बहिरंग आदि शत्रुओं को जीतकर न्याय पूर्वक राज्य करने लगा । उसने किसी समय यशोधर नामक मुनिराज को आहार दिया था । जिससे उसके घर पर पंचाश्चर्य प्रकट हुये थे । एक दिन राजा सुप्रतिष्ठित अपने समस्त परिवार के साथ मकानकी छतापर बैठकर चन्द्रमा की सुन्दर सुषमा देख रहा था । उसी समय आकाश से एक भयंकर उल्कापात हुआ जिससे उसका मन विषयोंसे सहसा विरक्त हो गया । वह संसार की क्षणभंगुरता का विचार करता हुआ विषय लालसाओंसे एक दम सहम गया । उसने उसी समय

अपने सुदृष्टि नामक पुत्र के लिये राज्य देकर किन्ही सुमन्दर नाम के ऋषिराज के पास दीक्षा धारण कर ली । वहां उसने ग्यारह अंगोंका अध्ययन दकिया ओर दर्शन विशुद्धि आदि सोलह कारण भावनाओं का चिन्तवन कर तीर्थकर नाम के पुण्य प्रकृति का बन्ध किया । जब आयुका अन्तिमं समय आया तब वह सन्यास पूर्वक शरीर छोडकर जयन्त नामक अनुत्तर विमान में अहमिन्द्र हुआ वहां उस की आयु तेतीस सागर की थी शरीर एक हाथ ऊंचा था । लेष्या परम शुक्ल थी तेमीस हजार वर्ष बाद आहार लेने की इच्छा होती थी और तेतीस पक्ष बाद श्वोसोच्छ्वास क्रिया होती थी । उसे जन्म से ही अवधिज्ञान था । जिस के बलसे वह नीचे सातवें नरक तक की बात जान लेता था । यही अहमिन्द्र आगे के भव में भगवान नेमिनाथ होकर जगत का कल्याण करेगा । कहां ? सो सुनिये

(२) वर्तमान परिचय

जम्बू द्वीप भरतक्षेत्र के कुशार्थ देशमें एक शौर्यपूर नामका नगर है उस में किसी समय शूरसेन नामका राजा राज्य करता था । यह राजा हरिवंशरू पी आकाशमें सूर्यके समान चमकता था । कुछ समय बाद शूरसेन के शूरवीर नामका पुत्र हुआ । जो सचमुच शूरवीर था । उसने समस्त शत्रु जीते लिये थे उस वीरकी स्त्रीका नाम धारिणी था । उससे उसके अन्धक वृष्णि और नर वृष्णि नामके दो पुत्र हुए । अन्धक वृष्णिकी रानीका नाम सुभद्रा था । उसके काल-क्रमसे १ समुद्रविजय, २ स्तिमितसागर, ३ हिमवान ४ विजय, ५ विद्वान, ६ अचल, ७ धारण ८ पूरण ९ पूरिताच्छीच्छ अभिनन्दन और १० वासुदेव.... ये दश पुत्र तथा कुन्ती और माद्री नाम की दो कन्याएं हुई । समुद्र विजय आदि शुरु के नौ भाईयों के क्रम से शिवादेवी, धृतीश्वरा, स्वयंप्रभा, सुनिता, सीता, प्रियवाक, प्रभावती, कालिंगी और सुप्रभा ये सुन्दरी स्त्रियां थी । वासुदेवने अनेक देशों में बिहार किया था । इसलिये उन्हें अनेक भूमि-गोचरी तथा विद्याधर राजाओंने अपनी कन्याएं भेंट की थी - उसके बहुत सी स्त्रियां थी । उन सबमें देवकी मुख्य थी ।

इन सबकी बहिन कुन्ती और माद्रीका विवाह हस्तिनापुर के कौववंशी राजा पाण्डु के साथ हुआ था । राजा पाण्डु के कुन्ती देवोंसे युधिष्ठिर, भीम और अर्जुन तथा माद्री देवीसौ नकुल और सहदेव इस तरह पांच पुत्र हुए थे । जोकि राजा पाण्डु की सन्तान होने के कारण पीछे पाण्डव नाम से प्रसिद्ध हो गये थे । बहनोईका रिस्ता होनेके कारण समुद्र विजय आदि दश भाई वसुदेव के बलराम और कृष्ण नामके दो पुत्र हुए जो बडे ही पराक्रमी थे श्रीकृष्णने अपने अतुल्य पराक्रम से

मथुरा के दुष्ट राजा कंसको मल्ल युद्धमें मार दिया था । जिससे उनकी जिवद्यशा स्त्री विधवा होकर रोती हुई अपने पिता जरासंध के पास राजगृह नगरमें गई उस समय जरासंध का प्रताप समस्त संसारमें फैला हुआ था । वह तीन खण्डका राजा था । अर्ध चक्रवर्ती कहलाता था । पुत्रीका दुःखभरी अवस्था देखकर उसने श्रीकृष्ण आदि को मारने के लिये अपन अपराजित नाम के पुत्र को भेजा, पर वसुदेव आदिने युद्धमें तीन सौ छयालीस हराया । अन्तमें अपराजित होकर अपने लौट गया । फिर कुछ समय बाद जरासंधका दूसरा लडका कालयवन श्रीकृष्ण को मारने के लिये आया । उसके पास असंख्य सेना थी । जब समुद्र विजय आदि को इस बात का पता चला तब उन्होंने परस्पर में सलाह की कि अभी श्रीकृष्ण की आयु कुछ बड़ी नहीं है इसलिये इस समय समर्थ शत्रु से युद्ध नहीं करना ही अच्छा है । ऐसा सोचकर वे सब शौर्यपुर से भाग गये और विन्ध्यावटी को पारकर समुद्र के किनारेपर पहुंच गये । इधर कालयवन भी उनकी पीछा करता हुआ जब विन्ध्यावटी में पहुंचा तब वहां समुद्र विजय आदि की कुलदेवता एक बुढियाका रूप बनाकर बैठ गई और विद्या बलसे खूब अग्नि जलाकर हा समुद्र विजय ! घ्हा वसुदेव, हा श्रीकृष्ण आदि कह कहकर विलाप करने लगी । जब कालयवन ने उससे रोने का कारण पूछा तब उसने कहा कि मैं बूढी धाय हूं । हमारे राजा समुद्र विजय आदि दशों भाई श्रीकृष्ण आदि पुत्रों तथा समस्त स्त्रियों के साथ शत्रुके भयसे भागे जा रहे थे सो इस प्रसण्ड अग्नि के बीच में पडकर असमयमें ही मर गये है । अब मैं असहाय होकर उन्हींके लिये रो रही हूं । बुढिया के बचन सुनकर कालयवन हर्षित होता हुआ वापिस लौट गया । अब आगे चलिये-जब राजा समुद्र विजय आदि समुद्र के किनारेपर पहुंचे थे तब वहां रहनेके लिये कोई मकान वगैरह नहीं था इसलिये वे सब आवासों-घरों की चिन्ता में यहां वहां घूम रहे थे । वहींपर बुद्धिमान श्रीकृष्णने आठ दिन के उपवास किये और नमके आसनपर बैठकर परमात्मा का ध्यान किया ।

श्रीकृष्ण की आराधना से प्रसन्न हुए एक नैगम नामके देवने प्रकट होकर कहा कि अभी तुम्हारे पास एक सुन्दर घोडा आवेगा तुम उसपर सवार होकर समुद्र में बारह योजन तक चले जाना । वहांपर तुम्हारे लिये एक मनोहर नगर बन जायेगा । इतना कहकर वह देव तो अदृश्य हो गया पर उसकी जगहपर कहींसे आकर एक सुन्दर घोडा खडा हो गया । श्रीकृष्ण उसपर सवार होकर समुद्रमें बाहर योजन तक दौडते गये । पुण्य प्रतापसे समुद्रका उतना भाग स्थलमय हो गया । वहीपर इन्द्रकी आज्ञा पाकर कुबेर देवने एक महा मनोहर नगरी की रचना कर दी । उसके बडे बडे

गोपुर देखकर समुद्र विजय आदिने उसका नाम द्वारावती (द्वारीका) रख लिया । राजा समुद्र विजय अपने छोटे भाईयों तथा श्रीकृष्ण आदि पुत्रों के साथ द्वारीकापुरी में सुखपूर्वक रहने लगे ।

भगवान् नेमिनाथके पूर्वभवों का वर्णन करते हुए जिस अहमिन्द्र का कथन कर आये है उस के जब वहांकी आयु सिर्फ छह माह की बाकी रह गई तभीसे द्वारिकापुरी में राजा समुद्र विजय और महारानी शिवा देवी के घरपर देवों ने रत्नोंकी वर्षा करनी शुरू कद दी । इन्द्रकी आज्ञा पाकर अनेक देव कुमारियां आ-आकर शिवा देवी की सेवा करने लगी । इन सब बातोंसे अपने घरमें तीर्थकरकी उत्पत्तिका निश्चय कर समस्त हरिवंशी हर्षसे फूल ले न समाते थे । कार्तिक शुक्ला षष्ठी के दिन उत्तराषाढ नक्षत्र में पिछले पहर रानी शिवा देवी ने सोलह स्वप्न देखे । उसी समय उक्त अहमिन्द्र ने जयन्त विमान से च्युत होकर उसके गर्भ में प्रवेश किया । सबेरा होते ही रानीने पतिदेव से स्वप्नों का फल पूछा तब उन्होंने कहा कि आज तुम्हारे गर्भ में किसी तीर्थकर के जीवने प्रवेश किया है । नौ माह बाद तुम्हारे गर्भ से एक महा यशस्वी तीर्थकर बालक पैदा होगा । ये सोलह स्वप्न उसीकी विभूति बतला रहे हैं । राजा समुद्र विजय रानी के लिये स्वप्नोंका फल बतलाकर निवृत्त हुए ही थे । कि इतनेमें वहांपर जय जयकार करते हुए समस्त देव आ पहुंचे । देवोंने गर्भकल्याणक का उत्सव किया तथा उत्तमोत्तम वस्त्राभूषणों से दम्पतिका खूब सत्कार किया । तदनन्तर नौ माह बाद शिवा देवीने श्रवण शुक्ला षष्ठी के दिन चित्र नक्षत्र में पुत्र-रत्न उत्पन्न किया । उसी समय सौधर्म आदि इन्द्र तथा समस्त देवोंने मेरु पर्वतपर ले जाकर बालक का जन्माभिषेक किया, इन्द्राणीने अंग पोंछकर बालोचित उत्तम उत्तम आभूषण पहिनाये । इन्द्रने मधुर शब्दों में स्तुति की और स्वामी नेमिनाथ नाम रक्खा । अभिषेक की क्रिया समाप्त कर इन्द्र भगवान् नेमिनाथ को द्वारिकापुरी में घर घर अनेक स्थानोंपर चले गये । बालक नेमिनाथका राज परिवारमें उचित रूपसे लालन पालन होने लगा । वे अपनी मधुर चेष्टाओंसे सभीको हर्षित किया करते थे । द्वितीया के चन्द्रमा की तरह वे दिन प्रतिदिन बढ़ने लगे । भगवान् नेमिनाथ के मोक्ष जानेके बाद पांच लाख वर्ष बीत जानेपर स्वामी नेमिनाथ हुए थे । उनकी आयु भी इसमें शामिल है । उनकी आयुका प्रमाण एक हजार वर्षका था । शरीरकी ऊंचाई दश धनुष और वर्ण मयूरकी ग्रीवा के समान नीला था । यद्यपि उस समय द्वारावती-द्वारिका के राजा समुद्र विजय थे पर उनके नेमिनाथ के पहले कोई सन्तान नहीं हुई थी और अवस्था प्रायः ढल चुकी थी

इसलिये उन्होंने राज्य का बहुत सा भार अपने छोटे भाई वसुदेव के लघु पुत्रा श्रीकृष्ण के लिये सौंप दिया था । कृष्ण बहुत ही होनहार पुरुष थे इसलिये उनपर समस्त यादवों की नजर लगी हुई थी। सब कोई उन्हें प्यार और श्रद्धाकी दृष्टी से देखते थे । भगवान् नेमिनाथ भी अपने चचेरे बड़े भाई श्रीकृष्ण के साथ कम प्रेम नहीं करते थे ।

एक दिन मगध देश के कई वैश्य पुत्रा समुद्र रास्ता भूलकर द्वारिकापुरी में आ पहुंचे । वहांकी विभूति देखकर उन्हें बहुत ही आश्चर्य हुआ । जब वे लोग अपने अपने घर जाने लगे तब साथमें वहां के कुछ बहुमूल्य रत्न लेते गये । वैश्य पुत्रों ने राजनगरमें पहुंचकर वहांके महाराज जरासंधके दर्शन किये ओर वे रत्न भेट किये । जरासंध ने रत्न देखकर उन वैश्य पुत्रोंस पूछा कि आप लोग ये रत्न कहां से लाए हैं । तब उन्होंने कहा कि महाराज ! हम लोग समुद्र में रास्ता भूल गये थे इसलिये घूमते-घूमते एक नगरी में पहुंचे । पूछनेपर लोगोंने उसका नाम द्वारिका बतलाया था । वह पुरी शोभा से स्वर्गपुरी को जीतती है इस समय उसमें महाराज समुद्रविजय राज्य करते हैं । वसुदेवके पुत्रा श्रीकृष्णकी तो बात ही न पूछिये । उसका निर्मल यश सागर की तरल तरंगों के साथ अठ-खेलियां करता है । उसकी वीर चोष्टायें समस्त नगरी में प्रसिद्ध हैं । वे एक दुसरे के बिना क्षण भर भी नहीं रहते हैं । हम उसी नगरी से रत्न लाये हैं । वैश्य पुत्रों के बचन सुनकर राजा जरासंध के क्रोध का ठिकाना न रहा । अभी तक तो वह समस्त यादव विन्ध्यावटी में जल कर मर गए हैं, ऐसा निश्चय कर निश्चिन्त था पर आज वैश्य पुत्रों के मुंह से उनके सद्भाव और वैभव की वार्ता सुनकर प्रतिस्पर्धा से उसके ओंठ कांपने लगे । आंखे लाल हो गईं और भौंहे टेढ़ी हो गईं । उसने वैश्य पुत्रों को बिदा कर सेनापती के लिए उसी समय एक विशाल सेना तैयार करने की आज्ञा दी और कुछ समय बाद सज-धज कर द्वारिका की ओर रवाना हो गया। इधर जब कौतूहली नारदजीने यादवों के लिये जरासंध के आने का समाचार सुनाया तब श्रीकृष्ण श्री शत्रु को मारने के लिये तैयार हो गये । उन्होंने समुद्रविजय आदिकी अनुमतिसे एक विशाल सेना तैयार करवाई जो शत्रु को बीचमें ही रोकनेके लिये तैयार हो गईं । जाते समय श्रीकृष्णचन्द्र भगवान् नेमिनाथ के पास जाकर बोले कि, जब तक मैं शत्रुओं को मारकर वापिस न आ जाऊं तबतक आप राज्य कार्यों की देखभाल करना । बड़े भाई कृष्णचन्द्र के बचन नेमिनाथने सहर्ष स्वीकार कर लिये । वापिस जाते समय कृष्णचन्द्र ने उनसे पूछा भगवन ! इस युद्ध यात्रा में मेरी विजय होगी या नहीं । तब

उन्होंने अवधिज्ञान से सोचकर हंस दिया । कृष्णचन्द्रभी अपनी सफलता का निश्चय कर हंसी खुशीसे युद्ध के लिये आगे बढ़े । युद्ध का समाचार पाते ही हस्तिनापुरसे राजा पाण्डु के पुत्र युधिष्ठिर वगैरह भी रणक्षेत्र में शामिल हो गये । कुरु क्षेत्र के मैदान में दोनों ओरकी सेनाओं में घमासान युद्ध हुआ । अनेक सैनिक तथा हाथी घोड़े वगैरह मारे गये ।

जब लगातार कई दिनों के युद्ध से किसी पक्ष की निश्चित विजय नहीं हुई तब एक दिन कृष्णचन्द्र और जरासंध इन दोनों विरो में लड़ाई हुई । जरासंध जिस शस्त्र का प्रयोग करता था कृष्णचन्द्र उसे बिचमें ही काट देते थे । अन्तमें जरासंधने क्रुद्ध हो घुमाकर चक्र चलाया । पर वह प्रदक्षिणा देकर कृष्ण के हाथ में आ गया । फिर कृष्णने उसी चक्र से जरासंध का संहार किया । ठीक कहा है कि धभाग्य फलति सर्वत्रड सब जगह भाग्यही फलता है । विजयी श्रीकृष्णचन्द्र ने चक्रवर्त्तन को आगे कर बड़े भाई बलभद्र और असंख्य सेना के साथ भरतक्षेत्र के तीन खण्डोंको जीतकर द्वारिका नगरी में प्रवेश किया । उस समय उनके स्वागत के लिये फैल गया था । सभी राजा उनका लोहा मानने लगे थे । समुद्रविजय आदिने प्रतापी कृष्णचन्द्र का राज्याभिषेक कर उन्हें पूर्ण रूप से राजा बना दिया । कृष्णचन्द्र भी अपनी चतुराई और नैतिक बलसे प्रजा का पालन करते थे । बलभद्र भी हमेशा इनका साथ देते थे । श्रीकृष्ण के सत्यभामा आदि को लेकर सोलह हजार सुन्दर स्त्रियां थी और बलराम आठ हजार स्त्रियों के अधिपति थे । श्रीकृष्ण नारायण और बलराम बलभद्र कहलाते थे । एक दिन राजसभा में श्रीकृष्ण, बलभद्र और भगवान् नेमिनाथ वगैरह बैठे हुये थे । उसी समय किसी ने पूछा कि इस समय भारतवर्ष में सबसे अधिक बलवान् कौन है ? प्रश्न सुनकर कुछ सभासदोने श्रीकृष्ण के लिये ही सबसे बलवान् बतलाया । कृष्णचन्द्र भी अपनी बलवत्ता की प्रशंसा सुनकर बहुत प्रसन्न हुये पर बलभद्र-बलराम ने कहा कि इस समय भगवान् नेमिनाथ से बढ़कर कोई अधिक बलवान् नहीं है, उनके शरीर में बचपनसे ही अतुल्य बल है । आप लोग जो वत्स कृष्णचन्द्र के लिये ही सबसे अधिक बलवान् समझ रहे हो यह आप का केवल भ्रम है । क्योंकि, श्रीकृष्ण और आप सब मैं जो बल है उससे कई गुना अधिक बल इन में विद्यमान है बलराम के वचन सुनकर श्रीकृष्ण के पक्षपातियों को बड़ा बुरा मालूम हुआ । श्रीकृष्ण भी अबतक पृथिवीपर अपने से बढ़कर किसी दूसरे को बलवान् नहीं समझते थे । इसलिये उन्होंने भी बलरामजी के बचनों में सम्मत नहीं थे । तथापि बलराम वगैरह के आग्रह से उन्हें इस कार्य में शामिल होना पडा ।



उन्होंने हंसते हुये कहा-यदि कृष्ण मेरे से बलवान है तो सिंहासन परसे हमारे इस पांव को चल विचल कर दें-ऐसा कहकर उन्होंने सिंहासनपर पैर जमा कर रख दिया। श्रीकृष्णने उसो चल विचल करनेकी भारी कोशिश की पर वे सफलता प्राप्त न कर सके इससे उन्हें बहुत ही शर्मिन्दा होना पडा। भगवान् नेमिनाथ का अतुल्य बल देखकर उन्हें शंका हुई कि ये हमसे बलवान् है इसलिये कभी प्रतिकूल होकर हमारे राज्यपर आघात न कर दें । श्रीकृष्ण अपने इस सशंक हृदय को गुप्त ही रखे रहे ।

किसी एक समय शरद ऋतु में कृष्ण महाराज अपने समस्त अन्तःपुर के साथ बन में जल क्रिडा करने के लिये गये थे। भगवान् नेमिनाथ भी उनके साथ थे। कृष्णकी सत्यभामा आदि स्त्रियोंने सरोवर में देखकर नेमिनाथ के ऊपर जल उछालते हुये अनेक श्रुडारमय बचन कहे। नेमिनाथने भी चतुराई पूर्वक उनके व्युद्ध भरे वचनों का यथोचित उत्तर दिया । जल-क्रिडा कर चुकेने के बाद भगवान् नेमिनाथ ने सत्यभामा से कहा- तुम मेरी इस गीली धोती को धो डालो तब सत्यभामा क्रोध से भौह टेढी करती हुई बोली कि आप श्रीकृष्ण नहीं है जिन्होंने नाग शय्यापर चढकर लीला मात्र में शारंग नामका धनुष्य चढाया और दिशाओं को गुंजा देनेवाला पांचजन्य शङ्ख बनाया था। यदि धोती धुलाने की शौक हो तो किसी राजकु मारी को क्यों नहीं फंसा लेते ! सत्यभामा के ताना भरे बचन सुनकर नेमिनाथको कुछ क्रोध हो आया। जिससे वे वहां से लौटकर आयुधशाला में गये और सबसे पहले नाग शय्यापर चढाकर शारंग धनुष की प्रत्यंचा चढाई फिर दिशाओं को गुंजा देने वाला शंख बजाया । श्रीकृष्ण कुछ राज्य सम्बन्धी कार्योंके कारण इन सबसे पहले ही नगरीमें लौट आये थे। जिस समय नेमिनाथने धनुष चढाकर शंख बजाया था उस समय वे कुसुमचित्र नाम के सभा में बैठे हुये कुछ आवश्यक कार्य देख रहे थे। ज्योंही वहां उनके कानमें शंखकी विशाल आवाज पहुंची त्योंही वे चकित होते हुये आयुधशालाक े दौडे गये। वहां उन्होंने भगवान् नेमिनाथ को क्रोध युक्त देखकर मीठे शब्दोंमे शांत किया और पासमें किसी पुरुषके उनके क्रोध का कारण पूछा। उसने सत्यभामा आदि के साथ जल-क्रिडा संबंधी सब समाचार कह सुनाये य और बादमें सत्यभामा के मर्मभेदी बचन भी कह दिये । सुनकर श्रीकृष्ण कुछ मुस्कु राये।उन्होंने सत्यभामा के अभिमानपर बहुत कुछ रोष प्रकट किया ओर अपने गुरुजन समुद्रविजय, वासुदेव आदि के सामने नेमिनाथ के विवाह का प्रस्ताव रक्खां जब समुद्रविजय आदिने हर्ष सहित अपनी अपनी सम्मति दे

दी तब श्रीकृष्णने जुनागढ जाकर वहांके उग्रवंशी राज उग्रसेनसे उनकी जयावती रानी से उत्न्न हुई कन्या राजामातीकी कु मार नेमिनाथ के लिये मंगनी की । राजा उग्रसेन ने कृष्णचन्द्र के बचन सहर्ष स्वीकार कर लिये जिससे दोनों ओर विवाह की तैयारियां होने लगी ।

इन्ही दिनों में श्रीकृष्ण के हृदय में पुनः शंका पैदा हुई कि ये नेमिनाथ बहुत ही बलवान है । उस दिन इनसे मुझे हार माननी पडी थी और अभी-अभी जिसपर मेरे सिवाय कोई चढने का सहास नहीं कर सकता उस नाग शय्यापर चढ और धनुष चढाकर तो गजब ही कर दिया । अब इसमें सन्देह नहीं कि ये कुछ दिनों के बाद मेरे राज्यपर अवश्य ही आघात पहुंचावेंगे । इस तरह लोभ-पिशाच के फन्देमें पडकर श्रीकृष्णके हृदय में उथल-पुथल मच गई । उन्होंने सोचा कि नेमिनाथ स्वभाव ही से विरक्त पुरुष है - विषय वासनाओं से इनका मन हमेशा ही दुर रहता है । न जाने क्यों इन्होंने विवाह करना स्वीकार कर लिया ? अब भी ये वैराग्यका थोडा-सा कारण पाकर विरक्त हो जावेंगे । इसलिये कोई ऐसा उपाय करना चाहिये जिससे ये गृह त्यागकर दिगम्बर यति बन जावें । यह सोचकर कृष्णने एक षडयंत्र रचा वह यह है जुनागढ के रास्तों में जहां से बरात जानेकी थी एक बाड लगवा दी और उस में अनेक शिकारियों से छोटे-बड़े पशु-पक्षी पकडवाकर बन्द करवा दिये तथा वहां रक्षक मनुष्योंसे कह दिया कि जब तुमसे नेमिनाथ इन पशुओंके बन्द करवा दिये तथा वहां रक्षक मनुष्योंसे कह दिया कि जब तुमसे नेमिनाथ इन पशुओंके बन्द करनेका कारण पूछे तब कह देना कि यह जीव आपके विवाहमें क्षत्रिय राजाओं को मांस खिलानेके लिये बन्द किये गये है । कृष्णजी ने अपना यह षडयंत्र बहुत ही गुप्त रक्खा था ।

जब श्रावण शुक्ला षष्ठी का दिन आया तब समस्त यादव और उनके सम्बन्धी इकट्ठे होकर जुनागढके लिये रवाना हुए। सबसे आगे भगवान् नेमिनाथ अनेक रत्नमय आभूषण पहिने हुए रथ पर सवार हो चल रहे थे। जब उनका रथ उन पशुओंके घेरे के पास पहुंचा और उनकी करुण ध्वनी नेमिनाथ के कानों में पडी तब उन्होंने पशुओंके रक्षकों से पुछा कि ये पशु किस लिये इकट्ठे किये गये है ? तब पशु रक्षक बोले कि आपके विवाह में मारने के लिये-क्षत्रिय राजाओंको मांस खिलाने के लिये महाराज कृष्ण ने इकट्ठे करवाये है। रक्षकोंके बचन सुनकर नेमिनाथ ने अचम्भे में आकर कहा कि-श्रीकृष्णने ! और मेरे विवाहमें मारने के लिये? तब रक्षकोंने ऊं चो स्वरसे कहा- ए हां महाराजड !

यह सुनकर वे अपने मन में सोचने लगे कि जो निरीह पशु जंगलों में रहकर तृणके सिवाय कुछ नहीं खाते, किसी का कुछ भी अपराध नहीं करते-हाय ! स्वार्थी मनुष्य उन्हें भी नहीं छोंडते । नेमिनाथ अवधिज्ञान के द्वारा कृष्ण का कपट जान गये और वहीं उनका लक्ष्येर कहने लगे- हा कृष्ण ! इतना अविश्वास ? मैंने कभी तुम्हें अनादर और अविश्वास की दृष्टी से नहीं देखा।जिस राज्यपर कुलक्रम से मेरा अधिकार था मैंने उसे सहर्ष आपके हाथों में सौंप दिया। फिर भी आप को सन्तोष नहीं हुआ । हमेशा आप के हृदय में यही शंका बनी रही थी कही नेमिनाथ पैतृक राज्यपर अपना कब्जा न कर लें छिः!

यह तो हद हो गई अविश्वास की ! इस जीर्ण तृण के समान तुच्छ राज्यके लिये इन पशुओंको दुःख देने की क्या आवश्यकता थी ? लो, मैं हमेशाके लिये आपका रास्ता निष्कण्टक किये देता हूँ उसी समय उन्होंने विषयोंकी भंगुरता का विचारकर दीक्षा लेने का दृढ निश्चय कर लिया । लौकान्तिक देवोंने आकर उनकी स्तुति की और दीक्षा लेने का दृढ निश्चय कर लिया। लौकान्तिक देवोंने आकर उनकी स्तुति कि और दीक्षा लेने के विचारों का समर्थन किया। बस, क्या था ? बरात बीच में ही भंग हो गई।समुद्र विजय, वसुदेव, बलराम,कृष्णचन्द्र आदि कोई भी उन्हें अपने सुदृढ निश्चय से विचलित नहीं कर सके । वहीं पर देवोंने आकर उनका दीक्षाभिषेक किया । और एक महा मनोहर देवकु रु नामकी पालकी बनाई । भगवान् नेमिनाथ पालकी पर सवार होकर रेवतक गिरनार पर्वतपर पहुंचे और वहां पर सहस्रत्राम बलमें हजार राजाओं के साथ उसी दिन-श्रावण शुक्ला षष्ठीके दिन चैत्र नक्षत्र में शाम के समय दीक्षित हो गये । उन्हें दीक्षा लेते ही मनःपर्यय ज्ञान को प्रकट हो गया था। दीक्षा लेते समय भगवान् नेमिनाथ की आयु तीन सौ वर्षकी थी ।

इधर जब राजा उग्रसेन के घर नेमिनाथ की दीक्षा के समाचार पहुंचे तब वे बहुत ही दुःखी हुए । उस समय कुमारी राजमती की जो अवस्था हुई थी उसका इस तुच्छ लेखनी के द्वारा वर्णन नहीं किया जा सकता। माता पिताके बहुत समझाने पर भी उसने फिर किसी दूसरे वरसे शादी नहीं की । वह शोक से व्याकुल होकर गिरिनार पर मुनिराज नेमिनाथ के पास पहुंची और अनेक रस भरे वचनों से उनका चित्त विचलित करने का उद्यम करने लगी। परन्तु जैसे प्रलयकी पवन से मेरु पर्वत विचलित नहीं होता वैसे ही राजमतीके वचनोंसे नेमिनाथ का मन विचलित नहीं हुआ। अन्त में वह उनके वैराग्यमय उपदेश से आर्थिका से आर्थिका हो गई और कठिन तपस्याओं से शरीर को सुखाने लगी ।

भगवान नेमिनाथ ने दिक्षा लेनेके तीन दिन बाद आहार लेने के लिये द्वारी का नगरी में प्रवेश किया । यहां उन्हें वरदत्त महीपतीने भक्तिपूर्वक आहार दिया । पात्रदानसे प्रभावित होकर देवों ने वरदत्तके घर पर पंचाशचर्य प्रकट किये । इस तरह तपश्चरण करते हुए जब छद्मस्थ अवस्थाके छप्पन दिन निकल गये तब उसी रेवतक (गिरिनार) पर्वतपर वंश वृक्ष के नीचे तीन दिन के उपवास की प्रतिज्ञा लेकर विराजमान हुए । वहीं पर उन्हें आसोज शुक्ल पडिवाके दिन सबेरे के समय चित्र नक्षत्रमें केवलज्ञान की प्राप्ति हुई । उसी समय इन्द्रादि देवोंने आकर उनके ज्ञान कल्याणक का उत्सव किया । धनपति कुबेरने इन्द्रकी आज्ञा से समवसरण की रचना की । उसके मध्य में स्थिर होकर उन्होंने उपना छप्पन दिनका मौन भंग किया । दिव्य ध्वनीके द्वारा षट्द्रव्य नवपदार्थ आदिका विशद विवेचन किया । भगवान् को केवलज्ञान प्राप्त हुआ है यह सुनकर कृष्ण, बलभद्र आदि समस्त यादव अपने अपने परिवार के साथ बन्दना के लिये समवसरण में गये । वहां से सब भगवान को भक्तिपूर्वक नमस्कार कर मनुष्यों के कोठेमें बैठे गये । धार्मिक उपदेश सुनने के बाद श्रीकृष्ण तथा उनकी पटरानियोंने अपने अपने पूर्वभवों का वर्णन सुना ।

भगवान नेमिनाथ की सभा में वरदत्त आदि ग्यारह गणधर थे, चार सौ श्रुतकेवली थे, ग्यारह हजार आठ सौ शिक्षक थे, पन्द्रह सौ अवधिज्ञानी थे, नौ सौ मनःपर्यय ज्ञानी थे । इस तरह सब मिलाकर अठारह हजार मुनिराज थे । पक्षी राजमती आदि चालीस हजार आर्थिकायें थी । एक लाख श्रावक थे । तीन लाख श्राविकायें थी । यक्षी । असंख्यात देव देवियाँ और संख्यात तिर्यच थे । इन सबके हाथ उन्होंने अनेक आर्य देशोंमें विहार किया और धर्माभूत की वर्षा की । भगवान् नेमिनाथ ने छह सौ निन्यानवे वर्ष नौ महीना और चार दिन तक बिहार किया । फिर बिहार छोडकर आयुके अन्त में पांच सौ तेतीस मुनियों के साथ योग निरोधकर उस गिरिनार पर विराजमान हो गये और वही पर शुक्ल ध्यान के द्वारा अघतिया कर्मों का नाशकर आषाढ शुक्ल सप्तमीके दिन नक्षत्रमें रात्रिके प्रारम्भ काल में मुक्त हो गये । देवोंने आकर निर्वाण कल्याणक का उत्सव किया और सिद्धक्षेत्र की पूजा की ।

भगवान पार्श्वनाथ

छप्पय

जन्म जलाधि जयलान, जान जनहंस मानसर ।

सर्व इन्द्र मिल आन, आन जिस धरें सीसपर ।।

पर उपकारी बान, बान उत्थप्य कु नय गण ।

गण सरोज बन भान, भान मम मोह तिमिर धन ।।  
घन वर्ण देह दुख दाह धर, हर्षत हेत मयूर मन ।  
मन मत मतंग हरिपास जिन, जिन विसरहु छिन जगत जन ।।

- भूधरदास

(१) पूर्वभाव परिचय

जम्बू द्वीप के भरतक्षेत्र में एक सुरम्य नामका रमणीय देश है। और उसमें पोदनपुर नगर है। उस नगर में किसी समय अरविन्द नाम का राजा राज्य करता था। अरविन्द बहुत ही गुणवान्, न्यायवान् और प्रजावत्सल्य राजा था। उसी नगर में वेद शास्त्रों का जानने वाला विश्वभूति नामका ब्राम्हण रहता था। वह अपनी अनुन्धरी नाम की ब्राम्हणी से बहुत प्यार करता था। उन दोनों के कमठ और मरुभूति नामके दो पुत्र थे। दोनों में कमठ बड़ा था और मरुभूति छोटा। मरुभूति था तो छोटा पर वह अपने गुणों से सबको प्यारा लगता था। कमठ विशेष विद्वान न होनेके साथ साथ सदाचारी भी नहीं था। वह अपने दुर्व्यवहारसे घरके लोगोंको बहुत तंग किया करता था। यदि आचार्य गुणभद्र के शब्दों में कहा जाव तो कमठ का निर्माण विषसे भरा हुआ था और मरुभूति की रचना अमृत से। कमठ स्त्री का नाम वरुणा था और मरुभूति की स्त्री का नाम बसुन्धरी। कमठ और मरुभूति दोनों राजा अरविन्द के मन्त्री थे इसलिए इन्हें किसी प्रकारका आर्थिक संकट नहीं उठाना पड़ता था। औश्र नगरमें इनकी धाक भी खूब जमी हुई थी। समय बीतने पर ब्राह्मण और ब्राह्मणीकी मृत्यु हो गई। जिससे उसकी बंधी हुई गृहस्थी एक चालसे छिन्न-भिन्न हो गई।

किसी एक दिन राजा अरविन्द ने ब्राह्मणपुत्र मरुभूतिको कार्यवश बाहिर भेजा। घरपर मरुभूति की स्त्री थी। वह बहुत ही सुन्दरी थी। मौका पाकर कमठने उसे अपने षडयन्त्र में फंसाकर उसके साथ दुर्व्यवहार करना चाहा। जब राजा को इस बात का पता चला तब उसने मरुभूति के आने के पहले ही कमठ को देश से बाहिर निकाल दिया कमठ जन्मभूमि को छोड़कर यहां वहां घूमता हुआ एक पर्वत के किनारेपर पहुंचा। वहां पर एक साधु पंचाग्नि तप तप रहा था। कमठ भी उसी का शिष्य बन गया और वहीं कहींपर वजनदार शिला को लिये हुए दोनों हाथों को ऊपर उठाकर खडा खडा कठिन तपस्या करने लगा।

इधर जब मरुभूति राजकार्य कर के अपने घर वापिस आया और कमठके देश निकालने के समाचार सुने तब उसका हृदय टंकू टंकू हो गया। मरुभूति सरल

परिणामी और स्नेही पुरुष था । उसने कमठ के अपराध पर कुछ भी विचार नहीं कर उसे वापिस लाने के लिये राजासे प्रार्थना की। राजा अरविन्द ने उसे कमठ को बुलाने की आज्ञा दे दी। मरुभूति राजा की आज्ञा पाकर हर्षित होता हुआ ठीक उस स्थानपर पहुँच गया जहाँपर उसका बड़ा भाई तपस्या कर रहा था। मरुभूति क्षमा मांगने के लिये उसके चरणों में पड़कर कहने लगा कि-पूज्य ! आप मेरा अपराध क्षमाकर फिरसे घरपर चलिये। आप के बिना मुझे वहाँ अच्छा नहीं लगता। क्षमा के वचन सुनते ही कमठका क्रोध और भी अधिक बढ़ गया । उसकी आंखे लाल-लाल हो गई । ओंठ कांपने लगे तथा कुछ देर बाद दुष्ट -दृष्ट कहते हुए उसने हाथों की वजनदार शिला मरुभूति के मस्तकपर पटक दी । शिला के गिरते ही मरुभूति के घ्राण पखेरु उड़ गये । कमठ भाई को मरा हुआ देखकर अर्हदास करता हुआ किसी दूसरी ओर चला गया ।

मरते समय मरुभूति के मन में दुर्ध्यान हो गयाथा। इसलिये वह मलय पर्वतपर कुब्जक नामक सल्लकी वनमें वज्रघोष नामका हाथी हुआ। कमठ की स्त्री वरुणा मरकर उसी वनमें हस्तिनी हुई जो कि वज्रघोष के साथ तरह-तरह की क्रिडा करती थी। जब राजा अरविन्द को मरुभूति की मृत्यु के समाचार मिले वब वह बहुत दुःखी हुआ । वह सोचने लगा-कि जैसे चन्द्रमा राहु का कुछ भी अनिष्ट नहीं करता फिर भी उसे ग्रस लेता है वैसे ही दुष्ट मनुष्य अनिष्ट नहीं करनेवाने सज्जनों पर भी अपनी दुष्टता नहीं छोडते । यह संसार प्रायः इन्ही कमठ जैसे खल मनुष्योंसे भरा हुआ है । पर मरुभूति ! तू मैं तुम्हे जानता था, खूब जानता था कि तुम्हारा हृदय स्फटिक की तरह निर्मल था तुम्हारे हृदय में हमेशा प्रीति रुपी मन्दाकिनी का पावन प्रवाह बहा करता था । हमारे मना करनेपर भी तुम भाई के स्नेह को नहीं तोड सके इसलिये अन्त में मृत्यु को प्राप्त हुए। अहा ! मरुभूति ! ..... इत्यादि विचार करते हुए उसका मन संसार से विरक्त हो गया जिससे किन्ही तपस्वी के पास उसने जिन दीक्षा धारण कर ली। दीक्षा के कुछ समय बाद अरविन्द मुनिराज अनेक मुनियों के पास उसने जिन दीक्षा धारण कर ली। दीक्षा के कुछ समय बाद अरविन्द मुनिराज अनेक मुनियों के साथ सम्मोद शिखर की यात्रा के लिये गये। चलते चलते वे उसी सल्ल की वन में पहुँचे जहाँ मरुभूतिका जीव वज्रघोष हाथी हुआ था। सामायिक का समय देखा कर अरविन्द महाराज वहीं किसी एक शिलापर प्रतिमा योग धारणकर हो गये। जब वज्रघोष की दृष्टि मुनिराजपर पडी तब वह उन्हें मारने के लिये वेगसे दौडा । पर ज्योंही उसने अरविन्द, मुनिराज के वक्षस्थलपर श्रीवत्सका चिह्न देखा

त्यों ही उसे अपने पूर्वभव स्मरण हो आया। उसने उन्हें देखकर पहिचान लिया कि ये हमारे अरविन्द महाराज हैं। वज्रघोष एक विनीत शिष्य की तरह शांत होकर उन्हींके पास बैठे गया। उन्मत्त हाथी मुनिराज के पास आकर एकदम उपशान्त हो गया-यह देखकर सभी को आश्चर्य हुआ। सामायिक पूर्ण होनेपर अरविन्द मुनिराज ने अवधिज्ञान से उसे मरुभूति का जीव समझाकर खूब समझाया जिससे उसने सब बैर भाव छोड़कर सम्यगदर्शनके साथ-साथ पांच अणुब्रत धारण कर लिये। अरविन्द महाराज अपने संघ के साथ आगे चले गये।

एक दिन वज्रघोष पानी पीने के लिये किसी भदभदा के पास जा रहा था। पर दुर्भाग्य से वह उसीके किनारेपर बड़ी भारी कीचडमें फंस गया। उनसे उससे निकलने के लिये बहुत कुछ प्रयत्न किये पर वह निकल नहीं सका। तापसी कमठ मरकर उसी भदभदा के किनारे कुक्कुट जाति का सांप हुआ था उसने पूर्वभव के बैर से उस प्यारे हाथी को डस लिया वह मरकर अणुब्रतोंके प्रभाव से बारहवे सहस्त्रार स्वर्ग में सोलह सागर की आयु वाला देव हुआं कमठ के जीव कुक्कुट सर्प को भी उसी समय एक वानरी ने मार डाला जिससे वह मरकर धूमप्रभ नाम के पांचवे महा भयंकर नारकी हुआ। वज्रघोषका जीव स्वर्गकी सोलह सागर प्रमाण आयु समाप्तकर जम्बू द्विप के पूर्व विदेह क्षेत्र में पुष्कलावती देश के विजयाधा पर्वतवर त्रिलोकोत्तम नगर में वहां के राजा विद्युद गति और रानी विद्युन्माला के अग्निदेव नामका पुत्र हुआ। अग्निवेग ने पूर्ण यौवन प्राप्त कर किन्ही समाधिगुप्त नामक मुनिराज के पास जिनदीक्षा धारण कर ली और सर्वतोभद्र आदिक उपवास किये।

मुनिराज अग्निवेग किसी एक दिन हरि नामक पर्वतकी गुफामें ध्यान लगाये हुए विराजमान थे। इतनेमें कमठ (कुक्कुट सर्पके जीवने) जो धूमप्रभ नरक से निकलकर उसी गुफा में बड़ा भारी अजगर हुआ था। मुनिराज को देखकर क्रोधसे उन्हे निगल लिया। मुनिराजसे सन्यास पूर्वक शरीर त्यागकर सोलहवे अच्युत स्वर्गके पुष्कर विमानमें देव पदवी पाई। वहां उसकी आयु बाईस सागर प्रमाण थी। कमठ का जीव अजगर भी मरकर छठवें नरक में नारकी हुआ। स्वर्ग की आयु री कर मरुभूति-वज्रघोष-अग्निदेव का जीव इसी जम्बूद्वीप को पश्चीम विदेह क्षेत्र में पद्यदेश के अश्वपुर नगरमें वहां के राजा वज्रवीर्य और रानी विजय के वज्रनाभि नामका पुत्र उत्पन्न हुआ। वज्रनाभि बड़ा प्रतापी पुरुष था। उसने अपने प्रताप से छह खण्डों की विजय की थी -वह चक्रवर्ती हो गया। इसलिये उसने क्षेमकर मुनिराज के पास जाकर समीचीन धर्म का स्वरूप सुना और उनके उपदेशसे प्रभावित होकर

पुत्र को राज्य दे दिया और स्वयं उनके चरणों में दिक्षा धारण कर ली । कमठ - अजगर का जीव नरक से निकलकर उसी वनमें एक कुरंग नाम का भील हुआ था । जो बडा ही क्रूर (हिंसक) था ।

एक दिन बज्रनाभि मुनिराज उसी वनमें आतापन योग लगाये हुए बैठे थे कि उस कुरंग भीलने पूर्वभव के संस्कारों से उनपर घोर उपसर्ग किये । मुनिराज समाधि पूर्वक शरीर त्यागकर सुभद्र नामक मध्यम ग्रैवेयक में अहमिन्द्र हुए । वहां उनकी आयु सत्ताईस सागर की थी । कुरंग भील भी मुनि हत्या के पाप से सातवे नरक में नारकी हुआ । मरुभूतिका जीव अहमिन्द्र, ग्रैवेयक की सत्ताईस सागर प्रमाण आयु पूरी कर इसी जम्बूद्वीप में कौशल देश की अयोध्या नगरीमें इक्ष्वाकु वंशीय राजा बज्रबाहु की प्रभारी पत्नी से आनन्द नाम का पुत्र हुआ । वह बहुत ही सुन्दर था । आनन्दो देखकर सभी को आनन्द होता था । बडा होने पर आनन्द महामण्डलेश्वर राजा हुआ । उसके पुरोहित का नाम स्वामिहित था ।

एक दिन पुरोहित स्वामिहित ने राजा के सामने अष्टाहिक ब्रतके माहत्म्य का वर्णन किया जिससे उसने फाल्गुन माह की अष्टान्हिकाओं में एक बडी भारी पूजा करवाई । उसे देखनेके लिये वहां पर एक विपुलमति नामके मुनिराज पधारे । राजाने विनयके साथ उनकी बन्दका की और ऊंचे आसन पर बैठाया । पूजा कार्य समाप्त होने पर राजाने मुनिराजसे पूछा कि-महाराज ! जिनेन्द्र देव की अचेतन प्रतिमा जब किसीका हित ओर अहित नहीं कर सकती तब उस की पूजा करनेसे क्या लाभ है ? राजा का प्रश्न सुनकर उन्होंने कहा-यह ठीक है कि जिनराज की जड प्रतिमा किसी को कुछ दे नहीं सकती । पर उसके सौम्य, शान्त आकार के देखने से हृदय में एक बार वीतरागता की लहर उत्पन्न हो उठती है, आत्माके सच्चे स्वरूप का पता चल जाता है और कषाय रिपुओंकी धींगाधांगी एक दम बन्द हो जाती है । उससे बुरे कर्मों की निर्जरा होकर शुभ कर्मोंका बन्ध होता है जिनके उदयकालमें प्राणियों को सुख की सामग्री मिलती है । इसलिए प्रथम अवस्था में जिनेन्द्र की प्रतिमाओं की अर्चा करनी बुरी नहीं है । इतना कहकर उन्होंने राजा आनन्द के सामने अकृत्रिम चैत्यालयों का वर्णन करते हुए आदित्य-सूर्य विमानमें स्थित अकृत्रिम जिन बिम्बोंका वर्णन किया । जिसे सुनकर समस्त जनता अत्यन्त हर्षित हुई । आनन्द ने हाथ जोडकर सूर्य विमान की प्रतिमाओंको लक्ष्यकर नमस्कार किया और अपने मन्दिर में अनेक चमकीले रत्नों का विमान बनवाकर उसमें रत्नमयी प्रतिमाएं विराजमान की । जिन्हें वह सूर्य विमान की प्रतिमाओं की कल्पनाकर प्रतिदिन



भक्ति से नमस्कार करता था। उस समय बहुत से लोगों ने राजा आनन्दका अनुकरण किया था। उसी समय ये भारतवर्ष में सूर्य नमस्कार की प्रथा चल पडी थी। राजा आनन्दने बहुत समय तक पृथिवी का पालन किया। एक दिन उसे अपने शिर में सफेद बाल के देखने से वैराग्य उत्पन्न हो आया जिससे वह अपना विशाल राज्य ज्येष्ठ पुत्र को सौंपकर किन्हीं समुद्रदत्त नामके मुनिराज के पास दीक्षित हो गये। उन्हींके पास रहकर उसने सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र्य और तप इन चार आराधनाओं की अराधना की। ग्यारह अंगों का ज्ञान प्राप्त किया और विशुद्ध हृदयसे दर्शन विशुद्ध आदि सोलह भावनाओं का चिन्तन कर तीर्थकर नामक पुण्य का बन्ध किया। एक दिन मुनिराज आनन्द प्रायोपगमन सन्यास लेकर निराकुल रूप से क्षीर नामके बन में बैठे हुए थे। कमठ का जीव भी नरक से निकलकर उसी बनमें सिंह हुआ था। ज्योंही उसकी दृष्टि मुनिराज पर पडी त्योंही उसे पूर्वभव के संसार से प्रचण्ड क्रोध आ गया।

उसने अपनी पैनी दांतोंसे आनन्द मुनिराज का गला पकड़ लिया। सिंह-कृत उपसर्ग सहनकर मुनिराज आनन्द स्वर्ग के प्राणत नामके विमान में इन्द्र हुए। वहां उनकी आयु बीस सागर की थी, साढ़े तीन हाथ का शरीर था। शुक्ल लेश्या थी, वह दश माह बाद श्वास लेता और बीस हजार वर्ष बाद मानसिक आहार ग्रहण करता था। उसे जन्मसे ही अवधिज्ञान प्राप्त था इसलिये वह पांचवें नरक तक की बातोंको स्पष्ट जान लेता था। अनेक देव देवियां उसकी सेवा करती थी। यही अहमिन्द्र आगे के भव से भगवान पार्श्वनाथ होगा। कहां? सो सुनिये :-

(२) वर्तमान परिचय

जम्बू द्वीप के भरतक्षेत्र में काशी नामका विशाल देश है। उसमें अपनी शोभा से अलकापुरीको जीतने वाली एक बनारस नामकी नगरी है। बनारस के समीप ही शान्त-सिमिति गती से गंगा नदी बहती है। वह अपनी धवल तरंगों से किनारेपर बने हुए मकानों को सींचता हुई बडी ही भली मालूम होती है। उसमें काश्यप गोत्रीय राजा विश्वसेन राज्य करते थे। उनकी पटरानीका नाम ब्रह्मा देवी था। दोनों राजदम्पति इन्द्र इन्द्राणी की तरह मनोहर सुख भोगते हुए आनन्दसे समय बिताते थे। ऊपर जिस इन्द्र इन्द्राणी की तरह मनोहर सुख भोगते हुए आनन्दसे समय बिताते थे। ऊपर जिस इन्द्र का कथन कर आये है वहांपर जब उसकी आयु केवल छह माह की बाकी रह गई तब से राजा विश्वसेन के घरपर देवोंने रत्नोंकी वर्षा करनी शुरू कर दी। और अनेक देवियां आकर महारानी ब्रह्मदेवी की सेवा

करने लगी जिससे उन्हें निश्चय हो गया कि यहां किसी महापुरुष तीर्थकरका जन्म होने वाला है ।

बैशाख कृष्ण द्वितीया के दिन विशाखा नक्षत्र में रात्रि के पिछले पहरमें रानीने सुर कुंजर आदि सोलह स्वप्न देखे और स्वप्न देखने के बाद ही मुहमें प्रवेश करते हुए एक मत्त हाथी को देखा । उसी समय मरुभूति के जीव इन्द्रने स्वर्ग वसुन्धरा से सम्बन्ध तोडकर उनके गर्भ में प्रवेश किया । सबेरा होते ही रानी ने नहा धोकर प्राणनाथ से स्वप्नों का फल पुछा तब उन्होंने ने हंसते हुए कहा कि आज तुम्हारे गर्भ में तेईसवें तीर्थकर ने अवतार लिया है । नौ माह बाद उनका जन्म होगा । यह रत्नों की वर्षा, देवकुमारियों की सेवा और स्वप्नों का देखना उन्हींका माहात्म्य प्रभाव प्रकट कर रहे है । पतिदेव के वचन सुनकर ब्रह्मादेवी को इतना अधिक हर्ष हुआ कि मारे आनन्द के उसके सारे शरीर में रोमांच निकल आये । उसी समय देवोंने आकर राजदम्पति का खूब सत्कार किया, स्तुति की और स्वर्गसे साथमें लाये हुए वस्त्र-आभूषण प्रदान किये ।

नौ माह उसने पौष कृष्ण एकादशी के दिन अनिल योगमें पुत्र-रत्न को उत्पन्न किया । पुत्रके उत्पन्न होते ही सब ओर आनन्द ही आनन्द छा गया । उसी समय सौधर्म इन्द्र आदि देवोंने मेरु पर्वत पर ले जाकर उनका जन्माभिषेक किया । और भगवान् पार्श्वनाथ नाम रक्खा । वहांसे वापिस आकर इन्द्रने उन्हें माता के लिये सौंप दिया और भक्ति से गद्गद् हो ताण्डव आदि का प्रदर्शन कर जन्म-कल्याणक का महोत्सव किया । उत्सव समाप्त होनेपर देव लोग अपने अपने स्थानोंपर चले गये ।

राज परिवार में बालक पार्श्वनाथ का योग्य रीति से लालन-पालन हुआ । भगवान् नेमिनाथ के मोक्ष जाने के बाद तिरासी हजार सात सौ पचास वर्ष बीत जानेपर पार्श्वनाथ स्वामी हुए थे । इनकी सौ वर्ष की आयु भी इसी में शामिल है । इनके शरीर की ऊंचाई नौ हाथ की थी और रंग हरा था । इनकी उत्पत्ति उग्रवंश में हुई थी । भगवान् पार्श्वनाथ ने धीरे धीरे बाल्य अवस्था व्यतीत कर कुमार अवस्था में प्रवेश किया और फिर कुमार अवस्था को पार कर यौवन अवस्था के पास पहुंचे ।

सोलह वर्ष के पार्श्वनाथ कसी एक दिन अपने इष्ट मित्रों के साथ वन में क्रिडा करने के लिये गये हुये थे । वहांसे लौटकर जब वे घर आ रहे थे तब उन्हें मार्गमें किनारेपर पंचाग्नि तपता हुआ एक पसाधु मिला । वह साधु ब्रह्मादेवी का पिता अर्थात् भगवान् पार्श्वनाथ का मातामह(नाना) था । अपनी स्त्री विरह से दुःखी होकर

वहां पंचाग्नि तपने लगा था । उसका नाम महीपाल था । कमठ का जीव सिंह आनन्द मुनिराज की हत्या करने से मरकर नरक में गया था । वहांसे निकलकर अनेक कु योनियों में घूमता हुआ वही यह महीपाल तापस हुआ था । भगवान् पार्श्वनाथ और उनका मित्रा सुभौम कु मार बिना नमस्कार किये ही उस तापसके सामने खड़े हो गये । तापस को इस आचरण से बहुत बुरा मालूम हुआ । वह सोचने लगा मुझे अच्छे अच्छे राजा महाराजा तो नमस्कार करते हैं पर ये आज कल के छोकरे कितने अभिमानी हैं । खैर ! .....यह सोचकर उसने बुझती हुई अग्नि को प्रदीप्त करने के लिये कु ल्हाडी से मोटी लकडी काटनी चाही । भगवान् पार्श्वनाथने अवधिज्ञानसे जानकर कहा कि बाबाजी ! आप इस लकडीको नही काटिये इसके भीतर दो प्राणी बैठे हुए हैं जो कु ल्हाडी के प्रहार से मर जावेंगे । इसी बीचमें इनके मित्रा सुभौम कु मार ने उसके बालतप-अज्ञानतप की खूब निन्दा की और पंचाग्नि तपने से हानियां बतलाई । सुभौम के बचन सुनकर तापसने झल्लाते हुये दोनोंके प्रति बहुत कुछ रोप प्रकट किया और कु ल्हाडी मारकर लकडी के दो टुकडे कर दिये । कु ल्हाडी के प्रहार से लकडी में रहने वाले सर्प और सर्पिणी के भी दो दो टुकडे हो गये । उनके भग्न टुकडे व्याधिसे तडफडा रहे थे । पार्श्वनाथ स्वामीने कुछ उपाय न देखकर उन सर्प सर्पिणी को शान्त होने का उपदेश दिया और पंच नमोकार मन्त्र सुनाया उनके उपदेश से शान्तचित्त होकर दोनोंने नमोकार मन्त्र का धन किया जिसके प्रभाव से वे दोनों महा विभूति के धारक धरणेन्द्र और पद्मावती हुए । बहुत समझानेपर भी जब उस महीपाल तापसने अपनी हठ नहीं छोडी तब वे मित्रोंके साथ अपने घर लौट आये । महीपाल तापस को भी अपने इस अनादरसे बहुत दुःख हुआ । जिससे आर्तध्यान से मरकर संवर नाम का ज्योतिषी देव हुआ ।

जब भगवान् पार्श्वनाथ की आयु तीस वर्ष की हो गई तब अयोध्या नगर के स्वामी राजा जयसेन ने उन्हें उत्तमोत्तम भेंट देनेके लिये किसी दूतको भेजा । कु मार पार्श्वनाथ ने बडी प्रसन्नता से उसक भेंट स्वीकार की और दूत का खूब सम्मान किया । मौका पाकर जब उन्होंने दूतसे अयोध्या का समाचार पूछा तब दूतने पहले यहांपर उत्पन्न हुये वृषभनाथ आदि तीर्थकरों का वर्णन किया । राजा रामचन्द्र, लक्ष्मण आदि की वीर चेष्टाओं का व्याख्यान किया और फिर शहर की शोभा का निरूपण किया । दूतसे मुखसे तीर्थकरों का हाल सुनकर उन्होंने सोचा कि मैं भी तीर्थकर कहलाता हूं । पर इस थोते पद से क्या ? मैंने सचमुच में एक सामान्य मनुष्य की तरह अपनी आयु के तीस वर्ष यूंही गमा दिये । इस प्रकार विचार करते

हुये उन्हें आत्म ज्ञान प्राप्त हो गया जिससे उन्होंने विषयवासनाओं से मोह छोड़कर दीक्षा लेने का पक्का निश्चय कर लिया। उन्हें दीक्षा लेने के लिये तत्पर देखकर राजा विश्वसेन आदिने बहुत कुछ समझाया पर उन्होंने किसी की एक न मानी। उसी समयव लौकान्तिक देवों ने आकर दीक्षा-कल्याणक का उत्सव मनाया। भगवान् पार्श्वनाथ अनेक राजकुमारियों के आज्ञा बन्धन तोड़कर देवनिर्मित विमला पालकी पर सवार होकर अश्वबन में पहुंचे और वहां तोला का नियम लेकर तीन सौ राजाओं के साथ पौष कृष्ण एकादशी के दिन सबेरे के समय दीक्षित हो गये। बढ़ती हुई विशुद्धि के कारण उन्हें दीक्षा लेते ही मनःपर्यय ज्ञान प्राप्त हो गया था। दीक्षा - कल्याणक का उत्सव समाप्त कर देव लोग अपने अपने स्थानों पर चले गये।

चौथे दिन भगवान् ने आहार लेने के लिये गुलम खेटपुर में प्रवेश किया। वहां उन्हें धन्य नामक राजाने विधीपूर्वक उत्तम आहार दिया। आहार से प्रभावित होकर देवों ने धन्य राजा के घरपर पंचाश्चर्य प्रकट किये। आहार से प्रभावित होकर देवों ने धन्य राजा के घरपर पंचाश्चर्य प्रकट किये। आहार लेकर भगवान् पुनः वनमें आकर विराजमान हो गये। इस तरह कभी प्रतिदिन कभी दो-चार, छह आदि दिनों के बाद आहार लेते और आत्मध्यान करते हुए उन्होंने छद्मस्थ अवस्था के चार माह व्यतीत किये। फिर वे उसी दीक्षा वनमें आम्रवृक्षके नीचे सात दिन के अनशन की प्रतिज्ञा लेकर ध्यानमें मग्न हो गये। जब वे ध्यान में मग्न होकर अचल की तरह निश्चल हो रहे थे उसी समय कमठ-महीपाल का जीव कालसंबर नामका ज्योतिषी देव आकाश मार्ग से बिहार करता हुआ वहांसे निकला। जब उसका विमान मुनिराज पार्श्वनाथ के ऊपर आया तब वह मन्त्र से कीलित हुए ती तरह अकस्मात् रुक गया। जब कालसंबर ने उनका कारण जानने के लिये यहां वहां नजर दौड़ाई तब उसे ध्यान करते हुए भगवान् पार्श्वनाथ दीख पड़े। उन्हें देखते ही उसे अपने बैरकी याद आ गई जिससे उसने क्रुद्ध होकर उनपर घोर उपसर्ग करना शुरू कर दिया। सबसे पहले उसने खूब जोरका शब्द किया और फिर लगातार सात दिनतक मूसलधार पानी बरषाया, ओले बरषाये और वज्र गिराया। पर भगवान् पार्श्वनाथ कालसंबर के उपसर्ग से रंचमात्र भी विचलित नहीं हुए। इनके द्वारा दिये गये नमस्कार मन्त्रके प्रभावसे जो सर्प, सर्पिणी, धरणेन्द्र और पद्मावती हुए थे, उन्होंने अवधिज्ञान से अपने उपकारी पार्श्वनाथ के ऊपर होनेवाले घोर उपसर्ग का हाल जान लिया। जिससे वे दोनों घटना स्थलपर पहुंचे और वहां भगवान् पार्श्वनाथ को उस प्रचण्ड घनघोर वर्षा के मध्य में मेरु की तरह अविचल

देखकर आश्चर्य से चकित हो गये । उन दोनों ने उन्हें अपने ऊपर उठा लिया और उनके शिरपर फणावली तान दी । जिससे उन्हें पानी का एक बूंद भी नहीं लग सकता था । उसी समय ध्यान के माहात्म्यस घातिया कर्मों का नाश कर उन्हें केवलज्ञान प्राप्त हो गया । भगवान के अनुपम धैर्य से हार मानकर संबरदेव बहुत ही लज्जित हुआ । उसी समय उसकी कषायों में कुछ शान्ती आ गई । जिससे वह पहले का समस्त बैरभाव भुलाकर क्षमा मांगने के लिये उनके चरणों में आ पड़ा । उन्होंने उसे भव्य उपदेश से सन्तुष्ट कर दिया । भगवान् पार्श्वनाथ को चैत्र कृष्ण चतुर्थी के दिन केवलज्ञान प्राप्त हुआ था । केवलज्ञान प्राप्त होते ही समस्त देवों ने आकर उनका ज्ञान-कल्याण क किया । कुबेरने समवशरण की रचना की । उसके मध्य में स्थित होकर उन्होंने चार माह बाद मौन भंग किया -दिव्य ध्वनि के द्वारा समस्त पदार्थों का व्याख्यान किया । उनके समय में जगह जगहपर वैदिक धर्मका प्रचार बढ़ा हुआ था, इसलिये उन्होंने प्रायः सभी आर्य क्षेत्रों में घूम-घूमकर उसका विरोध किया और जैन धर्म का प्रचार किया था ।

भगवान् पार्श्वनाथ के समवशरणमें स्वयम्भुवि आदि दश गणधर थे, तीन सौ पचास द्वादशांग के जानकर थे, दश हजार नौ सौ शिक्षक थे, चौदह सौ अवधिज्ञानी थे, सात सौ पचास मनःपर्यय ज्ञानी थे, एक हजार केवलज्ञानी थे, इतने ही विक्रिया ऋद्धि के धारक थे, और छह सौ वादी थे । इस तरह सब मिलाकर सोलह हजार मुनिराज थे । सुलोचना आदि को लेकर छत्तीस हजार आर्यिकाएं थी, एक लाख श्रावक थे तीन लाख श्राविकाएं, असंख्यात् देव देवियां और संख्यात् तिर्थच थे ।

इन सबके साथ उन्होंने उनहत्तर वर्ष सात माह तक विहार किया । उस समय इनकी बहुत ही ख्याति थी । हठवादी इनकी युक्तियों से बहुत डरते थे । जब इनकी आयु एक माह की बाकी रह गई तब वे छत्तीस मुनियों के साथ योग निरोध कर सम्मेद शैलपर विराजमान हो गये । और वहां से उन्होंने श्रावण शुक्ला सप्तमीक दिन विशाख नक्षत्रमें सबेरे के समय अघातिया कर्मों का नाशकर मोक्ष लाभ किया । देवों ने आकर भक्तिपूर्वक निर्वाण-कल्याणक का उत्सव किया । भगवान् पार्श्वनाथ के सर्प का चिन्ह था ।

भगवान महाविर

दिढ कर्माचल दलन पवि, भवि सरोज रविराय ।

कं चन छवि कर जोर कवि, नमत वीर जिनपाय ।। -भूधरदास

## (१) पूर्वभव वर्णन

सब द्वीपों में शिरमौर जम्बू द्वीप के विदेह क्षेत्र में सीता नदी के उत्तर तट पर एक पुष्कलावती देश है उस में अपनी स्वाभाविक शोभा से स्वर्गपुरी को जीतनेवाली पुण्डरीकिणी नगरी है । उसके मधु नामके वन में किसी समय पुरुरवा नामका भिलों का राजा रहता था। वह बडा ही दृष्ट था - भोले जीवों को मारते हुए उसे कभी दया नहीं आती थी । पुरुरवा की स्त्रीका नाम कालिका था। दोनों स्त्री-पुरुषों में काफी प्रेम था । किसी एक दिन रास्ता भूलकर सागरसेन नाम के मुनिराज उस वनमें इधर उधर फिर रहे थे । उन्हें देखकर पुरुरवा हरिण समझकर मारने के लिये तैयार हो गया परन्तु उसकी स्त्री कालिका ने उसे उसी समय रोक दिया और कहा कि ये वनके अधिष्ठाता देव है, हरिण नहीं है, इन्हें मारनेसे संकट में पड जाओगे । स्त्री के कहने से प्रशान्तचित्त होकर वह मुनिराज सागरसेन के पास पहुंचा और नमस्कार कर उनके पास बैठ गया। मुनिराजके कहने से जीवनभर के लिये मद्य, मांस और मधु का खाना छोड दिया । रास्ता मिलनेपर मुनिराज अपने वांछित स्थान की ओर चले गये । और प्रसन्नचित्त पुरुरवा अपने घर को गया । वहां वह निर्दोष रूपसे अपने बतका पालन करता रहा और आयु के अन्त में शान्त परिणामों से मरकर सौधर्म स्वर्गमें देव हुआ। वहां उसकी आयु एक सागर की थी। स्वर्गके सुख भोगकर जम्बू द्वीप भरत क्षेत्र की अयोध्या नगरी के राजा भरत चक्रवर्ती की अनन्तमति नामक रानी से मरीचि नामका पुत्र हुआ । जब वह पैदा हुआ थाउस समय भगवान् वृषभदेव गृहस्थ अवस्था में ही थे और महाराज नाभिराजभी मौजूद थे इसलिये उसके जन्मका खूब उत्सव मनाया गया था। जब वह बडा हुआ तब अपने पितामह भगवान् वृषभदेव साथ देखा-देखी मुनि हो गया। उस समय और भी कुछ महाकच्छ आदि चार हजार राजा मुनि हो गये थे पर वे सभी भूख प्यास की बाधा से दुःखी होकर भ्रष्ट हो गये थे । वह मरीचि भी मुनि-पद से पतित हो जंगलोंमें कन्दमूल खाने और तालाबों में पानी पीने के लिये गया तब वनदेवताने प्रकट होकर कहा कि । यदि तुम यति वेष में रहकर यह अनाचार करोगे तो हम तुम्हें दण्डित करेंगे । देवताओं के वचन सुनकर उसने वृक्षों के बल्कल पहिनकर दिगम्बर वेष को छोड दिया ओर मनमानी प्रवृत्ति करने लगा । उसने कपिल आदि बहुतसे अपने अनुयायी शिष्य बनाकर उन्हें सांख्य मतका उपदेश दिया ।

जब भगवान आदिनाथ न समवसरण के मध्य में विराजमान होकर दिव्य उपदेश दिया तब उन पतित साधुओं में बहुत से साधु पुनः जैन धर्म में दीक्षित हो

गये। पर मरीचिने अपना हठ नहीं छोडा। वह हमेशा यही करता रहा कि जिस तरह आदिनाथ ने एकमत चलाकर ईश्वर-पदवी प्राप्त की है उसी तरह मैं भी अपना मत चलाकर ईश्वर-पदवी प्राप्त करूंगा। इस तरह वह कन्दमूल का भक्षण करता, शीतल जलसे स्नान करता, वृक्षों के बल्कल पहिनता और सांख्यमत का प्रचार करता हुआ यहां वहां घूमता रहा। आयु के अन्त में कुछ शान्त परिणामों से मरकर पांचवे स्वर्ग में देव हुआ। वहां उस की आयु दश सागर की थी। आयु पूर्ण होने पर वह वहां से चयकर साकेत नगरके कपिला ब्राह्मण की काली नामक स्त्रासे जटिल नामका पुत्र हुआ। जब वह बडा हुआ तब उसने परिब्राजक-सांख्य साधु की दीक्षा लेकर पहलेके समान सांख्य तत्वों का प्रचार किया। और आयुके अन्तमें मरकर सौधर्म स्वर्ग में देव हुआ। वहां दो सागरतक दिव्य सुखोंका अनुभव कर इसी भरतक्षेत्र के स्थूणागार नगरमें भारद्वाज ब्राह्मण के घर उसकी पुष्पदत्ता भार्या से पुष्पमित्र नाम का पुत्रा हुआ। वहां भी उसने परिब्राजक की दीक्षा लेकर सांख्य तत्वों का प्रचार किया और शान्त परिणामों से मरकर सौधर्म स्वर्ग में देव का पद पाया। वहां उस की आयु एक सागर प्रमाण थी। वहां से सुख भोगने के बाद वह जम्बू द्वीप भरक्षेत्र के सूतिका नगर में अग्निभूती ब्राह्मणकी गौतमी स्त्री से अग्निहोत्र नाम का पुत्र हुआ। पूर्व भवके संस्कार से उसने पुनः परिब्राजक की दीक्षा लेकर प्रकृति आदि पच्चीस तत्वों का प्रचार किया और कुछ समता भावों से मर कर सनत्कुमार स्वर्ग में देव हुआ। वहां पर वह सात सागर तक सुन्दर सुख भोगता रहा। फिर आयु पूर्ण होने पर इसी भरत क्षेत्र के मन्दिर नामक भार्या से भारद्वाज नामका पुत्र हुआ। वहांभी उसने त्रिदण्ड लेकर सांख्यातम का प्रचार किया तथा आयुके अन्त में समता भावों से शरीर त्यागकर माहेन्द्र स्वर्ग में देव हुआ। वहां वह सात सागर तक दिव्य सुखोंका अनुभव करता रहा। बादमें वहांसे च्युत होकर कुधर्म फैलाने के छोटे फलसे अनेक त्रास स्थावर योनियों में घूम-घूम के दुःख भोगता रहा। फिर कभी मगध (बिहार) देश के राजगृह नगरमें शाण्डिल्य विप्र की पाराशरी स्त्री से स्थावर नामका पुत्र हुआ। सो वह भी बडा होने पर अपने पिता शाण्डिल्य की तरह वेद-वेदांगोंका जानने वाला हुआ। पर सम्यग्दर्शन के बिना उसका समस्त ज्ञान निष्फल था। उसने वहांपर भी परिब्राजक की दीक्षा लेकर सांख्य मतका प्रचार किया और आयुके अन्तमें मरकर माहेन्द्र स्वर्गमें देव-पदवी पाई।

वहां उस की आयु सात सागर प्रमाण थी। आयु अन्त होनेपर वहांसे च्युत होकर वह उसी राजगृह नगर में विश्वभूति राजा की जैनी नामक महारानी से विश्वनन्दी नाम का पुत्र हुआ। जो कि बड़ा होने पर बहुत ही शूरवीर निकला था। राजा विश्वभूति के छोटे भाई का नाम विशाखभूति था। उसकी भी लक्ष्मणा स्त्री से विशाखनन्द नाम का पुत्र हुआ था जो अधिक बुद्धिमान नहीं था। इस परिवार के सब लोग जैन धर्ममें बहुत रुचि रखते थे। मरीचिका जीव विश्वनन्दी भी जैन धर्ममें आस्था रखता था। किसी एक दिन राजा विश्वभूति शरदऋतु के भंगुर (नाश शील) बादल देखकर मुनि हो गये और अपना राज्य छोटे भाई विशाखभूति के लिये दे गये तथा अपने पुत्र विश्वनन्दी को युवराज बना गये।

किसी एक दिन युवराज विश्व नन्दी अपने मित्रों के साथ राजोद्यान में क्रीडा कर रहा था कि इतने में वहां से नये राजा विशाखाभूति का पुत्र विशाखनन्द निकला। राजोद्यान की शोभा देखकर उसका जी ललचा गया। उसने इष्ट से अपने पितासे कहा कि अपने जो बन् विश्वनन्दी को दे रक्खा है वह मुझे दीजिये नहीं तो मैं घर छोड़कर परदेश को भाग जाऊंगा। राजा विशाखभूति भी पुत्रके मोह में आकर बोला-बेटे! यह कौन बड़ी बात है? मैं अभी तुम्हारे लिये वह उद्यान दिये देता हूँ - ऐसा कहकर उसने युवराज विश्वनन्दीको अपने पास बुलाकर कहा कि-मुझे कुछ आततायियों को रोकने के लिये पर्वतीय प्रदेशोंमें जाना है। सो जबतक मैं लौट कर वापिस न आ जाऊं तबतक राज्य कार्यों की देखभाल करना। काका के बचन सुनकर भोले विश्वनन्दी ने कहा-नहीं आप यही पर सुखसे रहिये नहीं, आप यहींपर सुखसे रहिये, मैं पर्वतीय प्रदेश में जाकर उपद्रवियोंको नष्ट किये आता हूँ राजाने विश्वनन्दी को कुछ सेनोके साथ मैं पर्वतीय प्रदेशों में भेज दिया और उसके अभाव में उसका बगीचा अपने पुत्र के लिये दे दिया। जब विश्वनन्दी को राजा के इस कष्ट का पता चला तब वह बीच से ही लौट कर वापस चला आया और विशाखनन्द को मारने के लिये उद्योग करने लगा। विशाखनन्द भी उसके भयसे भागकर एक कैथके पेडपर चढ़ गया परन्तु कुमार विश्वनन्दीने उसे मारने के लिये वह कैथ का पेड ही उखाड़ डाला। तदनन्तर वह भागकर एक पत्थर के खम्भे में जा छिपा परन्तु विश्वनन्दी ने अपनी कलाई चौट से उस खम्भे को भी तोड़ डाला। जिससे वह वहां से भागा। उसे भागता हुआ देखकर युवराज विश्वनन्दी को दया आ गई। उसने कहा धर्माई ! मत भागो, तुम खुशी से मेरे बगीचमें क्रीडा करो, अब



मुझे उसकी आवश्यकता नहीं है । अब मुझे जंगलके सूखे कटीले झंखाड झालाड ही अच्छे लगेंगे । . . . .ऐसा कहकर उसने संसार की कपट भरी अवस्था का विचार करके किन्हीं सम्भूत नाम के मुनिराज के पास जिन दीक्षा ले ली। इस घट ना से राजा विशाखाभूति को भी बहुत पश्चात्ताप हुआ। उसने मन में सोचा कि मैंने व्यर्थ ही पुत्र के मोह में आकर साधु-स्वभावी विश्व नन्दी के साथ कष्ट किया है । सच पूछो तो यह राज्य भी उसीका है । सिर्फ स्नेह के कारण ही बड़े भाई मुझे राजा बना गये है । अब जिस किसी भी तरह मुझे इस पाप का प्रायश्चित्त करना चाहिये । ऐसा सोचकर उसने भी विशाखनन्दी को राज्य देकर जिन दीक्षा ले ली । यह हम पहले लिखा आये है कि विशाख नन्दी बुद्धिमान् नहीं था । इसलिये वह राज्यसत्ता पाकर मदोन्मत्त हो गया । कई तरहके दुराचार करने लगा । जिससे प्रजा के लोगों ने उसे राजगद्दीसे च्युतकर देश से निकाल दिया । विशाखनन्दी ने राज्य से च्युत होकर आजीविका के लिये किसी राजाके यहां नौकरी कर ली । किसी समय वह राजाके कार्यसे मथुरा नगरीमें आया था और वहां एक वेश्या के घर की छतपर बैठा हुआ था ।

मुनिराज विश्व नन्दी भी कठिन तपस्याओंसे अपने शरीर को सुखाते हुए उस समय मथुरा नगरी में पहुंचे और आहार की इच्छासे मथुरा की गलियों में घुमते हुए वहां से निकले जहांपर वेश्या के मकान की छतपर विशाखा नन्दी बैठा हुआ था । असात्ताका उदय किसी को नहीं छोडता । मुनिराज विश्व नन्दी बैठा हुआ था । असात्ताका उदय किसी को नहीं छोडता । मुनिराज विश्व नन्दी को उस गली में एक नवप्रसूता गायने धक्का देकर जमीनपर गिरा दिया। उन्हें जमीनपर पडा हुआ देखकर विशाखानन्दीसे हंसते हुए कहा कि कलाईकी चोट से पत्थरके खम्भे को गिरा देनेवाला तुम्हारा वह बल आज कहां गया ? उसके बचन सुनकर विश्वनन्दी को भी कुछ क्रोध आ गया उन्होंने लडखडाती हुई आवाज में कहा-घतुझे इस हंसी का फल अवश्य मिलेगाड । आहार लकर मुनिराज वन की ओर चले गये । वहां उन्होंने आयु के अन्तमें निदान बांधकर सन्यास पूर्वक शरीर छोडा जिससे वे महाशुक्र नाम के स्वर्ग में देव हुए । मुनिराज विशाखभूति आयु के अन्त में समता भावोंसे मरकर वहांपर देव हुए । वहां उन दोनों में बहुत ही स्नेह था ।

सोलह सागरतक स्वर्गों के सुख भोगने बाद वहांसे च्युत होकर विशाखभूति का जीव जम्बूद्वीप भरतक्षेत्र में सुरम्य देश के पोदनपुर नगरके स्वामी प्रजापती की जयावती रानी के विजय नामका पुत्र हुआ । पूर्वभवके संस्कारसे इन दोनों में बडा

भारी स्नेह था। बड़े होनेपर विजय बलभद्र पदवीका धारक हुआ और त्रिपुष्ट ने नारायण पदवी पाई। मुनि-निन्दा के पापसे विशाखनन्दी का जीव अनेक कु योनियों में भ्रमण करता हुआ विजयार्ध पर्वत की उत्तर श्रेणीपर अलका नगरी के राजा मयूरग्रीवकी नीलाञ्जना रानी से अश्वग्रीव नामका पुत्र हुआ। वह बचपन से ही उद्वण्ड प्रकृतिका था। जिससे वह तीन खण्डपर अपना आधिपत्य जमाये हुए था। किसी कारणवश त्रिपुष्टपर अपना चक्र चलाया। पर चक्ररत्न तीन प्रदक्षिणाएं देकर त्रिपुष्टके हाथ में आ गया। तब उसने उसी चक्ररत्नके प्रहास से अश्वग्रीवको मार डाला और स्वयं त्रिपुष्ट तीन खण्डों का राज्य करने लगा। तीन खण्डका राज्य पाकर भी और तरह तरह के भोग भोगते हुए भी उसे कभी तृप्ति नहीं होती थी। वह हमेशा विषय सामग्री को एकत्रित करने में लगा रहता था। जिससे वह त्रिपुष्ट मरकर सात वें नरक में नार की हुआ वहां वह तेतीस सागर पर्यन्त भयंकर दुःख भोगता रहा। फिर वहां से निकलकर जम्बू द्वीप भरत-क्षेत्र में गंगा नदी के किनारे सिंहगिर पर्वत पर सिंह हुआ। वहां उसने अनेक वन-जन्तुओं का नाशकर पाप उपार्जन किया जिनके फलसे वह वह पुनः पहले नरक में गया और वहां कठिन दुःख भागता रहा। वहां से निकलकर जम्बू द्वीप में सिंहकूट के पूर्वकी ओर हिमवान् पर्वत मी शिखरपर फिर से सिंह हुआं वह एक समय अपनी पैनी डाढोसे एक मृग को मारकर खा रहा था। कि इतने में वहांसे अत्यन्त कृपालु चारण ऋद्धिधारी अजितंजय और अमितगुण नाम के मुनिराज निकले सिंह को देखते ही उन्हें तीर्थकर के वचनों का स्मरण हो आया। वे किन्ही तीर्थकर के समवसरण में सुनकर आये हुए थे कि हिमकूट पर्वत परका सिंह दशवें भवमें महावीर नाम का तीर्थकर होगा। अजितंजय मुनिराज ने अवधिज्ञान के द्वारा उसे इष्ट से पहचान लिया। उक्त दोनों मुनिराज आकाश से उतरकर सिंहके सामने एक शिलापर बैठे गये। सिंह भी चुपचाप वही पर बैठा रहा। कुछ देर बाद अजितंजय मुनिराजने उस सिंहको सारगर्भित शब्दों में समझाया कि अय मृगराज ! तुम इस तरह प्रतिदीन निबल प्राणियोंको क्यों मारा करते हो ? इस पापके फल से ही तुमने अनेक बार कु योनियोंमे दुःख उठाये है। इत्यादि कहते हुए उन्होंने उसके पहले के समस्त भव कह सुनाये। मुनिराज के बचन सुनकर सिंह को भी जातिस्मरण हो गय जिससे उसकी आंखों के सामने पहले के समस्त भव प्रत्यक्ष की तरह झलक ने लगे। उसे अपने दुष्कार्यों पर इतना अधिक पश्चात्ताप हुआ कि उसकी आंखोंसे आंसुओंकी धारा बह निकली। मुनिराज ने फिर उसे शान्त करते हुए कहा कि तुम आजसे

अहिंसा ब्रत का पालन करो । तुम इस भव से देशवें भव में जगत्पूज्य बर्द्धमान तीर्थकर होंगे मुनिराज के उपदेश से बनराज सिंहने सन्यास धारण किया और विशुद्धचित्त होकर आत्म-ध्यान किया जिससे वह मरकर सौधर्म स्वर्ग में सिंहकेतु नाम का देव हुआ । मुनियुगल भी अपना कर्तव्य पूराकर आकाश मार्ग से बिहार कर गये । सिंहके तु दो सागर तक स्वर्गके सुख भोगने के बाद धातकी खण्ड द्वीप के पूर्व मेरुसे पूर्वकी ओर विदेह क्षेत्रमें मंगलावती देश के विजयार्ध पर्वतकी उत्तर श्रेणीमें कनकप्रभ नगर के राजा कनकपुंख्य ओर उनकी महारानी कनकमाला के कन को ज्वल नामका पुत्र हुआ । बड़े होनेपर उसकी राजकुमारी कनकवती के साथ शादी हुई । एक दिन वह अपनी स्त्री के साथ मुंदराचल पर्वतपर क्रीडा करने के लिये गया था । वहां पर उसे प्रियमित्र नाम के अवधिज्ञानी मुनिराज मिले । कनकोज्वलने प्रदक्षिणा देकर उन्हें भक्तिपूर्वक नमस्कार किया और फिर धर्मका स्वरूप पूछा । उत्तरमें प्रिय मित्र महाराज ने कहा कि-

धर्मो दयामयो धर्म श्रयधर्मेण नायसे, भुक्तिर्धर्मेण कर्माणि हन्ता धर्माय सन्मतिम् ।

देहिभापेहि धर्मात्त्व याहि धर्मस्यभृत्यताम्, धर्मेतिष्ठ चिरंधर्म पाहिमाभिति चिंतय ॥

अर्थात्-धर्म दयामय है, तुम धर्मका आश्रय करो, धर्मसे ही मुक्ति प्राप्त होती है, धर्मके लिये उत्तम बुद्धि लगाओ, धर्मसे विमुक्त मत होवो, धर्मके भृत्य (दास) बन जाओ, धर्ममें लीन रहो और हे धर्म ! हमेशा मेरी रक्षा करो ..... इस तरह चिन्तवन करो ।

मुनिराज के वचन सुनकर उसके हृदयमें वैराग्य रस समा गया । जिससे उसने कुछ समय बाद ही जिनदीक्षा लेकर सब परिग्रहोंका परित्याग कर दिया । उन्तमें वह सन्यास पूर्वक शरीर छोडकर सातवे कल्प स्वर्ग में देव हुआ । लगातार तेरह सागर तक स्वर्ग के सुख भोगकर वह वहांसे च्युत हुआ ओर जम्बू द्वीप भरत क्षेत्र के कौशल देश में साकेत नगर के स्वामी राजा बज्रसेनकी रानी शीलवतीके हरिषेण नाम का पुत्र हुआ । हरिषेण ने अपने बाहुबल से विशाल राजलक्ष्मी का उपभोग किया था ओर अन्त समय में उस विशाल राज्य को जीर्ण तृणके समान छोडकर श्रुतसागर मुनिराज के पास जिनदीक्षा ले ली तथा उग्र तपस्याएं की । आयु के अन्त में स्वर्ग बसुन्धरासे सम्बन्ध तोडकर वह धातकी खण्ड के पूर्व मेरुसे पूर्व की ओर विदेहक्षेत्र के पुष्कलावती देश की पुण्डरीकिणी नगरीमें वहां के राजा सुमित्र और उनकी

सुब्रता रानी से प्रियमित्र नामक पुत्रा हुआ। सुमित्र चक्रवर्ती था- उसने अपने पुरुषार्थ से छह खण्डों को वश में कर लिया था। किसी समय उसने क्षेमंकर जिनेन्द्र के मुखसे संसार का स्वरूप सुना और विषय वासनाओं से विरक्त होकर जिनदीक्षा धारण कर ली। अन्त में समाधिपूर्वक मरकर बारहवें सहस्रार स्वर्गमें सुर्यप्रभू देव हुआ। वहाँ वह अठारह सागर तक यथेष्ट सुख भोगता रहा। फिर आयुके अन्त में वहाँ से च्युत होकर जम्बूद्वीपके क्षेत्रपुर नगर में राज नन्दवर्द्धन की रानी वीरवतीसे नन्द नाम का पुत्र हुआ। वह बचपन से ही धर्मात्मा और न्यायप्रिय था। कुछ समय तक राज्य भोगने के बाद उसने किन्ही प्रोष्टि ल नामक मुनिराज के पास ओर दर्शन विशुद्धि आदि सोलह कारण भावनाओंका चिन्तवन कर तीर्थकर नामक महापुण्य प्रकृतिका बन्ध किया। फिर आयुके अन्तमें आराधना पूर्वक शरीर त्यागकर सोलहवें अच्युत स्वर्गके पुष्पोत्तर विमान में इन्द्र हुआ। वहाँ पर उसकी बाइस सागर प्रमाण आयु थी। तीन हाथ का शरीर था, शुक्ल लेश्या थी। वह बाइस हजार वर्ष में एक बार मानसिक आहार ग्रहण करता और बाइस पक्ष के बाद एक बार श्वासोच्छ्वास लेता था। पाठकोंको यह जानकर हर्ष होगा कि यही इन्द्र आगे चलकर वर्द्धमान तीर्थकर होंगा-भगवान् महावीर होगा। कहां और कब ?

सुनिये -

(२) वर्तमान परिचय

भगवान् पार्श्वनाथ के मोक्ष चले जानेके कुछ समय बाद यहाँ भारतवर्ष में अनेक मत-मतान्तर प्रचलित हो गये थे। उस समय कितने ही मनुष्य स्वर्ग प्राप्ति के लोभ से जीवित पशुओं को यज्ञ की बलि - वेदियों में होम देते थे। कितने ही बौद्ध धर्मकी क्षणिक वादिता को अपनाकर दुखी हो रहे थे। और कितने ही लोग सांख्य नैयायिक तथा वेदान्तियोंके प्रपंचमें पडकर आत्महित से कोसों दूर भाग रहे थे उस समय लोगोंके दिलों पर धर्म का भूत बुरी तरहसे चढा हुआ था। जिसे भी देखो वही हर एक व्यक्तिको अपनी ओर-अपने धर्मकी ओर खींचने की कोशीश करता हुआ नजर आता था। उद्वण्ड धर्माचार्य धर्मकी ओट में अपना स्वार्थ गांठते थे। मिथ्यात्व यामिनि का घना तिमिर सब ओर फैला हुआ था। उसमें दुष्ट उलूक भयंकर घूत्कार करते हुए इधर उधर घूमते थे। आततायियोंके घोर आतंकसे यह धरा अकुला उठी थी। रात्रिके उस सघन तिमिर से व्याकुल होकर प्रायः सभी सुन्दर प्रभात का दर्शन करना चाहते थे। उस समय सभीकी दृष्टि प्राचीकी ओर लग रही

थी। वे सतृष्ण लोचनों से पूर्व की ओर देखते थे कि प्रातःकालकी ललित -लालिमा आकाशमें कब फैलती है ।

एकने ठीक कहा है - सृष्टि का क्रम जानता की आवश्यकतानुसार हुआ करता है। जब मनुष्य ग्रीष्म की तप्त लूसे व्याकूल हो उठते हैं तब सुन्दर श्यामल बादलों से आकाश को आवृत कर पावसा ऋतु आती है। वह शीतल और स्वादु सलिल की वर्षाकर जनता का सन्ताप दूर कर देती है। पर जब मेघोंकी घनघोर वर्षा, निरन्तर के दुर्दिन बिजलीकी कडक मेघोंकी गडगडाहट और मलिन पंकसे मन म्लान हो जाता है तब स्वर्गीय अप्सरा का रूप धारण कर शरद् ऋतु आती है। वह प्रतिदिन सवेरेके समय बालादिनेश की सुनहली किरणों से लोगों के अन्तस्तल को अनुरंजित बना देती है। रजनीमें चन्द्रमा की रजतमयी शीतल किरणोंसे अमृत वर्षाती है। पर जब उसमें भी लोगोंका मन नहीं लगता तब हेमन्त, शिशिर, और वसन्त वगैरह आ-आकर लोगोंको आनन्दित करनेकी चेष्टाएं करती है। रात के बाद दिन और दिन के बाद रातका आगमन भी लोगों के सुभीते के लिए है। दुष्टोंका दमन करने के लिये महात्माओंकी उत्पत्ति अनादिसे सिद्ध है। इसलिये भगवान् पार्श्वनाथ के बाद जब भारी आतंक फैल गया था। तब किसी महात्मा की आवश्यकता थी। बस, उसी आवश्यकता को पूर्ण करनेके लिये हमारे कथानायक भगवान् महावीरने भारत बसुधा पर अवतार लिया था।

जम्बू द्वीप-भरतक्षेत्र के मगध(बिहार) देशमें एक कुण्डलपुर नामक नगर था। जो उस समय वाणिज्य व्यवसाय के द्वारा खूब तरक्की पर था। उसमें अच्छे सेठ लोग रहा करते थे। कुण्डलपुर का शासन-सूत्र महाराज सिध्दार्थके हाथ में था। सिध्दार्थ शूरवीर होने के साथ बहुत ही गम्भीर प्रकृतिके पुरुष थे। लोग उनकी दयालुता देखा कर कहते थे। कि ये एक चलते फिरते दयाके समुद्र है। उनकी मुख्य स्त्रीका नाम प्रियकारिणी(त्रिशला) था। यह त्रिशला सिन्धु देशकी वैशालीपुरी के राजा चेटककी पुत्री थी, बड़ी ही रूपवती और बुद्धिमती थी। वह हमेशा परोपकार में ही अपना समय बिताती थी। रानी होनेपर भी उसे अभियान तो छू भी नहीं गया था। वह सच्ची पतिव्रता थी। सेवा से महाराज सिध्दार्थ को हमेशा सन्तुष्ट रखती थी। वह घर के नौकर चाकरों पर प्रेमका व्यवहार करती थी। और विघ्न-व्याधि उपस्थित होने पर उनकी हमेशा हिफाजत भी रखती थी।

राजा सिध्दार्थ नाथ वंशके शिरोमणि थे। वे भी अपनेका त्रिशला की संगति से पवित्र मानते थे। राज चेटके के त्रिशला के सिवाय मृगावती, सुप्रभा, प्रभावती

चेलिनी ज्येष्ठा और चन्दना ये छह पुत्रियां और थी। मृगावतीका विवाह वत्सदेश की कौशाम्बी नगरीके चन्द्रवंशीय राजा शतानीक के साथ हुआ था। सुप्रभा, दशार्ण देशके हरकच्छ नगर के स्वामी सूर्यवंशी राजा दशरथ की पत्नी हुई थी। प्रभावतीका विवाह-सम्बन्ध कच्छ देशके रोरुक नगर के स्वामी राजा उदयन के साथ हुआ था।

प्रभावती का दूसरा नाम शीलवती भी प्रचलित था। चेलना मगध देश क राजगृह नगर के राजा श्रेणिक की प्रिय पत्नी हुई थी। ज्येष्ठा और चन्दना इन दो पुत्रियों ने संसार से विरक्त होकर आर्यिकाये ब्रत ले लिये थे ।

इस तरह महाराज सिध्दार्थ का बहुत से प्रतिष्ठित राजवंशों के साथ मैत्री-भाव था। सिध्दार्थ ने अपनी शासन-प्रणालीमें बहुत कुछ सुधार किया था ।

ऊपर जिस इन्द्र का कथन कर आये है वहां(अच्युत स्वर्ग में) जब उसकी आयु छह माह की बाकी रह गई। अनेक देवियां आ-आकर प्रियकारिणीकी सेवा करने लगीं। इन सब कारणों से महाराज सिध्दार्थ को निश्चय हो गया था। कि अब हमारे नाथ वंश में कोई प्रभावशाली महापुरुष पैदा होगा।

आषाढ शुक्ल षष्ठी के दिन उत्तराषाढ नक्षत्र के रात्रि के पिछले पहर में त्रिशला ने सोलह स्वप्न देखे और स्वप्न देखने के बाद मुंह में प्रवेश करते हुए एक हाथीको देखा । उसी समय उस इन्द्रने अच्युत स्वर्गके पुष्पोत्तर विमान से मोह छोडकर उसके गर्भमें प्रवेश किया। सबेरा होते ही रानीने स्नान कर पतिदेव सिध्दार्थ महाराज से स्वप्नोंका पुत्र उत्पन्न होगा। जो कि सारे संसारका कल्याण करेगा लोगोंको सच्चे रास्ते पर लगावेगा । पति के बचन सुनकर त्रिशला मारे हर्षके अंगमें फू ली न समाती थी। उसी समय चारो निकाय के देवों ने आकर भावी भगवान् महावीरके गर्भावतरणका उत्सव किया तथा उनके माता-पिता त्रिशला और सिध्दार्थ का खूब सत्कार किया ।

गर्भकाल में नौ माह पूर्ण होनेपर चैत्रशुक्ला त्रयोदशी के दिन उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्र में सबेरेके समय त्रिशला के गर्भ से भगवान् वर्धमान मा जन्म हुआ। उस समय अनेक शुभ शकुन हुए थे । उनकी उत्पत्ति से देव, दानव, मृग ओर मानव सभी को हर्ष हुआ था। चारो निकायके देवों ने आकर जन्मोत्सव मनाया था। उस समय कुण्डलपूर अपनी सजावट से स्वर्ग को भी पराजित कर रहा था। देवराज ने इनका वर्धमान नाम रक्खा था। जन्मोत्सव की विधि समाप्तकर देव लोग अपने स्थानों पर चले गये । राजपरिवारमें बालक वर्धमानका बहुत प्यारसे लालन -पालन होने लगा।

वे द्वितीया के इन्दु की तरह दिन प्रति दिन बढ़कर कु मार अवस्थामें प्रविष्ट हुए। कु मार वर्धमान को जो भी देखता था उसीकी आंखे हर्षके आंसुओं से तर हो जाती थी, मन अमन्द आनन्द से गद्गद् हो उठता था और शरीर रोमांचित हो जाता था। इन्हें अल्पकाल में ही समस्त विद्याएं प्राप्त हो गई थी। बालक वर्धमान के अगाध पाण्डित्यको देखकर अच्छे-अच्छे विद्वानोंको दांतो तले उंगुलियां दबानी पडती थी। विद्वान होनेके साथ साथ वे शूर, वीरता और साहस आदि गुणोंके अन्यय आश्रय थे।

किसी एक दिन सौधर्म इन्द्र की सभा में चर्चा चल रही थीकि इस समय भरतवर्ष में वर्धमान कु मार ही सबसे बलवान, शूरवीर और साहसी है इस चर्चा को सुनकर एक संगम नामक। कौतुकी देव कुण्डलपुर आया। उस समय वर्धमान कु मार इष्ट-मित्रों के साथ एक वृक्षपर चढने उतरने का खेल खेल रहे थे। मोका देखकर संगम देवने एक भयंकर सर्पका रूप धारण किया और फुं कार करता हुआ वृक्ष की जडसे लेकर स्कन्ध कर लिष्ट गया। नागराजकी भयावनी सूरत देखकर वर्धमान कु मार के सब साथी वृक्ष से कूद-कूदकर घर भाग गये पर उन्होंने अपना धैर्य नहीं छोडा। वे उसके विशाल फणपर पांव देकर खडे हो गये ओर आनन्द से उछलने लगे। उनके साहससे प्रसन्न होकर देव, सर्प का रूप छोडकर अपने असली रूप में प्रकट हुआ। उसने उनकी खूब स्तुति की और महावीर नाख रक्खा।

भगवान् महावीर जन्म से ही परोपकार में लगे रहते थे। जब वे दीन-दुःखी जीवों को देखते थे तब उनका हृदय रो पडता था। इतना ही नहीं, जबतक उनके दुःख दूर करने का शक्तिभर प्रयत्न न कर लेते तबतक चैन नहीं लेते थे। वे अनेक असहाय बालकों की रक्षा करते थे। पुत्र की तर विधवा स्त्रियों की सुरक्षा रखते थे। उनकी दृष्टि के सामने छोटे-बडेका भेद-भाव न था। वे अपने हृदय का प्रेम आम बाजारमें लुटते थे। जिसे आवश्यकता हो वह लूट कर ले जावे।

वर्धमान कु मार की किर्ती -गाथाओंसे समस्त भारतवर्ष मुखरित हो गया था। पहाडो की चोटियों और नद, नदी, निर्झरोंके किनारोंपर सुन्दर लता गृहोंमें बैठकर सौभाग्यवती स्त्रियां बडी ही भक्ति से उनका यशोगान करती थी।

श्री पार्श्वनाथ स्वामी के मोक्ष जाने के ढाई सौ वर्ष बाद भगवान महावीर हुए थे। इनकी आयु भी इसीमें शामिल है। इनकी आयु कुछ कम बहत्तर वर्षकी थी। शरीर की ऊं चाई सात हाथ की थी। और रंग सुवर्ण के समान स्निग्ध वर्णका था।

जब धीरे २ उनकी आयु के तीस वर्ष बीत गये और उनके शरीर में यौवन का पूर्ण विकास हो गया। तब एक दिन महाराज सिध्दार्थ ने उनसे कहा -प्रिय पुत्र ! अब तुम पूर्ण युवा हो, तुम्हारी गम्भीर ओर विशाल आंखें, उन्नत ललाट, प्रशान्त वदन, मन्द मुसकान, चतुर वचन, विस्तृत वक्षस्थल ओर घुट नों तक लम्बी भुजाएं तुम्हें महापुरुष बतला रही हैं। अब खोजने पर भी तुमने वहां चंचलता नहीं पाता हूं। अब तुम्हारा यह समय राज्य कार्य संभालने का है। मैं एक बूढ़ा आदमी ओर कितने दिन तक तुम्हारा साथ दूंगा? मैं तुम्हारी शादी करके दुनिया की झंझटों से बचना चाहता हूं।..... पिता के वचन सुनकर महावीर का प्रफुल्ल मुखमण्डल एकदम गम्भीर हो गया। मानों वे किसी गहरी समस्या के सुलझाने में लग गये हो। कुछ देर बाद उन्होंने कहा- पिता जी ! यह मुझसे नहीं होगा। भला, जिस जंजाल से आप बचना चाहते हैं उसी जंजाल में आप मुझे क्यों कर फंसाना चाहते हैं ? ओह ! मेरी आयु सिर्फ बहत्तर वर्षकी है जिसमें आज तीस वर्ष व्यतीत हो चुके। अब इतनेसे अवशिष्ट जीवनमें मुझे बहुत कुछ कार्य करना बाकी है। देखिये पिताजी ! लोग धर्मके नाम पर आपसमें किस तरह झगडते हैं। सभी एक दूसरे को अपनी ओर खींचना चाहते हैं। पर खोज करने पर ये सब है पोचे। धर्माचार्य प्रपंच फैलाकर धर्म की दूकान सजाते हैं जिनमें भोले प्राणी ठगाये जाते हैं। मैं इन पथ-भ्रान्त पुरुषोंको सुखका सच्चा रास्ता बतलाऊंगा क्या बुरा है मेरा विचार ?

सिध्दार्थ ने बीच में ही टोक कर कहा -पर ये तो घर में रहते हुए भी हो सकते हैं। कुछ आगे बढ़कर महावीर ने उत्तर दिया-नहीं महाराज ! यह आपका सिर्फ व्यर्थ मोह है, थोड़ी देर के लिये आप यह भूल जाइये कि महावीर मेरा बेटा है फिर देखिये आपकी यह विचार-धारा परिवर्तित हो जाती है या नहीं ? बस पिताजी ! मुझे आज्ञा दीजिये जिससे मैं जंगल के प्रशान्त वायु मण्डल में रहकर आत्म-ज्योतिको प्राप्त करूं ओर जगत का कल्याण करूं। कुछ प्रारम्भ किया ओर कुछ हुआ। सोचते हुए सिध्दार्थ महाराज विषण्ण-वदन हो चुप रह गये।

जब पिता पुत्र का ऊपर लिख हुआ सम्बाद त्रिशला कानों में पडा तब वह पुत्र-मोह से व्याकुल हो उठी-उसके पांव के नीचे की जमीन खिसकने लगी। आंखों के सामने अंधेरा छा गया। वह मूर्च्छित हुआ ही चाहती थी कि बुद्धिमान् वर्धमान कुमार ने चतुराई भरे शब्दों में उनके सामने अपना समस्त कर्तव्य प्रकट कर दिया- अपने आदर्श और पवित्र विचार उसके सामने रख दिये एवं संसार की दूषित परिस्थिति से उसे परिचित करा दिया। तब उसने डबडबाती हुई आंखों से



भगवान् महावीर की ओर देखा । उस समय उसे उनके चेहरे पर परोपकार की दिव्य झलक दिखाई दी । उनकी लालसा-शून्य सरल मुखाकृति ने उनके समस्त विमोह को दूर कर दिया । महावीरको देखकर उसने अपने आपको बहुत कुछ धन्यवाद दिया और कुछ देर तक अनिमेष दृष्टि से उनकी ओर देखती रही । फिर कुछ देर बाद उसने स्पष्ट स्वर में कहा- दे देव ! जाओ, खुशीसे जाओ, अपनी सेवासे संसार का कल्याण करो, अब मैं आपको पहिचान सकी, आप मनुष्य नहीं-देव है । मैं आपके जन्मसे धन्य हुई । अब न आप मेरे पुत्र हैं और न मैं आपकी मां । किन्तु आप एक आराध्य देव हैं और मैं हूँ आपकी एक क्षूद सेविका । मेरा पुत्र-मोह बिलकुल दूर हो गया ।

माताके उक्त वचनोंसे महावीर स्वामीके विरुद्ध हृदयका और भी आधिक आलम्ब मिला गया । उन्होंने स्थिरचित्त होकर संसारकी परिस्थितिका विचार किया और बनमें जाकर दीक्षा लेनेका दृढ निश्चय कर लिया । उसी समय पीताम्बर पहिने हुए लौकान्तिक के देवों ने आकर उनकी स्तुति की और दीक्षा धारण करने के विचारों का समर्थन किया । अपना कार्य पूराकर उनकी स्तुति की और दीक्षा धारण करने के विचारों का समर्थन किया । अपना कार्य पूराकर लौकान्तिक देव अपने स्थानों पर वापिस चले गये । उनके जाते ही असंख्य देव-राशी जय जय घोषणा करती हुई आकाश मार्ग से कुण्डलपुर आई । वहां उन्होंने भगवान महावीर का दीक्षाभिषेक किया तथा अनेक सुन्दर-सुन्दर आभूषण पहिनाये । भगवान् भी देवनिर्मित चन्द्रप्रभा पालकीकर सवार होकर षण्डवनमें गये और वहां अगहन वदी दशमी के दिन हस्त नक्षत्र में संध्या के समय नमः सिध्देभ्यः कहकर वस्त्राभूषण उतारकर फेंक दिये । पंच मुष्टि योंसे केश उखाड डाले । इस तरह बाह्य और आभ्यन्तर परिग्रह का त्यागकर आत्मध्यान में लीन हो गये । विशुद्धि के बढ़नेसे उन्हें उसी समय मनःपर्यय ज्ञान प्राप्त हो गया । दीक्षा कल्याण का उत्सव समाप्तकर देव लोग अपने अपने स्थानों पर चले गये ।

पारणा के दिन भगवान् महावीरने आहार के लिये कुलग्राम नामक नगरीमें प्रवेश किया । वहां उन्हें कुल-भूपाल ने भक्तिपूर्वक आहार दिया । पात्रदान से प्रभावित होकर देवों ने कुल-भूपाल के घरपर पंचाश्चर्य प्रकट किये । वहांसे लौट कर मुनिराज महावीर वनमें पहुँचे और आत्मध्यान में लीन हो गये । दीक्षा के बाद उन्होंने मौनव्रत ले लिया था । इसलिये बिना किसीसे कुछ कहे हुए ही वे आर्य देशोंमें विहार करते थे ।

एक दिन वे विहार करते हुए भगवान महावीर उज्जयिनी के अतिमुक्तक नाम के श्मशान में पहुंचे और रातमें योग धारणकर वहीं पर विराजमान हो गये। उन्हें देखकर महादेव रुद्रने अपनी दुष्टता से उनके धैर्यकी परीक्षा करनी चाही। उसने बैताल विद्या के प्रभाव से रात्रीके सघन अन्धकारको और भी सघन बना दिया अनेक भयानक रूप बनाकर नाचने लगा। कठोर शब्द, अट्टहास और विकराल दृष्टि से डराने लगा। तदनन्तर सर्प, सिंह हाथी, अग्नि ओर वायु आदि के साथ भीलोंकी सेना बनाकर आया। इस तरह उसने अपनी विद्याके प्रभाव से खूब उपसर्ग किया। पर भगवान् महावीर का चित्त आत्मध्यानसे थोडा भी विचलित नहीं हुआ। उनके अनुपम धैर्यको देखकर महादेव ने असली रूपमें प्रकट होकर उनकी खूब प्रशंसा की-स्तुति की और क्षमा याचना कर अपने स्थानपर चला गया।

वैशाली के राजा चेटककी छोटी पुत्री चन्दना बनमे खेल रही थी। उसे देखकर कोई विद्याधर काम बाग से पीडित हो गया। इसलिये वह उसे उठाकर आकाश में लेकर उड़ गया। पर ज्योंही उस विद्याधर की दृष्टि अपनी निजकी स्त्रीपर पडी त्योंही वह उससे डरकर चन्दना को एक महा अट्ट वी में छोड़ आया। वहां पर किसी भीलने देखकर उसे धन पानेकी इच्छासे कौशाम्बी नगरीके वृषभदत्त सेठके पास भेज दिया। सेठकी स्त्रीका नाम समुद्रा था वह बडी दुष्टा थी, उसने सोचा कि कभी सेठजी इस चन्दनाकी रूप-राशिपर न्यौछावर होकर मुझे अपमानित न करने लगे। ऐसा सोचकर वह चन्दनाकी रूप-राशिपर न्यौछावर होकर मुझे अपमानित न करने लगे। ऐसा सोचकर वह चन्दनाको खूब कष्ट देने लगी। सेठानीके घरपर प्रतिदिन चन्दनाको मिट्टीके वर्तनमें कांजीसे मिला हुआ पुराने कोदोंका भात ही खानेको मिलता था। इतने पर भी हमेशा सांकलमें बंधी रहती थी। इन सब बातोंसे उसका सौन्दर्य प्रायः नष्ट-सा हो गया था।

एक दिन विहार करते हुए भगवान् आहार लेनेके लिये कौशाम्बी नगरीमें पहुंचे। उनका आगमन सुनकर चन्दनाकी इच्छा हुई कि मैं भगवान महावीरके लिये आहार दूं पर उसके पास रक्खा ही क्या था ? उसे जो भी मिलता था वह दूसरेकी कृपासे और सडा हुआ तिसपर वह सांकलमें बंधी हुई थी। चन्दनाको अपनी परन्त्रातका विचार कर बहुत ही दुःख हुआ। पर भाव भक्ति भी कोई चीज है। ज्योंही भगवान् महावीर उसके द्वार परसे निकले त्योंही उसकी सांकल अपने आप टूट गई। उसका शरीर पहलेके समान सुन्दर हो गया। यह देखकर उसने प्रसन्नतासे पडगाह कर भगवान् महावीरके लिये आहार दिया। दवोंने चन्दनाकी

भक्तिसो प्रसन्न होकर उसके घरपर रत्नोंकी वर्षा की । तबसे चन्दनाका महात्म्य सब ओर फैल गया। पता लगनेपर चेटक राजा पुत्रीको लिवानेके लिये आया पर वह संसारकी दुःखमय अवस्थासे खूब परिचित हो गई थी इसलिये उसने पिताके साथ जानेसे इनकार कर दिया और किसी आर्थिकाके पास दीक्षा ले ली । अबतक छद्मस्थ अवस्थामें विहार करते हुए भगवान्के बारह वर्ष बीत गये थे । एक दिन वे जृम्भिका गांवके समीप ऋजुकला नदीके किनारे मनोहर नामके वनमें सागोन वृक्षमें नीचे पत्थरकी शिलापर विराजमान थे । वहींपर उन्हें शुक्ल ध्यानके प्रतापसे घातिया कर्मोंका क्षय होकर वैशाख शुक्ल दशमीके दिन हस्त नक्षत्रमें शमके समय केवल ज्ञान प्राप्त हो गया। देवोंने आकर ज्ञान-कल्याणकका उत्सव किया। इन्द्रकी आज्ञा पाकर धनपति कुबेरने समवशरण (धर्मसभा) रचना की। भगवान् महावीर उसके मध्य भागमें विराजमान हुए। धीर-धीरे समवशरणकी बारह सभाएं भर गईं। समवशरण भूमिका सब प्रबन्ध देव लोग अपने हाथमें लिये हुए थे इसलिये वहां किसी प्रकारका कोलाहल नहीं होता था। सभी लोग सतृष्ण लोचनोंसे भगवानकी ओर देख रहे थे और कानोंसे उनके दिव्य उपदेशकी प्रतीक्षा कर रहे थे। पर भगवान् महावीर चुपचाप सिंहासनपर अन्तरीक्ष विराजमान थे। उनके मुखसे एक भी शब्द नहीं निकलता था। केवलज्ञान होनेपर भी छयासठ दिनतक उनकी दिव्य ध्वनि नहीं खिरी। जब इन्द्रने अवधिज्ञानसे इसका कारण जानना चाहा तब उसे मालूम हुआ कि अभी सभा भूमिमें कोई गणधर नहीं है आरे बिना गणधरके तीर्थकरकी वाणी नहीं खिरती। इन्द्रने अवधिज्ञानसे यह भी जान लिया कि गौतम ग्राममें जो इन्द्रभूति नामका ब्राह्मण है वही इनका प्रथम गणधर होगा। ऐसा जानकर इन्द्र, इन्द्रभूतिको लानेके लिए गौतम गया। इन्द्रभूति वेद वेदांगोंको जानने वाला प्रकाण्ड विद्वान था। उसे अपनी विद्याका भारी अभिमान था। उसके पांचसौ शिष्य थे। जब इन्द्र उसके पास पहुंचा तब वह अपने शिष्योंको वेद वेदांगोंका पाठ पढा रहा था। इन्द्र भी एक शिष्यके रूपमें उसके पास पहुंचा और नमस्कार कर जिज्ञासु भावसे बैठ गया। इन्द्रभूतिने नये शिष्य की ओर गम्भीर दृष्टि से देखकर कहा कि तुम कहांसे आये हो? किसके शिष्य हो? उसके वचन सुनकर शिष्य वेषधारी इन्द्रने कहा कि मैं सर्वज्ञ भगवान् महावीरका शिष्य हूं। इन्द्रभूतिने महावीरके साथ सर्वज्ञ और भगवान विशेषण सुनकर तिणकते हुए कहा-ओ सर्वज्ञ के शिष्य! तुम्हारे गुरु यदि सर्वज्ञ है तो अभीतक कहां छिपे रहे? क्या मुझसे शास्त्रार्थ किये बिना ही वे सर्वज्ञ कहलाने लगे हैं? छ इन्द्रने कुछ भौंह टेढ़ी करते हुए कहा - तो क्या आप अनसे शास्त्रार्थ

करने के लिये समर्थ है ? इन्द्रभूतिने कहा- घकहाँ, अवश्य तब इन्द्रने कहा-अच्छा, पहले उनके शिष्य मुझसे ही शास्त्रार्थ कर देखिये-फिर उनसे करियेगाड क। मैं पूछता हूँ.....

६ ६ त्रौकाल्यां द्रव्यष्ट् कं नव पद सहितं.....आदि ड ।

कहिये महाराज इस श्लोक का क्या अर्थ है? जब इन्द्रभूतियो द्रव्यष्ट् कं ६ नवपद सहितं ड लेश्या आदि शब्दोंका अर्थ प्रतिभासित नहीं हुआ तब वह क डक कर बोला-चल, तुझसे क्या शास्त्रार्थ करूं, तेरे गुरु से ही शास्त्रार्थ क रूंगाड ऐसा कहकर मय पांच हसंता हुआ आगे होकर मार्ग बतलाने लगा । ज्योंही इन्द्रभूति समवसरण के पास आया और उसकी दृष्टी मानस्तम्भपर पडी त्योंही उसका समस्त अभिमान दूर हो गया।वह विनित भावसे समवसरण के भीतर गया। वहां भगवान् के दिव्य ऐश्वर्य को देखकर उनके सामने उसने अपने आपको बहुत ही हल्का अनुभव किया। जब इन्द्रभूति भगवान्को नमस्कार कर मनुष्योंके कोठे में बैठ गया तब इन्द्रने उससे कहा-अब आप जो पूछना चाहते हों वह पूछिये। जब इन्द्रभूतिने भगवान्से जीवको स्वरूप पूछा तो तब उन्होंने सप्तभंगीमें जीव-तत्त्वका विशद व्याख्यान किया। उनके दिव्य उपदेशसे गद्गद् हृदय होकर इन्द्रभूतिने कहा-भगवान ! इस दास को भी अपने चरणोंमें स्थान दीजियें ऐसा कहकर उसने वहीं पर जिनदीक्षा धारण कर ली उसके पांच सौ शिष्योंने भी जैनधर्म स्वीकार कर यथाशक्ति व्रतविधान ग्रहण किये। दीक्ष लेने के कुछ समय बाद ही इन्द्रभूतिको सात ऋद्धियां और मनःपर्याय ज्ञान प्राप्त हो गया था। यही भगवान् वर्धमान का प्रथम गणधर हुआ था। गौतम गांवमें रहने के कारण इन्द्रभूति काही दूसरा नाम गौतम था। भगवान् अर्द्धमागधी भाषा में पादार्थों का उपदेश करते थे और गौतम इन्द्रभूति गणधरी उसे ग्रंथ रूपसे-अंग पूर्व रूपसे संकलित करते जाते थे। कालक्रम से भगवान् महावीर के गौतम के सिवाय वायुभूति, अग्निभूति, सुधर्म, मौर्य, मौन्द्रय, पुत्र, मैत्रय अकम्पन, अन्धवेल ओर प्रभास ये दश गणधर और थे। इनके सिवाय इनके समवसरण में तीन सौ ग्यारह। द्वादशांग के वेत्ता थे, नौ हजार नौ सौ शिक्षक थे, तेरह सौ अवधिज्ञानी थे, सात सौ वादी थे। इस तरह सब मिलाकर चौदह हजार मुनिराज थे । चन्दना आदि छत्तीस हजार अर्थिकार्यें थी, एक लाख श्रावक थे, तीन लाख श्राविकार्यें थी, असंख्यात देव-देवियां और संख्यात तिर्थच थे। इन सबसे वेष्टि त होकर उन्होंने नय प्रमाण और निक्षेपोंसे वस्तुका स्वरूप बतलाया। इसके अनन्तर कई स्थानोंमें बिहार कर धर्माभूतकी वर्णा की।

इन्ही के समयमें कपिलवस्तु के राजा शुद्धोधन के गौतम बुद्ध नामका पुत्र था जो अपने विशाल ऐश्वर्य को छोड़कर साधु बन गया था। साधु गौतम बुद्धने अपनी तपस्या से महात्मा पद प्राप्त किया था। महात्मा बुद्ध जगह-जगह घुमकर बौद्धधर्मका प्रचार किया करते थे। बुद्ध के अनुयायी बौद्ध और महावीर क अनुयायी जैन कहलाते थे। यद्यपि उस समय जैन और बौद्ध ये दोनों सम्प्रदाय वैदिक विधान बलि, हिंसा आदिका विरोध करनेमें पूरी-पूरी शक्ति लगाते थे तथापि उन दोनोंमें बहुत मतभेद था। बौद्ध और जैनियो कि दार्शनिक तथा आचार विषयक मान्यताओंमें बहुत अन्तर था। जो कुछ भी हो: पर यह निःसन्देह कहा जा सकता है कि वे दोनों उस समय के महापुरुष थे। दोनों का व्यक्तित्व खूब बढ़ा चढ़ा था। जब तक महावीर की छद्मस्थ अवस्था रही तब तक प्रायः बुद्धके उपदेशों का अधिक प्रचार रहा। पर जब भगवान् महाविर केवल ज्ञानी होकर दिव्य ध्वनिके द्वारा उपदेश करने लगे थे तब बुद्ध माहत्म्य बहुत कुछ कम हो गया था। राजा श्रेणिक जैसे कट्टर बौद्ध भी महावीरके अनुयायी बन गये थे अर्थात् जैनी हो गये थे। एक जगह गौतम बुद्धने अपने शिष्योंके सामने भगवान महावीर को सर्वज्ञ स्वीकार किया था और बचनोंमें अपनी आस्था प्रकट की थी।

पूर्णज्ञानी योगी भगवान् महावीर ने पहले तो वैदिक बलिदान तथा अन्य कुरीतियों को बन्द करवाया था। और फिर अपने मार्मिक धार्मिक उपदेशोंसे, बौद्ध, नैयायिक, सांख्य आदि मत मतान्तरों की मान्यताओंका खण्डन कर स्याद्वाद रूपसे जैनधर्मकी मान्यताओंका प्रकाश किया था।

एक दिन भगवान विहार करते हुए राजगृह नगरमें आये। और वहांके विपुलाचल पर्वतपर समवसरणसहित विराजमान हो गये उस समय राजगृह नगरमें राजा श्रेणिक का राज्य था। पहिले कारणवश श्रेणिक राजाने बौद्धधर्म स्वीकार कर लिया था। परन्तु चेलिनी रानीके बहुत कुछ प्रयत्न करने पर उन्होंने बौद्धधर्मको छोड़कर पुनः जैनधर्म धारण कर लिया था। जब उन्हें विपुलाचल पर महावीर जिनेन्द्र के आगमन का समाचार मिला तब वह समस्त परिवार के साथ उनकी वन्दना के लिये गया और उन्हें नमस्कार कर मनुष्योंके कोठेमें बैठ गया। भगवान महावीरने सुन्दर सरस शब्दोंमें पदार्थोंका विवेचन किया जिसे सुनकर राजा श्रेणिकको क्षायिक सम्यग्दर्शन प्राप्त हो गया। क्षायिक सम्यग्दर्शन पाकर उसे बड़ी ही प्रसन्नता हुई। राजा श्रेणिक को उनके प्रति इतनी गाढ श्रद्धा हो गई थी कि वह अपने पास प्रायः नित्य प्रति जाकर तत्त्वोंका उपदेश सुना करता था।

श्रेणिक को आसन्न भव्य समझकर गौतम गणधर वगैरह भी उसे खूब उपदेश दिया करते थे। प्रथमानुयोग का उपदेश तो प्रायः श्रेणिकके प्रश्नों के अनुसार किया गया था। श्रेणिकने उन्हीके पासमें दर्शन विशुद्धी आदि सोलह भावनाओंका चिन्तवनकर तीर्थकर प्रकृतिका बन्ध भी कर लिया था। जिससे वह आगामी उत्सर्पिणी में पद्मनाथी नाम के तीर्थकर होंगे।

भगवान महावीरका विहार, बिहार प्रान्त में बहुत अधिक हुआ है। राजगृह के विपुलाचलपर तो उनके कई वार अनेक कथानक मिलते हैं। इस तरह समस्त भारतवर्ष में जैनधर्म का प्रचार करते-करते जब उनकी आयु बहुत थोड़ी रह गई तब वे पावापुर में आये और वहां योग निरोधकर आत्मध्यान में लीन हो विराजमान हो गये। वहींपर उन्होंने सूक्ष्म-क्रिया-प्रतिपाति और व्युपरत-क्रिया-निवृत्ती नामक शुक्ल ध्यान के द्वारा अघातियां कर्मोंका नाशकर कार्तिक वदी अमावस्या के दिन प्रातःकाल के समय बहत्तर वर्ष की अवस्था में मोक्ष लाभ किया। देवोंने आकर निर्वाण क्षेत्र की पूजा की और उनके गुणों की स्तुति की।

भगवान् महावीर जब मोक्ष गये थे तब चतुर्थकाल के ३ वर्ष ८ माह १५ दिन बाकी रह गये थे। उन्हें उत्पन्न हुए आज २५३६ वर्ष और मोक्ष प्राप्त किये २४६४ वर्ष व्यतीत हो गये हैं। ये ब्रह्मचारी हुए। न इन्होंने विवाह किया और न राज्य ही। किन्तु कुमार अवस्थामें दीक्षा धारण कर ली थी। जिन्होंने इनकी आयु ७१ वर्ष ३ माह २५ दिनकी मानी है उन्हांने उसका विभाग इस तरह लिखा है।

गर्भकाल ६ माह ८ कुमारकाल २८ वर्ष १२ दिन, छदमस्थकाल १२ वर्ष ५ माह १५ दिन, केवलिकाल २६ वर्ष ५ माह २० दिन, कुल ७१ वर्ष ३ माह २५ दिन हुए।

मुक्त होनेपर चतुर्थकाल के बाकी रहे ३ वर्ष ८ माह २५ दिन।

इस तरह इस मतमें चतुर्थकाल के ७५ वर्ष १० दिन बाकी रहनेपर भगवान् महावीर ने गर्भ में प्रवेश किया था और जिन्होंने ७२ वर्ष की आयु मानी है उन्हांने कहा है कि चतुर्थकालके ७५ वर्ष ८ माह १५ दिन बाकी रहनेपर महावीर ने त्रिशला के गर्भ में किया था।

इनके बाद गौतम, सुधर्म ओर जम्बू थे तीन केवली और हुए हैं। आज जैन धर्मकी आम्नाय उन्हींके सार-गर्भित उपदेशोंसे चल रही है। वर्द्धमान, महावीर, वीर, अतिवीर और सन्मति ये पांच नाम प्रसिद्ध हैं।

\* \* \* समाप्त \* \* \*



।। चतुर्विंशति तीर्थकरेभ्यो नमः ।।

श्री चतुर्विंशति तीर्थकर स्तुति

लेखक- पञ्जाश्रमण देवनन्दि मुनि

दोहा

आदि विभु आदि युगे, आदि ब्रह्म मुनि नाथ ।  
चरण शरण मे मैं खाडा, दीजे मेरा साथ । १ ।  
इन्द्रिय विषय कषाय चउ, जीत चुके जिनराज ।  
अजित नाथ मम जीत हो । सफल होय सब काज । २ ।  
संभव जिन भंजन कियो, कर्म वसु समुदाय ।  
कर्म रिपु मम दूर हो, भक्ति करूँ तव पाय । ३ ।  
आनन्द मंगल तव किया, अभिनन्दन भगवान ।  
गुप्ति त्रय को साधकर, पाऊँ केवल ज्ञान । ४ ।  
सुमति सुमति करदो विभु, दूर हट् बुरी रीत ।  
कु मति तज सुमति जिन भये, सर्व भूत मम मीत । ५ ।  
सूर्य उद्य प्रभु कमल खिले, पदम प्रभु सिध्दात्म ।  
हृदय पद्म मम खिल उठे, आत्म बने परमात्म । ६ ।  
पार्श्व तज सुपार्श्व बने, बहु गुण कीने पास ।  
औगुण मेरे मत लखो, मोहि रखो तव पास । ७ ।  
चन्द्र प्रभु तुम चन्द्र वत, चन्द्र वदन तव गात ।  
ललित कूट से सिध्द भये, सुनलो मेरी बात । ८ ।  
पुष्प दन्त प्रभु पुष्प सम, महक रहे चहुँ ओर ।  
सुविधि सब विधी करो, देखो मेरी ओर । ९ ।  
पाप तजे शीतल भये, शीतल नाथ भगवान् ।  
शीतल हो प्रभु शीतल करो, प्रगट् आत्म ज्ञान । १० ।  
अश्रेयस को छोडकर, श्रेयस कीना काम ।  
जगहितकारी श्रेयकर, श्रेयांस नाथ जिन नाम । ११ ।  
वसु द्रव्य लियो करपात में, पूज रहो वसुपुज्य ।  
कर्म वसु मम दूर हो, भगवन वासुपूज्य । १२ ।  
कल्मषता को धो लियो, निर्मल करके भाव ।



विमल नाथ के चर्चते, दूर हटें परभाव।१३।  
अनन्त अनन्त गुण को धरें, अनन्त चतुष्टय आधार।  
अनन्त नाथ मम अन्तकर, करदो भव से पार।१४।  
धर्मनाथ प्रभु सिद्ध हो, धर्म शुक्ल युत ध्यान।  
दश धर्मों को साधकर, होऊँ आप समान।१५।  
सकल शील संयम धरा, अन्त किये तुम पाप।  
शान्ति नाथ को नित नमूँ, शान्त करो सन्ताप।१६।  
कुन्थु कुं थ्वादिक तजे, जीव दया गुण सार।  
कुन्थुनाथ मम दया कर, शीघ्र करो उद्धार।१७।  
स्याद्वाद युत वचन तव, हरते जग अन्धकार।  
अहर नारि जिन को लखें, इन्द्र आंख हजार।१८।  
शल्ल दल्ल हो मल्लि प्रभु, गारव रहित विकार।  
त्रिभुवन ईश मनीष हो मम होवे श्रेष्ठ विचार।१९।  
अद्यत तज द्यति हुये, मुनिसुद्यत मुनि नाथ।  
शीघ्र तजुँ भवचक्र को, हो जाऊँ तप तव साथ।२०।  
कनक जनक सब कुछ तजा, मिथीलापुरी नरेश।  
नय विनय मेरी सुनो, नमिनाथ निर्दोष।  
राज राज मति को तजा, दूर करो मम दोष।२२।  
बालब्रह्म चारी प्रभु, करते सिद्धा वास।  
पार्श्व प्रभु तुम पास में, होवे मरो वास।२३।  
वर्धमान के चरण बढे, मोक्ष हेतु धर्मार्थ।  
मम मति सन्मति हो विभु, सकल करो सिद्धार्थ।२४।  
तीर्थकर चौबीस का, निशादिन करिये पाठ।  
निर्मलबुद्धी यशस्वती, नशत कर्म सब आठ।२५।  
प्रज्ञा मुझमें है नहीं, नहीं शास्त्र का ज्ञान।  
श्रमण च्छेदनन्दि छशोध पढें धीमान।२६।